भारतीय काव्यशास्त्र में सर्वाधिक चर्चित विवाद काव्यात्मा के सन्दर्भ मे ही रहा है। संस्कृत आचार्यों की पूरी परम्परा और विभिन्न काव्य-सम्प्रदायों की विकास-प्रक्रिया काव्यात्मा से ही संदर्भित रही है। हिन्दी के मध्ययुगीन आचार्यों मे चर्चित-चर्वण ही अधिक मिलता है। आधुनिक आचार्यों ने अवश्य नए सन्दर्भो में प्राचीन सिद्धांतो की व्याख्या की है किन्तु उनमे काव्यात्मा की अपेक्षा प्रयोजनीयता प्रमुख रही है और इसी के साथ स्थापित मतों की पुनर्व्याख्या।

पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धांतों के प्रभाव के कारण साहित्य-सृजन एवं अनुभावन के सन्दर्भ में कुछ नए दृष्टिकोण सामने आये। आचार्य शुक्ल के युग से ही हिन्दी के नए काव्यशास्त्र का सृजन या यो कहें कि भारतीय काव्यशास्त्र का पुनर्सृजन प्रारम्भ हुआ। शुक्ल जी की दृष्टि जहाँ समन्वय की थी, वहीं अत्याधुनिकों में पाश्चात्य के समक्ष सम्पूर्ण समर्पण की प्रवृत्ति मिलती है। तमाम नई विचारणाओं के बावजूद काव्यात्मा के संदर्भ में नए प्रस्ताव नहीं आये। इस क्रम में डॉ० गायकवाड का 'साहित्यस्यात्मा कलार्थ सौंदर्यम्' सूत्र शास्त्र निष्णातों के लिए चुनौती है। सिद्धांत विवेचन की अपेक्षा स्थापन जोखिम भरा कार्य है। काव्यार्थ को लेकर इधर विवेचन अवश्य हुए हैं और शैली तथा काव्य-भाषा के क्षेत्र में नए दृष्टिकोण आए हैं किन्तु चाहे आधुनिकता का प्रभाव हो, या भौतिकता का आत्मा सम्बन्धी स्थापना का साहस किसी ने नही किया।

डॉ० गायकवाड ने कलार्थ की त्रिविध विवेचना सोदाहरण की है और काव्यशास्त्र को एक नया सिद्धांत दिया है, जिसकी परीक्षा-समीक्षा आचार्य वर्ग के द्वारा होनी ही चाहिए।

शास्त्रानुशीलकों के लिए कृति न केवल पठनीय और संग्रहणीय है, वरन् विचारणीय और मननीय भी है और मुझे विश्वास है कि यह कृति हिन्दी काव्यशास्त्र में क्रोशशिला सिद्ध होगी।

डॉ० लक्ष्मीकान्त पाण्डेय

रीडर, हिन्दी विभाग

पी०पी०एन० कालेज कानपुर

साहित्य का कलार्थ-सौन्दर्य-सिद्धान्त

डॉ. ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड 'राजवंश'
रीडर एवं अध्यक्ष
स्नातक तथा स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
श्री शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी
जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

साहित्य रत्नालय, कानपुर-२०८००१

* पुस्तक : साहित्य का कलार्थ-सौन्दर्य-सिद्धान्त
* लेखक : डॉ. ज्ञानराज का. गायकवाड
* प्रकाशक : साहित्य रत्नालय,
३७/५०, गिलिस बाजार, कानपुर-२०८००१
* संस्करण : प्रथम, १९९८
* शब्दसज्जा : आशीष ग्राफिक्स, जूही, कानपुर
* मुद्रक : अजित आफसेट, रामबाग, कानपुर
* मूल्य दो सौ पच्चीस रुपये मात्र

समर्पण

परम प्रिय कार्य-प्रेरिका
पत्नी सौ. लतिका उर्फ़ लता
लेखन-प्रेरक तीनों सुपुत्र
सुनीत कुमार राजवंश
उज्ज्वलकुमार राजवंश
राहुल कुमार राजवंश
इन मनःप्रिय अपनों को
मेरी सर्वोत्तम उपलब्धि
निस्सीम प्रेम से समर्पित

-डॉ. ज्ञानराज गायकवाड़ 'राजवंश'

भूमिका

'साहित्य का कलार्थ-सौन्दर्य-सिद्धान्त' नामक मेरा यह ग्रंथ मेरी वर्षों की अखंड सरस्वती-साधना की एक सर्वोत्तम उपलब्धि है । अतः मेरा यह ग्रंथ मेरी सुदीर्घ चिन्तन-मनन की प्रक्रिया की दर्शनीय सिद्धि है । साहित्य के सौन्दर्य को और साहित्य की आत्मा को जानने के लिए जो सदैव उत्सुक बनकर रहने वाले जिज्ञासु होंगे उनके लिए मेरा यह अनुशीलनीय ग्रंथ विशेष मार्गदर्शक सिद्ध होगा ।

मैं अपनी विद्यार्थी-दशा में विद्यार्जन के साथ अपने देश के तथा विदेश के सुविख्यात साहित्यकारों के साहित्य का आस्वादन अतिशय लगन से करता रहा । तब से मेरे मानस में एक विचारणीय प्रश्न उठता रहा - 'वह क्या है जिसे साहित्य का सौन्दर्य और साहित्य की आत्मा माना जा सकता है ?' इस प्रश्न का यथायोग्य उत्तर पाने की जिज्ञासा से प्रेरित होकर मैं लगातार साहित्य का आस्वादन करता रहा, साहित्यविषयक आलोचनात्मक ग्रंथ पढ़ता रहा और चिन्तन-मनन भी करता रहा ।

अपनी चिन्तन-मनन की प्रक्रिया की पहली फलनिष्पत्ति के रूप में मैं 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्त्व' नामक शोध प्रबन्ध लिखकर पुणे विश्वविद्यालय से पी-एच डी. उपाधि पाने में सफल हो गया हूँ । मेरा यह शोध प्रबन्ध ई. स. १९७५ में कानपुर के 'पुस्तक संस्थान' (अब 'साहित्य रत्नालय') प्रकाशन ने प्रकाशित भी किया और उसकी प्रतियाँ अमेरिका मे भी पहुँचायीं । इस ग्रंथ के कारण मेरा ध्यान उस संघर्ष तत्व (*Principle of Conflict*) पर केन्द्रित हुआ जो नाटक का प्राण तत्त्व बनकर रहता है। इसी कारण से मेरा लिखा 'नाटक का प्राणतत्त्व' नामक शोध लेख दिल्ली के 'नेशनल पब्लिशिंग हाउस' प्रकाशन से प्रकाशित 'नाटक और रंगमंच' नामक ग्रंथ में विविध विद्वानो के शोध लेखो में द्वितीय क्रमांक पर प्रकाशित हुआ है ।

अपनी चिन्तन-मनन की प्रक्रिया की दूसरी फलनिष्पत्ति के रूप में मैं विभिन्न साहित्य-रूपों का स्वरूप अध्ययनपूर्वक समझने में और 'साहित्य रूपः शास्त्रीय विश्लेषण नामक ग्रंथ की रचना करने में सफल हुआ हूँ । मेरा यह ग्रंथ कानपुर के प्रसिद्ध 'विद्या विहार' प्रकाशन ने ई.स. १९७९ में पहली बार और संशोधित संस्करण के रूप में ई.स १९९४ में दूसरी बार प्रकाशित किया है ।

अपनी चिन्तन-मनन की प्रक्रिया की तीसरी फलनिष्पत्ति के रूप मे मैं हिन्दी भाषा के व्याकरण के तीन-साढ़े तीन वर्षों तक के, सूक्ष्म एव व्यापक अध्ययन के बल पर उपयोगी हिन्दी व्याकरण' नामक ग्रंथ की रचना करने में सफल हुआ हूँ । मेरा यह ग्रंथ दिल्ली के सुविख्यात 'राधा कृष्ण' प्रकाशन ने ई. स. १९९२ में संगणकीय मुद्रण से उत्तम रीति से प्रकाशित किया है । इस ग्रथ की भी प्रतियाँ विदेशो में पहुँच गयी हैं । इसी ग्रथ का विशेष उल्लेखनीय सम्मान यह हुआ है कि महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी उपयोगी हिन्दी व्याकरण' ग्रंथ को भाषाशास्त्र विभाग के अन्तर्गत सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया है और उसे ई. स. १९९३ का 'पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी' नामक विशेष धन राशिवाला पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया है । अतएव मैं एक ऐसा भाग्यशाली

लेखक हूँ कि महाराष्ट्र मे 'पं महावीर प्रसाद द्विवेदी नामक सम्माननीय पुरस्कार पाने वाला मैं ही सर्वप्रथम लेखक हूँ।

अपनी चिन्तन-मनन की प्रक्रिया की चौथी फलनिष्पत्ति के रूप में मैं अपने व्याकरणविषयक ज्ञान के आधार पर भारतीय काव्य-सिद्धान्तों को अध्ययनपूर्वक जानने मे और 'भारतीय काव्य-सिद्धान्त' नामक उस ग्रंथ की रचना करने में सफल हुआ हूँ, जिसे प्रकाशनार्थ दिल्ली के 'राधा कृष्ण' प्रकाशन ने स्वीकार किया है।

अपनी चिन्तन-मनन की प्रक्रिया की पाँचवीं फलनिष्पत्ति के रूप मे मैं पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्तों और वादो का अध्ययन करने में और 'पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्त और विविधवाद' नामक ग्रन्थ की रचना करने में सफल हुआ हूँ। मेरा यह ग्रंथ कानपुर के सुप्रसिद्ध 'साहित्य रत्नालय' प्रकाशन ने संगणकीय मुद्रण से ई.स. १९९४ मे उत्कृष्ट रीति से प्रकाशित किया है।

अपनी चिन्तन-मनन की प्रक्रिया की छठी फलनिष्पत्ति के रूप में मैं हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि को ध्यान में रखकर भाषा विज्ञान का अध्ययन करने में और 'हिन्दी भाषा विज्ञान परिचय 'नामक ग्रन्थ की रचना करने में सफल हुआ हूँ। मेरा यह ग्रंथ आगरा के विख्यात 'विनोद पुस्तक मन्दिर' प्रकाशन ने ई. स. १९९४ में संगणकीय मुद्रण से बढ़िया ढंग से प्रकाशित किया है।

एक ओर मैं अपनी चिन्तन-मनन की प्रक्रिया के फलस्वरूप ग्रंथ-लेखक बनकर रहा, तो दूसरी ओर मैं एक कलाकार यानी कवि के रूप मे हिन्दी भाषा और मराठी भाषा में कविताओं का सृजन करता रहा। इससे 'स्वत्व' नामक मेरा पहला हिन्दी कविता-संग्रह प्रकाशित हो गया। उसके बाद 'गीत गुंजन' नामक मेरा मराठी कविता-संग्रह प्रकाशित हो गया। अब अगले कविता-संग्रह के रूप में मेरा हिन्दी कविता-संग्रह प्रकाशित होने की संभावना है। क्योंकि मेरा कविता-सृजन अब भी जारी है। मेरी लिखी कुछ कहानियाँ भी प्रकाशित हुई हैं। मेरा लिखा 'भला समझौता' नामक एक लघु रेडियो नाटक भी आकाशवाणी, पुणे केन्द्र, से प्रसारित हुआ है।

तात्पर्य यह है कि मैं एक ओर ग्रंथ-लेखक की भूमिका निभाता रहा हूँ, तो दूसरी ओर साहित्य का सृजन करने वाले कलाकार की भूमिका भी संभालता रहा हूँ। इन दोनों भूमिकाओं का निर्वाह करते हुए मैं सदैव इस प्रश्न का यथायोग्य उत्तर पाने के प्रयत्न में व्यस्त रहा हूँ कि साहित्य का सौन्दर्य और साहित्य की आत्मा क्या है?

मैं एक ओर पौर्वात्य और पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्तो तथा वादों का आलोड़न करते हुए और दूसरी ओर कुछ मात्रा में साहित्य का सृजन करते हुए अपनी चिन्तन-मनन की प्रक्रिया के आधार पर एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ। वह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि 'कलार्थ' ही साहित्य का 'सौन्दर्य' है और वह सौन्दर्य ही 'साहित्य की आत्मा है। इस प्रकार के निष्कर्ष को ध्यान में रखकर मैंने एक महत्त्वपूर्ण साहित्य-सिद्धान्त के रूप में 'कलार्थ-सौन्दर्य को स्वीकार किया है।

मूलभूत बात तो यह है कि 'कलार्थ-सौन्दर्य' रूपी आत्मा के होने पर ही साहित्य अस्तित्व में आता है ' इसका दूसरा अर्थ यह है कि 'कलार्थ-सौन्दर्य' रूपी आत्मा के अभाव में साहित्य अस्तित्व में नहीं आ सकता

वास्तव में साहित्य की आत्मा बनकर रहने वाला कलार्थ रूपी सौन्दर्य ही साहित्य को 'साहित्य' के रूप में सुरक्षित रखता है। इसी वास्तविकता की मीमांसा करने के उद्देश्य से ही मैंने 'साहित्य का कलार्थ-सौन्दर्य-सिद्धान्त' नामक ग्रंथ की रचना की है।

मैंने अपने 'साहित्य का कलार्थ-सौन्दर्य-सिद्धान्त' नामक ग्रंथ की रचना कुल तीन प्रकरणों मे पूर्ण की है। तीनों प्रकरण एक-दूसरे के साथ उपयोगी श्रृखला के रूप में जुडे है। इसी कारण से तीनों प्रकरण एक-दूसरे के लिए पूरक हैं।

प्रथम प्रकरण का नाम है - 'भाषा का अर्थबोधक व्यवहार'। मैंने इस प्रकरण मे भाषा के उस व्यवहार का विवेचन किया है, जो मनुष्य-समाज के भीतर 'अर्थबोधक' ही होता है। मनुष्य अपने समाज के भीतर एक-दूसरे को अपने भावों, अपने विचारों आदि का अर्थबोध कराने के लिए ही भाषा का व्यवहार करता है। मनुष्य भाषा का अर्थबोधक व्यवहार वाक्य के रूप में ही करता है। फलस्वरूप वाक्य में प्रयुक्त भाषा का प्रत्येक घटक स्वतत्र रीति से भी अर्थबोधक बना रहता है और एकरूपात्मक वाक्यार्थ के रूप मे भी अर्थबोधक बना रहता है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य-समाज के भीतर भाषा का प्रत्येक वाक्य अपने 'वाक्यार्थ' का बोधक बना रहता है,जिससे भाषा का सम्पूर्ण व्यवहार आप ही आप अर्थबोधक बना रहता है। भाषा का इस प्रकार का अर्थबोधक व्यवहार ही साहित्य-सृजन का मूल आधार बनकर रहता है। अतः इस ग्रंथ के द्वितीय तथा तृतीय प्रकरण को समझने के लिए 'भाषा का अर्थबोधक व्यवहार' नामक प्रथम प्रकरण को समझना बहुत उपयोगी है।

प्रथम प्रकरण मे मैंने व्याकरणिक तथा भाषा वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर ही 'हिन्दी भाषा का अर्थबोधक व्यवहार' स्पष्ट किया है और 'सार' रूप में यही स्पष्ट किया है कि मनुष्य-समाज के भीतर भाषा का व्यवहार 'अर्थबोधक' ही होता है।

इस ग्रंथ के द्वितीय प्रकरण का नाम है- 'कला का सौन्दर्य रूपी अर्थ। द्वितीय प्रकरण के भीतर मैंने स्पष्ट किया है कि निसर्गतः ही कलाकार के रूप में कलात्मक क्रिया अर्थात् कला-सृजन की क्रिया करने की क्षमता केवल प्रतिभासम्पन्न अर्थात् कल्पनासम्पन्न मनुष्य ही कर सकता है। जिस मनुष्य को निसर्गप्रदत्त यानी प्रकृतिप्रदत्त असाधारण देन के रूप में प्रतिभा अर्थात् कल्पना मिली रहती है, वही मनुष्य कलाकार के रूप में एक साथ भावुक, विचारक तथा कल्पक बना रहता है। किसी प्रभावक जीवनानुभूति से कलाकार प्रभावित होकर अपने हृदय से भावुक बना रहता है, बुद्धि (प्रज्ञा) से विचारक बना रहता है और कल्पना से कल्पक बना रहता है। फलस्वरूप कलाकार के मानस मे भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का समुचित समन्वय होकर 'त्रिविध कलाकारार्थ' यानी 'कलाकारार्थ' उभर जाता है, जिसे कलाकार वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला,सगीत कला अथवा साहित्यकला के रूप मे अभिव्यक्त करके 'त्रिविध कलार्थ यानी 'कलार्थ' ही बना देता है। कला का आस्वादन करने वाले सहृदय के लिए यही 'कलार्थ' आप ही आप 'सहृदयार्थ' बन जाता है। कला में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के आधार पर अपने आप आनन्दप्रद 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन जाता है इसी वास्तविकता को द्वितीय प्रकरण के भीतर
मूर्तिकला चित्रकला और के सन्दर्भ में मैंने स्पष्ट

किया है। अतएव इस ग्रंथ के तृतीय प्रकरण की ओर अग्रसर होने से पहले द्वितीय प्रकरण को बहुत अच्छी तरह से समझना अत्यावश्यक है।

इस ग्रथ के तृतीय प्रकरण का नाम है- 'साहित्य का कलार्थ रूपी सौन्दर्य'। तृतीय प्रकरण के भीतर मैंने स्पष्ट किया है कि साहित्यकार भी निसर्गतः ही कलाकार होता है। साहित्यकार अपने 'कलाकारार्थ' (साहित्यकारार्थ) को साहित्य-कला के रूप मे अभिव्यक्त करने के लिए उस भाषा को ही स्वीकारता है, जिसका व्यवहार अर्थबोधक ही होता है। फलस्वरूप साहित्यकार का अपना 'कलाकारार्थ' अर्थबोधक भाषा-कृति अर्थात् भाषिक कला-कृति यानी भाषामय साहित्य-कृति के रूप में अभिव्यक्त होकर 'कलार्थ' बन जाता है, जो अपने मूल रूप में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का त्रिविधात्मक समन्वित रूप होता है।

साहित्य-कृति में व्याप्त रहने वाला 'कलार्थ' अपनी त्रिविधात्मकता, समन्वयात्मकता विश्वात्मकता, बिम्बात्मकता, रूपात्मकता, एकरूपात्मकता, मौलिकता, शृंखलित सघनता, प्रभावात्मकता, सौन्दर्यात्मकता, आनन्द-प्रदानात्मकता, कलामूल्यात्मकता और जीवनमूल्यात्मकता इन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के बल पर विभिन्न अर्थों का रूप धारण करने की क्षमता रखता है। इससे 'कलार्थ' अपने आप आनन्दप्रद 'सौन्दर्य' बनकर रहता है। इस प्रकार की वास्तविकता को ही तृतीय प्रकरण में मैंने स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

तृतीय प्रकरण मे मैंने कलार्थ रूपी आनन्दप्रद सौन्दर्य को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हुए उदाहरण के रूप में कुछ दोहों को, कुछ पदों को और कुछ कविताओं को ...क काव्य के रूप में और अभिनेय कथा-साहित्य के रूप मे नाटककार मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' नाटक को भी स्वीकार किया है और उन सबमे व्याप्त 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया है। मै तृतीय प्रकरण के अन्त में जिस तथ्यपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ, वह इस प्रकार का है - साहित्य की आत्मा कलार्थ-सौन्दर्य ही है : साहित्यस्यात्मा कलार्थ-सौन्दर्यम्'।

'साहित्य का कलार्थ-सौन्दर्य-सिद्धान्त' नामक मेरा यह ग्रंथ यदि साहित्य का सौन्दर्य जानने-समझने के हेतु प्रवृत्त हुए जिज्ञासु के लिए पथप्रदर्शक बनता रहेगा, तो इस ग्रंथ की रचना करने की मेरी सुदीर्घ तथा अथक तपस्या सार्थक होती रहेगी।

इस ग्रंथ की रचना निर्विघ्न पूर्ण होती रहे, इसके लिए मेरी धर्मपत्नी सौ.लतिका उर्फ़ लता ने और सुनीतकुमार, उज्ज्वलकुमार तथा राहुलकुमार इन तीनों सुपुत्रो ने संस्मरणीय सहयोग देकर मुझे सदैव प्रसन्न एवं उत्साही रखा है। इन सब आत्मीयों के निःस्वार्थ सहयोग से ही मैं 'ज्ञानयोगी' बनने में सफल हुआ हूँ। इन्हे लेखन-काल मे कष्ट उठाना पड़ता है, इसलिए मैं ईश्वर से क्षमा चाहता हूँ।

प्रियवर डॉ. चन्दूलाल दुबे (धारवाड,कर्नाटक), डॉ. ब्रह्मदेव मिश्र (गौर, वाराणसी) डॉ. (श्रीमती) गिरीश रस्तोगी (गोरखपुर), डॉ. पुष्पपाल सिह (पटियाला), डॉ नर नारायणराय (गढ़बनैली, पूर्णिमा, बिहार), डॉ राम अवध शास्त्री (अमरोहा), डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर (मुंबई), डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, डॉ. हनुमान साने, डॉ. (श्रीमती) निशा ढवले, डॉ. केशव प्रथम वीर, भि. शि. शिदे, प्रा.यशवंत भिमाले (पुणे), डॉ. दयानन्द शर्मा (नगर), डॉ. प्रभाकर पाठक, प्रा. (श्रीमती) उज्ज्वला प्रभाकर पाठक, प्रा. प्रभाकर माढेकर

प्रा निशिकान्त ठकार (सोलापुर), डॉ. चन्द्रदेव कवडे, डॉ. नारायण शर्मा, डॉ कमलाकर गगावणे (औरगाबाद), डॉ व्ही. के. मोरे, डॉ. पी. एस. पाटील (कोल्हापुर), डॉ. बी वाय्. यादव, डॉ डी जी. कश्यपी, डॉ. (श्रीमती) स्वाति डी. कश्यपी, प्राचार्य व. न इगले, ग्रंथपाल पांडुरग इंगले, प्रा. सुभाष अंबादास पाटील, श्रीमती शुभांगी एस्. पाटील प्रा जी. ई. जाधव, प्रा. राम चांदुरकर, प्रा. (श्रीमती) सुचित्रा आर्. चांदुरकर, भ्राता चद्रकांत गायकवाड, प्रा तुकाराम लोखंडे, प्रा. रघुनाथ भोसले, प्रा. राणू कदम, प्रा.देवीदास इगले, डॉ. अर्जुन चह्वाण, डॉ. इरेश स्वामी, डॉ. विजय जाधव, डॉ. अजीज नदाफ, डॉ सत्यपाल श्रीवास्तव, प्रा. (श्रीमती) अंजली एस्. श्रीवास्तव, मुख्याध्यापक भीमराव राजगुरु प्रा शशिकांत गायकवाड, प्रा. मनोज कुदले, प्रा.संजय नवले, रामचंद्र, वासुदेव जोशी प्रा (श्रीमती) रजनी आर्. जोशी, प्रा.(श्रीमती) सुधाताई सराफ, प्रा. (श्रीमती) सुमन चह्वाण प्रा (श्रीमती) जे. आय्. अत्तार, डॉ. (श्रीमती) र.ग.देसाई, डॉ. (श्रीमती) मृणालिनी जमदग्नि डॉ (श्रीमती) भाग्यश्रीगिरी, प्रा. (श्रीमती) रजनी भागवत, डॉ. बापूराव देसाई, डॉ. प्रकाश जाधव, डॉ.मोहन जाधव, प्रा. एम्. डी. शिंदे, प्रा. भगवान डी. कदम, प्रा. राजेन्द्र दास डॉ नरेन्द्र कुंटे, डॉ शंकरराव वाडकर, डॉ. गजानन सुर्वे, डॉ सुरेश गायकवाड, डॉ राजेन्द्र शहा, प्रा (श्रीमती) भारती शेवके, डॉ. (श्रीमती) मीना खाडिलकर, डॉ. (श्रीमती) पद्मा पाटील डॉ. (श्रीमती) नसीमा पठाण, प्रा. गणपत राठोड, प्रा. महादेव खोत, प्रा ए वी नागरगोजे, प्रा. श्रीमंत गुंड, प्रा. एस्. के. खोत, डॉ. बी. डी. पाटील, डॉ. सुनीलकुमार लवटे, प्रा. नानासाहेब साकुंखे, प्रा. अरविंद पोतदार आदि सुहृद मेरे ग्रंथ-लेखन का आदर करते रहे हैं और मुझे ग्रंथ-लेखन के लिए सदा प्रोत्साहन देते रहे हैं। मैं ह्रदय से इन सबका आभारी हूँ।

'साहित्य रत्नालय' इस प्रकाशन-संस्था के प्रकाशक श्री.महेश चन्द्र त्रिपाठी ई सन् १९६७ से मेरे मित्र रहे हैं। वे आरम्भ में 'ग्रन्थम' प्रकाशन संस्था से संबधित थे। एक दिन स्वयं श्री. महेश ने प्रकाशक के रूप मे आत्मविश्वास के साथ 'पुस्तक संस्थान प्रकाशन-संस्था आरम की। सन् १९७५ में श्री. महेश ने 'पुस्तक संस्थान' के द्वारा मेरा ग्रथ 'आधुनिक हिन्दी नाटकों में सघर्ष तत्त्व' बढ़िया ढंग से प्रकाशित किया। आगे चलकर श्री. महेश अपने सराहनीय कर्तृत्व से 'साहित्य रत्नालय' इस सुप्रसिद्ध प्रकाशन-संस्था के मालिक बन गये। श्री. महेश ने सन् १९९४ मे अपने सुप्रसिद्ध 'साहित्य रत्नालय' प्रकाशन के द्वारा मेरा ग्रंथ 'पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्त और विविध वाद' सुचारू रीति से प्रकाशित किया है।

अपनी बरसों की मित्रता का सम्मान करने के उद्देश्य से अब श्री महेश ने मेरा सर्वोत्कृष्ट ग्रथ 'साहित्य का कलार्थ- सिद्धान्त बहुत ही आकर्षक रीति से प्रकाशित कर मुझे अनुगृहीत किया है। इस सिलसिले मे 'साहित्य रत्नालय' के प्रतिनिधि श्री गिरीश तिवारी का भी मुझे महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला है। अतएव मैं अन्तःकरणपूर्वक मित्रवर श्री महेश चन्द्र त्रिपाठी और श्री गिरीश तिवारी का कृतज्ञ हूँ।

ईश्वर की कृपा से मेरा अपना वर्षों की तपश्चर्या का फल रूपी ग्रंथ 'साहित्य का कलार्थ-सौन्दर्य-सिद्धान्त' सुधी पाठको के हाथों मे देते हुए मैं अतीव प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

ई स १९९६ डॉ काशीनाथ राजवंश

विषय-क्रम

प्रथम प्रकरण

भाषा का अर्थबोधक व्यवहार

१- भाषा का अस्तित्व

मनुष्य-समाज में भाषा का अस्तित्व एक चमत्कार ही है । काव्य-कला या साहित्य-कला की दृष्टि से तो भाषा का अस्तित्व महान चमत्कार है ।

कला के क्षेत्र में 'काव्य' या 'साहित्य' का उच्चारण करते ही उस कला का अर्थ बोध होता है, जो भाषा से ही अस्तित्व में आ जाती है । भाषा नहीं होगी तो 'काव्य' या 'साहित्य भी नहीं होगा ।

जो भाषा कला का रूप धारण करने वाले 'काव्य' या 'साहित्य' का एक मात्र आधार होती है, उस भाषा के विषय मे प्रश्न यह उठता है कि भाषा कैसे और किसलिए अस्तित्व में आती है ?

प्रस्तुत प्रश्न के उत्तर मे भाषा के परस्पराश्रित अभिन्न मूलभूत घटकों पर अपना ध्यान केन्द्रित हो जाता है और तब समझ मे आ जाता है कि मनुष्य-समाज मे 'ध्वनि, शब्द पद वाक्य और अर्थ, इन परस्पराश्रित अभिन्न मूलभूत घटको के संयोग से ही भाषा अस्तित्व मे आती है ।

मनुष्य-समाज मे भाषा के अस्तित्व में आने का मूलभूत रहस्य यह है कि प्रकृति मनुष्य को जन्म के साथ ही अत्यन्त महत्वपूर्ण देन के रूप मे विभिन्न उच्चारण-अवयव प्रदान कर देती है ! इन्हीं उच्चारण-अवयवो के सहयोग से भाषा की वे विभिन्न ध्वनियाँ अस्तित्व मे आ जाती हैं, जो भाषा का पहला मूलभूत घटक होती हैं ।

जो विभिन्न ध्वनियाँ भाषा का पहला मूलभूत घटक होती है, वे ध्वनियाँ प्रथम उच्चारण के रूप मे अस्तित्व मे आ जाती है और तत्पश्चात् शीघ्र ही श्रवण के रूप मे उनके अस्तित्व का अर्थबोध हो जाता है ।

मनुष्य के मुख मे और गले मे भाषा की विभिन्न ध्वनियो के उच्चारण के लिए उपयोग मे आने वाले श्वास नलिका, स्वर तंत्री, स्वर यंत्र मुख (काकल), स्वर यत्र मुख-आवरण (अभिकाकल), उप अलिजिव्ह (कठमार्ग), अलिजिव्ह (कौवा), कंठ जिव्हामूल जिव्हापश्च जिव्हामध्य, जिव्हाग्र, जिव्हानोक, कोमल तालु मूर्धा (पूर्व तालु), कठोर तालु, वर्त्स, दत ओष्ठ और नासिका विवर आदि अवयव सभी उच्चारण-अवयव है । ये सभी उच्चारण-अवयव फेफड़े (फुप्फुस) के द्वारा श्वास नलिका की ओर फेकी गयी प्रश्वास रूपी हवा को गले मे तथा मुख-विवर मे स्थान-स्थान पर कुछ रोकने के प्रयत्न मे भाषा की ध्वनियो का उच्चारण करत है इस प्रकार स उच्चारित भाषा ध्वनियो का श्रवण मनुष्य क कानो से किया जाता

है । स्पष्ट है कि प्रथम मनुष्य से उच्चारण के रूप मे भाषा-ध्वनियाँ अस्तित्व में आ जाती हैं और तत्पश्चात् शीघ्र ही मनुष्य को श्रवण के रूप में उन भाषा-ध्वनियों के अस्तित्व का अर्थबोध हो जाता है । इस प्रकार उच्चारण और श्रवण भाषा-ध्वनियो की उत्पत्ति और अर्थबोधकता के लिए अनिवार्य दो क्रियाएँ है ।

प्रश्वास रूपी हवा और उच्चारण-अवयवो के सहयोग से उच्चारण के रूप मे उत्पन्न होने वाली भाषा-ध्वनियों में से कुछ ध्वनियाँ स्वर कहलायी जाती हैं, तो कुछ ध्वनियाँ व्यंजन कहलायी जाती हैं । इस कारण से ही भाषा की कुछ ध्वनियों का अर्थबोध 'स्वर' के रूप मे होता है तो कुछ ध्वनियों का अर्थबोध 'व्यंजन' के रूप में होता है ।

उच्चारण-अवयवों के द्वारा प्रयत्न के रूप में प्रश्वास रूपी हवा को मुख में या श्वास नलिका में कही पूर्ण रूप से रोके बिना सीधा बाहर जाने देने से भाषा की स्वर-ध्वनियों का उच्चारण हो जाता है । इसके विरुद्ध उच्चारण-अवयवों के द्वारा प्रयत्न के रूप में प्रश्वास-रूपी हवा को श्वास नलिका तथा मुख में स्थान-स्थान पर कुछ रोकने से और फिर उसे झट से बाहर जाने देने से भाषा की व्यंजन-ध्वनियों का उच्चारण हो जाता है ।

प्रश्वास रूपी हवा तथा उच्चारण-अवयवों के सहयोग से हिन्दी भाषा की जिन ध्वनियों का उच्चारण होता है, वे ध्वनियाँ इस प्रकार हैं -

(१) स्वर-ध्वनियाँ :- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए ऐ, ओ औ ।

(अब हिन्दी भाषा की स्वर-ध्वनियों में अंग्रेजी भाषा का 'ऑ' स्वर भी प्रचलित हुआ है । संस्कृत भाषा का 'ऋ' स्वर अब हिन्दी भाषा में 'र्इ=रि' के रूप मे उच्चारित होता है ।)

(२) व्यंजन-ध्वनियाँ :-

क्, ख्, ग्, घ्, ङ्
च्, छ्, ज्, झ्, ञ्
ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्
त्, थ्, द्, ध्, न्
प्, फ्, ब्, भ्, म्
य्, र्, ल्, व्,
श्, ष्, स्, ह् ।

(अन्य भाषा के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी भाषा की व्यंजनध्वनियो मे अरबी-फारसी भाषाओं की 'क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ढ़, ड़, ढ़' व्यंजन-ध्वनियाँ भी प्रचलित हुई हैं।)

२. स्वरों की अर्थबोधकता

(प-१). हिन्दी भाषा की स्वर-ध्वनियों में से 'इ, ई, ए, ऐ' इन स्वरो के उच्चारण के लिए जिव्हा का अग्र भाग ऊपर की ओर उठता है, इसलिए इनको 'अग्र स्वर' कहा जाता है जिससे इनके 'अग्र स्वर' होने का अर्थ बोध हो जाता है ।

(प-२) 'अ' स्वर के उच्चारण के लिए जिव्हा का मध्य भाग ऊपर उठता है, इसलिए इसे 'मध्य स्वर' कहा जाता है, जिससे इसके 'मध्य स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है ।

(प ३). आ, उ, ऊ, ओ, औ, ऑ' इन स्वरो के उच्चारण के लिए जिव्हा का पश्च भाग ऊपर की ओर उठता है, इसलिए इनको 'पश्च स्वर' कहा जाता है, जिससे इनके 'पश्च स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है ।

(फ-१). 'आ' स्वर के उच्चारण मे जिव्हा का पश्च भाग थोडा ऊपर उठता है जिससे जिव्हा और तालु के मध्य अधिक अन्तर बना रहता है । इसलिए 'आ' स्वर को 'विवृत्त स्वर' कहा जाता है और उसके 'विवृत्त स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है ।

(फ-२). 'ऐ, अ, औ, ऑ' इन स्वरों के उच्चारण में क्रमानुसार जिव्हा का अग्रभाग ('ऐ' के उच्चारण मे), जिव्हा का मध्य भाग ('अ' के उच्चारण मे) और जिव्हा का पश्च भाघ ('औ, ऑ' के उच्चारण मे) थोडा ज्यादा ऊपर उठता है, जिससे जिव्हा और तालु के मध्य का अधिक अन्तर थोडा कम हो जाता है । इसलिए इन स्वरों को 'अर्ध विवृत स्वर' कहा जाता है और उनके 'अर्ध विवृत स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है ।

(फ-३) 'ए,ओ' इन स्वरों के उच्चारण मे क्रमानुसार जिव्हा का अग्रभाग और पश्च भाग ज्यादा से ज्यादा ऊपर उठता है, जिससे जिव्हा और तालु के मध्य कुछ कम अन्तर बना रहता है । इसलिए इन स्वरों को 'अर्ध संवृत स्वर' कहा जाता है और इनके 'अर्ध संवृत स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है ।

(फ-४). 'इ, ई, उ, ऊ' इन स्वरो के उच्चारण में क्रमानुसार 'इ, ई' के उच्चारण में जिव्हा का अग्र भाग और 'उ, ऊ' के उच्चारण मे जिव्हा का पश्च भाग सबसे ज्यादा ऊपर उठता है जिससे जिह्वा और तालु के मध्य बहुत ही कम अन्तर बना रहता है । इसलिए इन स्वरो को 'संवृत् स्वर' कहा जाता है और इनके 'संवृत स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है ।

(ब-१). 'इ, ई, ए, ऐ' इन अग्र स्वरों के उच्चारण में ओष्ठ अपनी स्वाभाविक स्थिति में खुले रहते हैं, इसलिए इनको 'प्रसृत स्वर' कहते है, जिससे इन स्वरों के 'प्रसृत होने' का अर्थबोध हो जाता है ।

(ब-२). 'उ, ऊ, ओ, औ, आ, ऑ' इन पश्च स्वरों के उच्चारण मे ओष्ठ वर्तुलाकार स्थिति मे खुले रहते है, इसलिए 'उ, ऊ, ओ, औ, ऑ' इन स्वरों को 'वर्तुन स्वर' वक्ष्मा जाता है जिससे इनके 'वर्तुल स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है और 'आ' स्वर को 'अर्ध वर्तुल' स्वर कहा जाता है, जिससे उसके 'अर्ध वर्तुल स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है । इन छह स्वरों को 'वृत्त मुखी स्वर' भी कहा जाता है ।

(ब-३) 'अ' स्वर के उच्चारण में ओठों की कोई विशेष स्थिति नहीं बनती, इसलिए इसे 'उदासीन स्वर' कहते है, जिससे उसके 'उदासीन स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है।

(भ-१). 'अ, इ, उ' इन स्वरो के उच्चारण मे कम समय लगता है और मुख की मासपेशियाँ शिथिल स्थिति में रहती है, इसलिए इनको 'ह्रस्व स्वर' या 'शिथिल स्वर' कहा जाता है, जिससे इनके 'ह्रस्व स्वर' तथा 'शिथिल स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है ।

(भ-२) 'आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऑ' इन स्वरों के उच्चारण में ज्यादा समय लगता है और मुख की मॉसपेशियाँ दृढ़ (कठोर) बनी रहती है, इसलिए इनको 'दीर्घ स्वर' या 'दृढ स्वर' कहा जाता है जिससे इनके 'दृढ स्वर' तथा 'दीर्घ स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है ।

(न). हिन्दी भाषा के सभी स्वरों के उच्चारण मे श्वास नलिका के भीतर स्वर-तंत्रियाँ एक दूसरी के निकट इतना आ जाती है कि उनके बीच में से बाहर की ओर निकल जाते समय प्रश्वास रूपी हवा स्वर-तंत्रियों के साथ घर्षण करके उनमे कम्पन उत्पन्न करती है। इसलिए इन सभी स्वरो को 'घोष स्वर' या 'सघोष स्वर' कहते है, जिससे इनके 'घोष स्वर होने का अर्थबोध हो जाता है । घोषत्व के कारण ही 'सुर' अर्थात् 'स्वराघात' इस ध्वनि-गुण के साथ इन घोष स्वरों का महत्वपूर्ण सम्बन्ध बना रहता है ।

(य). हिन्दी भाषा के सभी स्वर 'मूल स्वर', 'अचल स्वर' तथा 'असंयुक्त स्वर है जिससे उनके 'अचल स्वर' तथा 'असंयुक्त स्वर' होने का अर्थबोध हो जाता है । लेकिन कभी-कभी 'ऐ' स्वर का उच्चारण 'अइ' (नैया=न्अइया=नइया, भैया=भ्अइया=भइया) और 'औ' का उच्चारण 'अउ' (कौवा=क्अउवा=कउवा) ऐसा किया जाता है । उस समय 'ऐ और 'औ' इन स्वरों का अर्थबोध 'संयुक्त स्वर' या 'स्वर गुच्छ' या 'संध्यक्षर' या 'चल स्वर' के रूप मे होता है । 'अइ' या 'अउ' के उच्चारण में जिव्हा को 'अ' स्वर की उच्चारण की स्थिति से 'इ' या 'उ' स्वर की उच्चारण की स्थिति मे चलित होना पड़ता है इसलिए इन दोनों का अर्थबोध 'चलित स्वर' के रूप में होता है ।

(र) जब जब हिन्दी भाषा के स्वरों के उच्चारण में कोमल तालु और कौवा (अलिजिव्ह) कुछ नीचे झुककर हवा का नासिका बिवर मे से बाहर निकल जाने देते है, तब-तब ऐसे स्वर अस्तित्व में आ जाते है, जिनका अर्थबोध 'नासिक्य स्वर' अर्थात् 'अनुनासिक स्वर' के रूप मे हो जाता है । ऐसी स्थिति में हिन्दी भाषा के सभी स्वर 'नासिक्य स्वर' अर्थात् 'अनुनासिक्य स्वर' बने रहते हैं, जैसे, अँ, आँ, इँ, ईं उँ, ऊँ, एँ, ऐं ओं औं ।

स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा का प्रत्येक स्वर भिन्न-भिन्न प्रकार के उच्चारणजनित प्रभाव का अर्थबोधक है, जैसे -

१. 'अ' स्वर, मध्य, अर्धविवृत, उदासीन, ह्रस्व (शिथिल), घोष व मूल स्वर का अर्थबोधक है ।

२. 'आ' स्वर, पश्च, विवृत, अर्धवर्तुल, दीर्घ (दृढ), घोष तथा मूल स्वर का अर्थबोधक है ।

३. 'इ' स्वर, अग्र, संवृत प्रसृत, ह्रस्व (शिथिल), घोष तथा मूल स्वर का अर्थबोधक है ।

४. 'ई' स्वर, अग्र, सवृत, प्रसृत, दीर्घ (दृढ), घोष तथा मूल स्वर का अर्थबोधक है।

५. 'उ' स्वर, पश्च, संवृत, वर्तुल, ह्रस्व (शिथिल) घोष तथा मूल स्वर का अर्थबोधक है ।

६. 'ऊ' स्वर पश्च, संवृत, वर्तुल, दीर्घ (दृढ़), घोष तथा मूल स्वर का अर्थबोधकहै।

७. 'ए' स्वर, अग्र, अर्धसंवृत, प्रसृत, दीर्घ (दृढ़), घोष तथा मूल स्वर का अर्थबोधक है ।

८ 'ऐ' स्वर, अग्र, अर्धसंवृत, वर्तुल, दीर्घ (दृढ़), घोष तथा सयुक्त स्वर का भी अर्थबोधक है ।

९. 'ओ' स्वर, पश्च, अर्धसवृत, वर्तुल, दीर्घ (दृढ) घोष तथा मूल स्वर का अर्थबोधक है ।

१०. औ स्वर, पश्च, अर्धविवृत, वर्तुल, दीर्घ (दृढ़), घोष तथा संयुक्त स्वर का भी अर्थबोधक है ।

स्वरो की अर्थबोधकता के विषय में निष्कर्ष ये है कि -

(१). प्रत्येक स्वर अपने भिन्न-भिन्न प्रकार के उच्चारण जनित प्रभाव का अर्थबोधक है ।

(२). 'अ, इ, उ' ये ह्रस्व तथा शिथिल स्वर सबसे अधिक उच्चारण जनित कोमल प्रभाव का अर्थात् कोमलता (सुकुमारता) का अर्थबोधक है । क्योंकि इन तीन स्वरों के उच्चारण मे मुख की मांस पेशियाँ सबसे अधिक शिथिल रहती है । इन तीनों में भी 'उ' स्वर सर्वाधिक कोमलता का अर्थबोधक है । उसके बाद 'इ' स्वर अधिक कोमलता का अर्थबोधक है, तो उससे कम 'अ' स्वर कोमलता का अर्थबोधक है ।

(३). 'आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ' ये दीर्घ तथा दृढ़ स्वर भी कोमलता का अर्थबोधक हैं । लेकिन इन स्वरों के उच्चारण में मुख की मांस पेसियाँ कुछ दृढ अर्थात् कठोर बनी रहती हैं । इसलिए ये दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वरों की तुलना में उच्चारणजनित कम कोमल प्रभाव का अर्थात् कम कोमलता का अर्थबोधक हैं । इन दीर्घ स्वरो में से 'ओ' स्वर अधिक कोमलता का अर्थबोधक है, उससे कम 'ए' दीर्घ स्वर, उससे कम 'औ' दीर्घ स्वर उससे कम 'ऐ' दीर्घ स्वर, उससे कम 'ऊ' दीर्घ स्वर और उससे भी कम 'ई' या 'आ' दीर्घ स्वर उच्चारणजनित कोमल प्रभाव का अर्थात् कोमलता का अर्थबोधक है । एक दृष्टि से 'आ' स्वर सभी स्वरों से कम कोमलता का अर्थबोधक है, तो दूसरी दृष्टि से सभी स्वरों में उच्चारणजनित कुछ कठोर प्रभाव का अर्थात् कुछ कठोरता का अर्थबोधक है ।

(४) सभी स्वर 'घोष' (सघोष) होने के कारण उच्चारणजनित श्रुतिमधुर प्रभाव अर्थात् संगीतात्मक प्रभाव का अर्थबोधक हैं । इसका अर्थ यह है कि सभी घोष स्वर श्रुतिमधुरता अर्थात् संगीतात्मकता अर्थात् नाद सौन्दर्य अर्थात् ध्वन्यात्मक सौन्दर्य का अर्थ बोधक हैं ।

(५). प्रत्येक स्वर जिस प्रकार उच्चारणजनित विशिष्ट प्रभाव का अर्थबोधक है, उसी प्रकार प्रत्येक स्वर 'अर्थभेदक ध्वनि-प्रतीक' भी है । इस प्रकार की विशेषता के कारण ही शब्द मे किसी एक स्वर के स्थान पर किसी दूसरे स्वर का प्रयोग नही किया जा सकता। जैसे 'अमर' और 'उमर' इन दो शब्दो में 'अ' और 'उ' दोनो स्वर अपने-अपने स्थान पर 'अर्थभेदक ध्वनि-प्रतीक' हैं । ठीक इसी तरह 'सेर' (स्एर्अ) और 'सैर' (=स्ऐर्अ) इन दो शब्दो मे भी 'ए' और 'ऐ' ये दोनो स्वर अपने-अपने स्थान पर 'अर्थभेदक ध्वनि-प्रतीक' हैं ।

स्पष्ट है कि भाषा की स्वर-ध्वनियो में से प्रत्येक स्वर-ध्वनि अपने-अपने भिन्न-भिन्न प्रकार के उच्चारणजनित प्रभाव का अर्थबोधक है और साथ ही 'अर्थबोधक ध्वनि-प्रतीक' के रूप मे विशिष्ट अर्थ का भी बोधक है । अतएव भाषा की स्वर-ध्वनि 'एक विशिष्ट अर्थ-प्रतीक' भी है ।

३. व्यंजनों की अर्थबोधकता

(अ-१). कण्ठ के पास जिव्हापश्च और कोमल तालु के सहयोग से जिन हिन्दी ध्वनियों का उच्चारण होता है, उन 'क्, ख्, ग्, घ् ङ्' ध्वनियो को 'कंठय व्यंजन' कहते हैं, जिससे इनके 'कठ्य व्यजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(अ-२). कठोर तालु के पास जिह्वामध्य और कठोर तालु के सहयोग से जिनका उच्चारण होता है, उन 'च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, य्, श्' ध्वनियो को 'कठोर तालव्य व्यंजन' कहते हैं जिससे इनके 'कठोर तालव्य व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(अ-३). मूर्धा (पूर्वतालु अर्थात् कठोर तालु और कोमल तालु के बीच के भाग) के पास जिह्वाग्र और मूर्धा के सहयोग से जिनका उच्चारण होता है, उन 'ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ष ड़्, ढ़्' ध्वनियों को 'मूर्धन्य व्यंजन' (या पूर्वतालव्य व्यंजन) कहते हैं, जिससे इनके 'मूर्धन्य व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(अ-४). ऊपर के दन्तो के पास जिह्वानोक और ऊपर के दन्तों के सहयोग से जिनका उच्चारण होता है, उन 'त्, थ्, द्, ध्' ध्वनियो को 'दन्त्य व्यंजन' कहते हैं जिससे इनके 'दन्त्य व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(अ-५) ऊपर के ओष्ठ के पास नीचे के ओष्ठ और ऊपर के ओष्ठ के सहयोग से जिनका उच्चारण होता है, उन 'प्, फ्, ब्, भ्, म्' ध्वनियो को 'ओष्ठय व्यंजन' (या द्वयोष्ठय व्यंजन) कहते हैं जिससे इनके 'ओष्ठय व्यंजन' होन का अर्थबोध होता है ।

(अ-६). ऊपर के दन्तों की नोक के पास नीचे के ओष्ठ और ऊपर के दन्तो की नोक के सहयोग से जिनका उच्चारण होता है, उन 'व्, फ, व' ध्वनियो को 'दंत्योष्ठय व्यंजन' कहते हैं, जिससे इनके 'दंतोष्ठय व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है।

(अ-७). वर्त्स (ऊपर का मसूढ़ा) के पास जिव्हा के अगले भाग और वर्त्स के सहयोग से जिनका उच्चारण होता है. उन 'न्, र्, ल्, स्, ज' ध्वनियो को 'वर्त्स्य व्यंजन(कहते है, जिससे इनके 'वर्त्स्य व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(अ-८). कौवा (अलिजिह्व) के पास जिह्वामूल और कौवे के सहयोग से जिनका उच्चारण होता है, उन 'क़, ख़, ग' ध्वनियों को 'अलिजिव्हीय व्यंजन' (या 'जिह्वामूलीय व्यंजन) कहते है, जिससे इनके 'अलिजिह्वीय व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(अ-९). स्वर-तंत्रियों के एक-दूसरी के निकट आने पर प्रश्वास रूपी हवा के आघात से उनमे कपन उत्पन्न होता है और ऐसी स्थिति में जिसका उच्चारण होता है, उस 'ह्' ध्वनि को 'स्वर-यन्त्र-मुखी-व्यंजन' या 'काकल्य व्यंजन' कहते हैं, जिससे इसके 'स्वर-यंत्र-मुखी-व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-१). व्यंजन-ध्वनियो के उच्चारण में प्रश्वास रूपी हवा को थोड़ा रोकने के लिए दो उच्चारण-अवयवो का जो सहयोग आवश्यक होता है, उसे 'प्रयत्न' कहते हैं। इसी प्रयत्न से 'क्, ख्, ग्, घ, ट्, ठ्, ड्, ढ्, त्, थ्, द्, ध्, प्, फ, ब्, भ्, क़' इन व्यजन-ध्वनियो के उच्चारण के लिए नीचे के उच्चारण-अवयव (जो चलित होने से 'करण' कहलाये जाते है, वे) ऊपर के (अचल) उच्चारण-अवयवों के पास जाकर उनसे स्पर्श करते है, प्रश्वास रूपी हवा को थोडा रोकते है और फिर झट से अलग होकर अपने बीच मे से हवा को बाहर जाने देते हैं । इस प्रकार के प्रयत्न के कारण इन सभी व्यंजन-ध्वनियो को स्पर्श व्यजन' कहते हैं, जिससे इनके ... व्यंजन' होने का अर्थबोध हो जाता है ।

'स्पर्श व्यंजन-ध्वनियों' के उच्चारण मे जब तीनों क्रियाएँ होती है तब उन्हें 'पूर्ण स्पर्श व्यंजन' कहते हैं । 'पूर्ण स्पर्श व्यंजन' के उच्चारण ... पहली क्रिया दो उच्चारण-अवयवों के स्पर्श की होती है, दूसरी क्रिया उस स्पर्श से प्रश्वास ... की हवा को थोडा रोकने की होती है और तीसरी क्रिया स्पर्श किए गये उच्चारण-अवयवो का झट से अलग होकर

अपने बीच मे से हवा को सीधा (अर्थात् घर्षण रहित स्थिति में) बाहर जाने देने की होती है । तीसरी क्रिया के हो जाने पर ही उपर्युक्त १७ व्यजनों का उच्चारण हो जाता है इसीलिए इन व्यंजनो को 'स्फोट व्यंजन' (या 'स्फोटन व्यंजन') कहते है, जिससे 'पूर्ण स्पर्श व्यंजन' के 'स्फोट व्यंजन' होने का भी अर्थबोध होता है । इनके लिए होनेवाली तीसरी क्रिया को 'स्फोट' या 'स्फोटन' कहते हैं । अर्थात् यहाँ तीसरी क्रिया का अर्थबोध 'स्फोट' के रूप में होता है ।

लेकिन जब 'पक्का', 'पक्व', 'सप्त' जैसे शब्दों में पूर्ण स्पर्श व्यंजन द्वित्व व्यंजन (=क्का=क्का) अथवा संयुक्त व्यंजन (=क्व/सप्त=स्प्त) बनकर आता है तब उसके उच्चारण में 'स्फोट' की तीसरी क्रिया नहीं होती । इसलिए ऐसी स्थिति में द्वित्व व्यंजन या संयुक्त व्यजन को 'अपूर्ण स्पर्श व्यजन' कहते हैं, जिससे उसके 'अपूर्ण स्पर्श व्यंजन' होने का अर्थबोध हो जाता है । अतएव 'पक्का' तथा 'पक्व' में 'क्' और 'सप्त' में 'प्' अपूर्ण स्पर्श व्यंजन होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-२) जब पहली दो, क्रियाओ के पश्चात् 'स्फोट' की तीसरी क्रिया 'च्, छ्, ज्, झ्' इन स्पर्श व्यंजनों के उच्चारण में भी हो जाती है, तब प्रश्वास रूपी हवा दो उच्चारण-अवयवों के बीच में से 'घर्षण' करती हुई बाहर निकल जाती है, इसलिए इन चार स्पर्श व्यंजनों को 'स्पर्श सघर्षी व्यंजन' कहते हैं, जिससे इनके 'स्पर्श संघर्षी व्यजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-३). 'ह्, ख़्, ग़्, श्, ष्, स्, ज़्, फ़्, व़्' इन व्यंजनों के उच्चारण में उपर्युक्त तीनो क्रियाओं के बदले नीचे के उच्चारण-अवयव ऊपर के उच्चारण-अवयवों के कुछ निकट जाने की क्रिया होती है, जिससे दो उच्चारण-अवयवो में थोडी खुली जगह रहती है और हवा 'घर्षण' करती हुई बाहर निकल जाती है, इसलिए इन व्यंजन-ध्वनियों को 'संघर्षी व्यंजन' कहते हैं, जिससे इनके 'संघर्षी व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-४). 'ङ्, ञ, ण्, न्, म्' इन व्यजनो के उच्चारण के प्रयत्न में प्रश्वास रूपी हवा अधिक से अधिक नासिका विवर में से बाहर निकल जाती है, इसलिए इन व्यंजन-ध्वनियो को 'नासिक्य व्यजन' कहते है, जिससे इनके 'नासिक्य व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है।

(आ-५). 'ल' के उच्चारण के प्रयत्न में ऊपर उठी जीव्हानोक के दोनो पार्श्वो की ओर से प्रश्वास रूपी हवा बाहर निकलती रहती है, इसलिए इसे 'पार्श्विक व्यंजन' या 'द्विपार्श्विक व्यंजन' कहते हैं, जिससे इसके 'पार्श्विक व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-६) 'र' के उच्चारण के प्रयत्न में जिव्हानोक को वर्त्स से स्पर्श करने के लिए बेलन की तरह लपेटना या लुंठित करना पडता है, इसलिए इसे 'लुंठित व्यंजन' कहते हैं, जिससे इसके 'लुंठित व्यजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-७) 'ड़, ढ़' के उच्चारण के प्रयत्न में जिव्हानोक उलटकर मूर्धा पर झटके से आघात करती है, इसलिए इनको 'उत्क्षिप्त व्यंजन' कहते है, जिससे इनके 'उत्क्षिप्त व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-८) 'य, व्' के उच्चारण के प्रयत्न मे स्पर्श या घर्षण की स्थिति नही रहती, निकट आये उच्चारण-अवयवो के बीच में से हवा सीधी बाहर निकल जाती है, इसलिए इनको 'अर्धस्वर' भी कहते है जिससे इनके 'अर्ध व्यजन' और 'अर्ध स्वर' होने का भी अर्थबोध हो जाता है ।

(आ-९) 'ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ् ड्, ढ्, ण्, द्, ध् न् ब् भ्, म् य् र् ल्, व् ह्, ग़, ज व, ड, ढ' के उच्चारण के प्रयत्न में हवा निकट आयीं स्वर-तंत्रियों के साथ घर्षण करती हुई तथा उनमें कम्पन उत्पन्न करती हुई बाहर निकल जाती है, इसलिए इनको 'घोष व्यंजन' (या 'सघोष व्यंजन') कहते है, जिससे इनके 'घोष व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-१०) 'क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ्, श्, स्' के उच्चारण के प्रयत्न मे स्वर तंत्रियाँ एक-दूसरी से दूर रहती हैं, जिसके परिणामस्वरूप हवा घर्षण रहित स्थिति मे सीधी बाहर निकल जाती है, इसलिए इनको 'अघोष व्यंजन' कहते हैं, जिससे इनके अघोष व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-११) 'क्, ग्, ङ्, च्, ज्, ञ्, ट्, ड्, ण्, त्, द्, न्, प्, ब्, म्, य्, र्, ल्, व्, क ग, ज़, ढ़, ड़' के उच्चारण के प्रयत्न में हवा का कम बल भी पर्याप्त होता है, इसलिए इनको 'अल्पप्राण व्यंजन' कहते हैं, जिससे इनके 'अल्पप्राण व्यजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-१२) 'ख्, घ्, छ्, झ्, ठ्, ढ्, थ्, ध्, फ्, भ्, ह्, ख़ फ़, ढ़' के उच्चारण के प्रयत्न मे हवा का ज़्यादा बल आवश्यक होता है इसलिए इनको 'महाप्राण व्यंजन' कहते हैं, जिससे इनके 'महाप्राण व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है ।

(आ-१३) जब कभी एक ही व्यंजन का उच्चारण कुछ बढ़ जाता है तब 'द्वित्व व्यजन' अस्तित्व में आता है । जैसे, 'क्' का उच्चारण बढ़ने पर 'क्क' (पक्का), 'च्' का उच्चारण बढ़ने पर 'च्च्' (बच्चा/उच्चारण) और 'त्' का उच्चारण बढने पर 'त्—त्' (सत्ता) द्वित्व व्यजन बनता है और उसके 'द्वित्व व्यंजन' होने का अर्थबोध होता है !

(आ-१४) जब कभी दो व्यंजनों के मेल का उच्चारण किया जाता है, तब 'सयुक्त व्यजन' अस्तित्व में आता है । जैसे, 'क्' और 'व्' इन दो व्यंजनों के मेल के उच्चारण से 'क्व्' (पक्व), 'त', 'स', 'न' इन तीन व्यंजनों के मेल के उच्चारण से 'त्स्न्' (ज्योत्स्ना) और 'र्' 'त्', 'स्' तथा 'य्' इन चार व्यंजनों के मेल के उच्चारण से 'र्त्स्य' (वर्त्स्य) 'संयुक्त व्यजन' के अस्तित्व का अर्थबोध होता है । इस प्रकार के 'सयुक्त व्यंजन' का अर्थबोध 'व्यजन गुच्छ' के रूप में भी होता है ।

द्वित्व व्यंजन 'तथा संयुक्त व्यंजन के उच्चारण मे मुख की मांस पेशियाँ कुछ दृढ बन जाती है, इसलिए इनको 'दृढ़ व्यंजन' (कठोर व्यजन) कहते हैं, जिससे इनके 'दृढ़ व्यंजन होने का अर्थबोध होता है ।

यहाँ विदित होता है कि हिन्दी भाषा का प्रत्येक व्यंजन भिन्न-भिन्न प्रकार के उच्चारणजनित प्रभाव का अर्थबोधक है, जैसे,

१ क्' कंठय, स्पर्श, अघोष, अल्पप्राण व्यंजन-ध्वनि का अर्थबोधक है ।
२ ख्' " " अघोष महाप्राण " " "
३ ग्' " " घोष, अल्पप्राण " " "
४ 'घ्' " " घोष महाप्राण " " "
५ 'ङ्' " नासिक्य घोष अल्पप्राण " " "
६ च्' कठोर तालव्य, स्पर्श सघर्षी, अघोष, अल्पप्राण व्यंजन-ध्वनि का अर्थबोधक है।
७ छ्' " " अघोष महाप्राण " " "
८ ज्' " " " घोष ——— " " "

९ झ्' '' '' '' घोष महाप्राण '' '' ''
१० ञ्' '' '' नासिक्य घोष अल्पप्राण '' ''
११ ट्' मूर्धन्य (पूर्व तालव्य), स्पर्श, अघोष, अल्पप्राण व्यंजन-ध्वनि का अर्थबोधक है ।
१२ 'ठ्' '' '' '' अघोष महाप्राण '' '' ''
१३ 'ड्' '' '' '' घोष अल्पप्राण '' '' '' ''
१४ ढ्' '' '' '' घोष महाप्राण '' '' ''
१५ 'ण्' '' '' नासिक्य घोष अल्पप्राण '' ''
१६ त' दंत्य, स्पर्श, अघोष, अल्पप्राण व्यंजन-ध्वनि का अर्थबोधक है ।
१७ 'ध्' '' '' '' अघोष महाप्राण '' '' '' '' ।
१८ 'द्' '' '' '' घोष अल्पप्राण '' '' '' '' ।
१९ 'ध्' '' '' '' घोष महाप्राण '' '' '' '' ।
२० 'न्' वर्त्स्य, नासिक्य, '' घोष अल्पप्राण '' '' '' '' ।
२१ 'प्' ओष्ठय (द्वियोष्ठय), स्पर्श, अघोष, अल्पप्रण व्यंजन-ध्वनि का अर्थबोधक है।
२२ 'फ्' '' '' '' अघोष महाप्राण '' '' '' '' '
२३ 'ब्' '' '' '' घोष अल्पप्राण '' ''
२४ 'भ्' '' '' '' घोष महाप्राण '' '' '' ''
२५ 'म्' '' '' नासिक्य घोष अल्पप्राण '' '' ''
२६ 'य्' कठोर तालव्य, अर्धस्वर घोष' '' '' ''
२७ 'र्' वर्त्स्य, लुंठित, '' घोष '' '' '' ''
२८ 'ल्' '' पार्श्विक '' घोष '' '' '' ''
२९ 'व्' दंतोष्ठय, अर्धस्वर '' घोष '' '' '' '' ''
३० 'श्' कठोर तालव्य संघर्षी अघोष - '' '' ''
३१ 'ष्' मूर्धन्य '' '' अघोष - '' '' ''
३२ 'स्' वर्त्स्य '' '' अघोष - '' '' ''
३३ 'ह' स्वर यंत्र मुखी '' घोष, महाप्राण'' '' ''
३४ 'क' अलिजिव्हीव, स्पर्श, अघोष, अल्पप्राण '' '' ''
३५ 'ख' '' संघर्षी, '' अघोष महाप्राण '' '' ''
३६ 'ग' '' '' '' घोष, अल्पप्राण '' '' ''
३७ 'ज़' वर्त्स्य '' '' घोष '' '' '' ''
३८ 'फ़' दंतोष्ठय '' अघोष, महाप्राण '' '' ''
३९ 'व' '' '' '' घोष, अल्पप्राण '' '' ''
४० 'ड़' मूर्धन्य, उत्क्षिप्त, घोष '' '' ''
४१ 'ढ' '' '' '' घोष महाप्राण व्यंजन-ध्वनि का अर्थबोधक है ।

व्यंजनों की अर्थबोधकता के विषय मे निष्कर्ष ये हैं कि -

(१) प्रत्येक व्यंजन अपने उच्चारण जनित प्रभाव का अर्थबोधक है ।

(२) 'ट्, ड्, ण्' इन अल्पप्राण व्यंजनों को छोड़कर अन्य सभी अल्पप्राण व्यंजन तथा 'ह्' महाप्राण व्यंजन और 'स्, श्, ष्' व्यंजन भी उच्चारण जनित कोमल प्रभाव का अर्थात् उच्चारणजनित कोमलता (सुकुमारता) का अर्थबोधक हैं ।

(३) सब से अधिक उच्चारण जनित कोमलता के अर्थबोधक व्यंजनों की ओर से क्रमानुसार कम कोमलता के अर्थबोधक व्यंजनों का क्रम इस प्रकार है - य्, व्., र्, ल्, स् ह्, न्, ङ्, ञ्, म्, श्, ष्, क्, च्, त्, प्, ग्, ज्, द्, ब् ।

(४) अन्य व्यंजनों में से उच्चारण जनित प्रभाव के रूप में कम कोमलता के अर्थबोधक व्यंजनों की ओर से अधिकाधिक कठोरता के अर्थबोधक व्यंजनों का क्रम इस प्रकार है - ख्, छ्, थ्, फ्, घ्, झ्, ध्, भ्, ण्, ड्, ढ़, ट्, ड्, ठ्, ढ् । इन व्यंजनों में से सभी महाप्राण व्यंजन क्रमानुसार एक से अधिक कठोरता के अर्थबोधक है ।

(५) व्यंजनों में 'य्' अल्पप्राण व्यंजन सर्वाधिक कोमलता का अर्थबोधक है, तो इसके विरुद्ध 'ढ्' महाप्राण व्यंजन सर्वाधिक कठोरता का अर्थबोधक है । द्वित्व व्यंजन तथा संयुक्त व्यंजन भी प्रायः कठोरता का अर्थबोधक होते हैं । संधि तथा समास में भी कठोरता का अर्थबोधक व्यंजन होते हैं ।

(६) लगभग सभी घोष व्यंजन, विशेषकर अल्पप्राण घोष व्यंजन उच्चारणजनित श्रुतिमधुर प्रभाव अर्थात् श्रुतिम रता अर्थात् नादमधुरता अर्थात् संगीतात्मकता अर्थात् ध्वन्यात्मक सौन्दर्य का अर्थबोधक हैं ।

(७) प्रत्येक व्यजन ि स प्रकार उच्चारण जनित विशिष्ट प्रभाव का अर्थबोधक है, ठीक उसी प्रकार वह 'अर्थभेदक ध्वनि-प्रतीक' भी है । इसीलिए शब्द में किसी एक व्यंजन के स्थान पर कोई दूसरा व्यंजन प्रयोग में लाया नहीं जा सकता । जैसे - 'गाल' और 'भाल' इन शब्दों में विशिष्ट अर्थ का बोध कराने के लिए 'ग्' और 'भ्' इन व्यंजनों का स्थान अपनी-अपनी जगह पर ही महत्त्वपूर्ण है । इस कारण से ही ये दोनों व्यंजन अपने-अपने स्थान पर 'अर्थभेदक ध्वनि-प्रतीक' हैं ।

इस प्रकार भाषा की व्यंजन-ध्वनियों में से प्रत्येक व्यंजन-ध्वनि अपने-अपने उच्चारण जनित प्रभाव का अर्थबोधक है और साथ ही 'अर्थभेदक' भी है । अतएव भाषा की व्यंजन ध्वनि 'एक विशिष्ट अर्थ-प्रतीक' भी है ।

४. सारांश

स्वर-ध्वनियों और व्यंजन-ध्वनियों से संबंधित उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि -

(१) भाषा की ध्वनियाँ ही भाषा का मूल आधार है । इसीलिए भाषा का मूल आधारभूत घटक उसकी ध्वनियों को मानना स्वाभाविक है ।

(२) भाषा की ध्वनियाँ अपने-अपने उच्चारण जनित प्रभाव का अर्थबोधक है। इसका अर्थ यह है कि भाषा की प्रत्येक ध्वनि स्वतंत्र रूप से अपने उच्चारण जनित प्रभाव का अर्थबोधक है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि भाषा की प्रत्येक ध्वनि का जो अर्थबोधकत्व है, वह भाषा की दूसरी ध्वनि से निराला और स्वतत्र है । इस कारण से ही अ ध्वनि का अर्थबोधकत्व 'आ' ध्वनि के अर्थ बोधकत्व से निराला और स्वतंत्र है क् ध्वनि

का अर्थ बोधकत्व 'ख्' ध्वनि के अर्थबोधकत्व से निराला और स्वतंत्र है, और 'ङ' ध्वनि का अर्थ बोधकत्व 'ग्' ध्वनि के अर्थ बोधकत्व से निराला और स्वतंत्र है । इस प्रकार की विशेषता के कारण ही भाषा की प्रत्येक ध्वनि 'अर्थभेदक' भी है ।

(३) भाषा की प्रत्येक ध्वनि अर्थबोधक तथा अर्थभेदक के रूप में स्वतंत्र अर्थ-प्रतीक ही है । इसीलिए भाषा की प्रत्येक ध्वनि अपने विशिष्ट अर्थ के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखती है ।

(४) मनुष्य - समाज के भीतर जो भाषा-व्यवहार होता है, उसमे केवल ध्वनि के रूप में भाषा की ध्वनि का प्रयोग नहीं होता, बल्कि 'एक विशिष्ट अर्थ-प्रतीक(के रूप में ही भाषा की ध्वनि का प्रयोग होता है ।

(५) मनुष्य - समाज आपस में भावों और विचारो के आदान-प्रदान के लिए एक सर्वोत्तम साधन के रूप में अपना भाषा-व्यवहार करता रहता है । इस कारण से ही मनुष्य-समाज विशिष्ट भाव या विशिष्ट विचार के अनुकूल विशिष्ट ध्वनि-प्रतीकों का अर्थात् विशिष्ट ध्वनियों रूपी 'अर्थ-प्रतीकों' का प्रयोग करता रहता है ।

(६) मनुष्य-समाज अपने कोमल भाव अर्थात् मधुरभाव की अभिव्यक्ति के लिए कोमलता (सुकुमारता) के अर्थबोधक ध्वनि-प्रतीको का अधिक प्रयोग करता है। इस प्रकार का ध्वनि-प्रयोग माधुर्य गुण तथा सुकुमार गुण के अनुकूल होता है ।

(७) मनुष्य - समाज अपने कठोर भाव की अभिव्यक्ति के लिए कठोरता के अर्थबोधक ध्वनि-प्रतीकों का अधिक प्रयोग करता है । इस प्रकार ध्वनि प्रयोग 'ओज' गुण और 'कान्ति' गुण के अनुकूल होता है ।

स्पष्ट है कि भाषा की प्रत्येक ध्वनि स्वतंत्र तथा विशिष्ट 'ध्वनि-प्रतीक' के रूप में स्वतंत्र तथा 'विशिष्ट अर्थ बोध' के साथ अभिन्न सम्बन्ध रखती है ।

५. शब्द की अर्थबोधकता

मनुष्य अपने समाज मे भावो और विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक सहज तथा सर्वोत्तम साधन के रूप मे भाषा का प्रयोग करता है । इस कारण से ही भाषाविज्ञान भाषा की परिभाषा इस प्रकार देता है -

'भाषा मनुष्य के ध्वनि-यंत्र से संबंधित उच्चारण-अवयवों से उच्चारित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों के समूह की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से एक भाषा-समाज के लोग आपस मे भावों और विचारो का आदान-प्रदान करते है ।

भाषा की इस परिभाषा से ज्ञात होता है कि मनुष्य भाषा का प्रयोग केवल किसी एक ध्वनि-प्रतीक के माध्यम से नही, बल्कि व्यवस्थानिष्ठ ध्वनि-प्रतीकों के समूह के रूप मे करता है ।

भाषा के माध्यम से समाज के भीतर आपस में अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए अर्थात् भाव या विचार से सबंधित किसी प्रकार के 'अर्थ' का बोध कराने के लिए मनुष्य को अपने उच्चारण-अवयवो से उच्चारित भाषा-ध्वनियों के आधार पर अपनी इच्छा के अनुसार कुछ ध्वनि-प्रतीको को विशिष्ट क्रम से अर्थात् एक प्रकार की व्यवस्था से एक-दूसरे के साथ जोडकर ध्वनि-प्रतीकों के समूह के प्रयोग को अर्थात् ध्वनि-

प्रतीकों के संयोग के रूप में 'शब्द' के प्रयोग को प्रचलित करना पडता है । इससे भाषा के प्रयोग के रूप में 'विशिष्ट अर्थ बोधक शब्द' प्रचलित हो जाता है । तब वह विशिष्ट अर्थबोधक शब्द 'एक विशिष्ट अर्थ-प्रतीक' बन जाता है ।

हिन्दी भाषा-भाषी समाज ने अपनी इच्छा के अनुसार 'जल' इस तरल द्रव-विशेष का 'अर्थबोध' कराने के लिए हिन्दी भाषा के स्वर ध्वनि-प्रतीक 'आ', 'ई' और व्यंजन ध्वनि-प्रतीक 'न्' 'प्' इन चार ध्वनि-प्रतीकों को विशिष्ट क्रम-व्यवस्था से एक-दूसरे के साथ जोडकर 'विशिष्ट ध्वनि-प्रतीको के संयोग' के रूप मे 'पानी' (=प्आन्ई) शब्द को प्रचलित कर दिया है । परिणाम स्वरूप 'पानी' शब्द 'विशिष्ट अर्थ' का बोधक बनकर 'विशिष्ट अर्थ का प्रतीक' बन गया है । इस प्रकार 'पानी' शब्द विशिष्ट अर्थ का बोधक भी है और उसी विशिष्ट अर्थ का प्रतीक भी है ।

यहाँ पहला तथ्य यह है कि समाज की इच्छा के अनुसार 'पानी' शब्द तरल द्रव-विशेष का अर्थबोधक बन गया है । इस कथन का अर्थ यह है कि शब्द और अर्थ का पहला सम्बन्ध 'यादृच्छिक' होता है । क्योंकि समाज की इच्छा के अनुसार ही एक विशिष्ट अर्थ का बोध कराने के लिए ही विशिष्ट ध्वनि-प्रतीको के संयोग के रूप में 'पानी' शब्द प्रचलित हुआ है ।

दूसरा तथ्य यह है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध एक ओर से 'यादृच्छिक' है तो दूसरी ओर से 'प्रतीकात्मक' भी है । इसीलिए 'पानी' शब्द 'प्आ न्ई' इस प्रकार के ध्वनि-प्रतीकों के संयोग के रूप मे ही प्र ोग मे लाया जा सकता है और उससे 'जल' का अर्थबोध कराया जा सकता है । यदि 'प ी' शब्द के ध्वनि-प्रतीको के संयोग में किसी भी प्रकार का ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है, (। उससे 'जल' का अर्थबोध नहीं हो सकता । इस प्रकार की विशेषता के कारण ही 'पानी' शब्द के उच्चारण से या सुनने से या पढ़ने से 'जल' का ही प्रतीकात्मक (अर्थात् संकेतात्मक) अर्थबोध होता है ।

यहाँ विदित होता है कि भाषा का प्रयोग जिन शब्दों के रूप मे किया जाता है लगभग वे सभी शब्द विशिष्ट-विशिष्ट ध्वनि-प्रतीकों के संयोग के रूप में 'यादृच्छिक अर्थ तथा 'प्रतीकात्मक अर्थ' के बोधक होते हैं ।

तीसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि शब्द और अर्थ का 'परंपरागत संबध{ भी होता है । क्योंकि जब मनुष्य-समाज शब्द और अर्थ में यादृच्छिक सम्बन्ध तथा प्रतीकात्मक सम्बन्ध की स्थापना कर देता है, तब वह शब्द 'विशिष्ट अर्थ-प्रतीक{ के रूप में मनुष्य-समाज के भाषा-व्यवहार में प्रचलित रहता है और परंपरा के रूप मे अपने विशिष्ट अर्थ का ही बोधक बनकर रह जाता है । इसके परिणाम स्वरूप ही शब्द और अर्थ का 'परंपरागत सम्बन्ध' भी स्थापित हो जाता है । इसी कारण से मनुष्य-समाज के भाषा-व्यवहार में शब्द के विशिष्ट अर्थ का बोध परंपरा के आधार पर सहज हो जाता है ।

स्पष्ट है कि मनुष्य-समाज मे जो भाषा-व्यवहार होता है, वह सब यादृच्छिक प्रतीकात्मक तथा परंपरागत अर्थो से युक्त शब्दो पर आधारित होता है । इसका महत्वपूर्ण अर्थ यह हुआ कि शब्द की अर्थबोधकता यादृच्छिक, प्रतीकात्मक तथा परंपरागत होती है।

६. शब्द-भेदों की व्याकरणिक अर्थबोधकता

मनुष्य-समाज के भीतर आपस में भावो और विचारो के आदान-प्रदान के लिए जो भाषा-व्यवहार होता है, वह समाज द्वारा मान्य एक निश्चित व्यवस्था पर आधारित होता है

वह निश्चित व्यवस्था भाषा-व्यवहार से सबंधित नियमो पर आधारित होती है । एक भाषा-समाज मे प्रचलित भाषा-व्यवहार के नियमों का व्यवस्थित निरूपण जिसमें होता है, उसे उस भाषा का व्याकरण कहते हैं ।

भाषा का व्याकरण अपने नियमों के अनुसार भाषा-व्यवहार में विशिष्ट ध्वनि-प्रतीको के संयोग के रूप मे प्रचलित विशिष्ट अर्थ के बोधक शब्द को 'व्यवहारोपयोगी अतिरिक्त अर्थ' के रूप में 'व्याकरणिक अर्थ' भी प्रदान कर देता है और शब्द को वाक्य मे प्रयोग करने योग्य 'पद' बना देता है । इसका अर्थ यह है कि व्याकरणिक अर्थ के आधार पर शब्द से जो पद बन जाता है, वह पद अपने मूल शब्दार्थ के साथ-साथ विशिष्ट व्याकरणिक अर्थ का भी बोधक बना रहता है । तभी तो वाक्य में 'पद्' का ही प्रयोग होता है । इसके लिए शब्द को 'पद' के रूप मे विशिष्ट व्याकरणिक अर्थ का भी बोधक बनाने का कार्य करते समय 'व्याकरण' शब्द के कुछ प्रकारों को अर्थात् कुछ शब्द-भेदों को स्वीकार कर लेता है ।

हिन्दी भाषा का व्याकरण शब्द को अलग-अलग व्याकरणिक अर्थो का बोधक पद बनाने के लिए 'संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण, सम्बन्ध बोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक' इन आठ प्रकार के शब्दों को स्वीकार करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दी भाषा के व्याकरण के अनुसार आठ शब्द-भेद महत्व के है ।

७. संज्ञा-शब्द की व्याकरणिक अर्थबोधकता

व्याकरणिक अर्थ के रूप मे 'संज्ञा-शब्द' से संज्ञात्मक (नामात्मक) अर्थ का बोध होता है, फिर वह अर्थबोध व्यक्तिवाचक संज्ञा संबंधी हो, जातिवाचक संज्ञा संबंधी हो, समुदायवाचक संज्ञासबंधी हो द्रव्यवाचक संज्ञासंबंधी हो या भाववाचक सज्ञासंबंधी हो ।

व्याकरणिक अर्थ के रूप मे 'ज्ञानराज, लता, राहुल, उज्वल, सुनीत, भारत हिमालय, गंगा, दिल्ली' इस प्रकार के व्यक्तिवाचक संज्ञा-शब्दो से व्यक्तिवाचक विशेष नाम के रूप में 'व्यक्ति विशेष' का अर्थबोध हो जाता है ।

'मनुष्य, स्त्री, पुरुष, घोड़ा बैल, गाय, मोर, तोता, पेड, नदी' इस प्रकार के जातिवाचक संज्ञा-शब्दो से जाति के सामान्य नाम के रूप में 'जाति विशेष' का अर्थबोध हो जाता है ।

'समाज, कुटुम्ब, परिवार, मंडली, टोली, झुंड' इस प्रकार के समुदायवाचक सज्ञा-शब्दों से अनेको से युक्त समुदाय (समूह) के नाम के रूप में 'समुदाय विशेष' (समूह विशेष) का अर्थबोध हो जाता है ।

'पानी, दूध, तेल, अन्न, आटा, घास, हवा, सोना, चॉदी' इस प्रकार के द्रव्यवाचक सज्ञा-शब्दो से गिनती में आ नही सकने वाले पदार्थो के नाम के रूप में 'द्रव्य विशेष' का अर्थबोध हो जाता है ।

'मित्रता, मित्रत्व मिठास, हर्ष, उष्णता शीतलता पांडित्य, उजाला, कोमलता सुकुमारता, दृढ़ता कठोरता, नम्रता, दीनता, पीड़ा बुढ़ापा, बचपन, गाना, खाना, दान, दौड चढाई, बहाव, बोलचाल, सजावट' इस प्रकार के भाववाचक सज्ञा-शब्दो से विशिष्ट धर्म (स्वभाव, गुण, भाव, विचार, दशा दोष या क्रिया अर्थात् व्यापार संबधी विशिष्ट धर्म) सूचक नाम के रूप मे 'भावविशेष' अर्थात 'धर्मविशेष' का अर्थबोध हो जाता है ।

'संज्ञा-शब्द' लिंग, वचन, पुरुष और कारक से संबंधित व्याकरणिक प्रत्ययों के आधार पर पुल्लिंग या स्त्रीलिंग अर्थबोधक पद, एक वचन या बहुवचन अर्थबोधक पद, अन्य पुरुष अर्थबोधक पद और कर्ता कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण अथवा सम्बोधन कारक अर्थबोधक पद बन जाते हैं । जैसे -

(१) घोड़ा दौड़ा । (२) घोड़ी दौड़ी । (३) घोड़े दौड़े । (४) घोड़ियाँ दौड़ीं। (५) घोड़े ने पानी पिया । (६) घोड़ों ने पानी पिया । (७) राम ने अलमारी से निकालकर अपने घर में अपने हाथ से, सीता को नाटक की पुस्तक दी ।

पहले वाक्य में 'घोड़ा' शब्द जातिवाचक संज्ञा के रूप में पशु विशेष का अर्थबोधक पद है । साथ ही वाक्यार्थ के संदर्भ में 'घोड़ा' यह पद रूपी संज्ञा-शब्द पुल्लिंग, एक वचन, अन्य पुरुष, अप्रत्ययकर्ता तथा वाक्य के प्रधान उद्देश्य का अर्थबोधक है ।

दूसरे वाक्य में 'घोड़ा' यह संज्ञा-शब्द स्त्रीलिंग सूचक प्रत्यय 'ई' के योग से 'घोड़ी' इस शब्द-रूप में मादा पशु विशेष का अर्थबोधक पद बन गया है । साथ ही वाक्यार्थ के सन्दर्भ में 'घोड़ी' यह पद रूपी संज्ञा-शब्द स्त्रीलिंग, एक वचन, अन्य पुरुष, अप्रत्यय कर्ता तथा वाक्य के प्रधान उद्देश्य का अर्थबोधक है ।

तीसरे वाक्य में 'घोड़ा' यह संज्ञा-शब्द पुल्लिंग, बहु वचन सूचक प्रत्यय 'ए' के योग से घोड़े' इस शब्द रूप में वाक्यार्थ के सन्दर्भ में पुल्लिंग, बहु वचन, अन्य पुरुष, अप्रत्ययकर्ता तथा वाक्य के प्रधान उद्देश्य का अर्थबोधक पद है ।

चौथे वाक्य में 'घोड़ा' यह संज्ञा-शब्द स्त्रीलिंग, बहुवचन सूचक प्रत्यय 'इयाँ' के योग से 'घोड़ियाँ' इस शब्द-रूप में वाक्यार्थ के सन्दर्भ मे स्त्रीलिंग, बहुवचन, अन्य पुरुष, अप्रत्ययकर्ता तथा वाक्य के प्रधान उद्देश्य का अर्थबोधक पद है ।

पाँचवें वाक्य मे 'घोड़ा' यह संज्ञा-शब्द सप्रत्ययकर्ता कारक सूचक प्रत्यय 'ने' के योग के लिए विकृत होकर 'घोड़े' बन गया है । इसलिए 'घोड़े ने' यह पद वाक्यार्थ के सन्दर्भ में पुल्लिंग, एक वचन, अन्य पुरुष, सप्रत्ययकर्ता तथा वाक्य के अप्रधान उद्देश्य का अर्थबोधक है ।

छठे वाक्य मे 'घोड़ा' यह संज्ञा-शब्द सप्रत्यय कर्ता कारक सूचक प्रत्यय 'ने' के योग के लिए विकृत होकर 'घोड़ों' बन गया है । इसलिए 'घोड़ों ने' यह पद वाक्यार्थ के सन्दर्भ में पुल्लिंग, बहु वचन, अन्य पुरुष, सप्रत्ययकर्ता तथा वाक्य के अप्रधान उद्देश्य का अर्थबोधक है ।

पाँचवें वाक्य मे तथा छठें वाक्य मे 'पानी' शब्द द्रव्यवाचक संज्ञा के रूप मे तरल द्रव विशेष का अर्थबोधक है । साथ ही वाक्यार्थ के सन्दर्भ में 'पानी' यह पद रूपी संज्ञा-शब्द पुल्लिंग, एक वचन, अन्य पुरुष अप्रत्यय कर्म तथा वाक्य के मुख्य कर्म का अर्थबोधक है ।

सातवें वाक्य में 'राम' व्यक्तिवाचक संज्ञा-शब्द सप्रत्ययकर्ता कारक सूचक 'ने' प्रत्यय के योग से 'व्यक्ति विशेष' का अर्थबोध करते हुए 'राम ने' इस पद के रूप में वाक्यार्थ के सन्दर्भ मे पुल्लिंग, एक वचन, अन्य पुरुष, सप्रत्ययकर्ता तथा वाक्य के अप्रधान उद्देश्य का अर्थबोधक बन गया है ।

इसी सातवें वाक्य मे 'अलमारी' शब्द जातिवाचक संज्ञा के रूप में वस्तु विशेष का अर्थबोधक है । साथ ही अपादान कारक सूचक 'से' प्रत्यय के योग से 'अलमारी से' इस

शब्द-रूप में वाक्यार्थ के सन्दर्भ मे स्त्रीलिंग, एक वचन, अन्य पुरुष और अपादान कारकीय स्थानवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद भी है ।

इसी सातवें वाक्य मे 'घर' शब्द जातिवाचक सज्ञा के रूप में वस्तु विशेष का अर्थबोधक है । साथ ही अधिकरण कारक सूचक 'मे' प्रत्यय के योग से 'घर मे' इस शब्द-रूप में वाक्यार्थ के सन्दर्भ मे पुल्लिंग, एक वचन, अन्य पुरुष और अधिकरण कारकीय स्थानवाचक क्रिया विशेषण का अर्थबोधक पद भी है ।

इसी सातवे वाक्य में 'हाथ' शब्द जातिवाचक संज्ञा के रूप मे 'वस्तु विशेष का अर्थबोधक है । साथ ही करण कारक सूचक 'से' प्रत्यय के योग से 'हाथ से' इस शब्द-रूप में वाक्यार्थ के सन्दर्भ में पुल्लिंग, एक वचन, अन्य पुरुष और करण कारकीय साधनवाचक क्रिया विशेषण का अर्थबोधक पद भी है ।

इसी सातवें वाक्य मे 'सीता' शब्द व्यक्तिवाचक सज्ञा के रूप मे व्यक्ति विशेष का अर्थबोधक है । साथ ही सप्रदान कारक सूचक 'को' प्रत्यय के योग से 'सीता को' इस शब्द-रूप में वाक्यार्थ के सन्दर्भ मे स्त्रीलिग, एक वचन अन्य पुरुष और संप्रदान कारकीय उस गौण कर्म का अर्थबोधक पद भी है, जिसके लिए देने की क्रिया की गयी है ।

इसी सातवें वाक्य में 'नाटक' शब्द जातिवाचक संज्ञा के रूप मे वस्तु विशेष का अर्थबोधक है । साथ ही संबंध कारण सूचक 'की' प्रत्यय के योग से 'नाटक की' इस शब्द-रूप मे वाक्यार्थ के सन्दर्भ में पुल्लिंग, एक वचन, अन्य पुरुष और सम्बन्ध का अर्थबोधक पद भी है ।

इसी सातवे वाक्य मे 'पुस्तक' शब्द जातिवाचक संज्ञा के रूप में वस्तु विशेष का अर्थबोधक है । साथ ही अप्रत्यय कर्म कारकीय 'पुस्तक' इस शब्द-रूप में वाक्यार्थ के सन्दर्भ में स्त्रीलिग, एक वचन, अन्य पुरुष और उस मुख्य कर्म का अर्थबोधक पद भी है जिस पर 'दी' इस क्रिया (अर्थात् देने की क्रिया का) फल पडा है ।

स्पष्ट है कि विभिन्न संज्ञा-शब्द लिग वचन, पुरुष तथा विशिष्ट कारक को सूचित करने वाले प्रत्ययो के योग से अपने मूल अर्थ के साथ-साथ भिन्न-भिन्न व्याकरणिक अर्थो का बोधक पद भी बन जाते हैं ।

पुरुष की दृष्टि से सभी संज्ञाए अन्य पुरुष का ही अर्थबोधक होती है । प्रत्येक सज्ञा वाक्य में अलग-अलग कारक मे आकर अलग-अलग अर्थ का बोधक पद बन जाती है ।

८. सर्वनाम-शब्द की व्याकरणिक अर्थबोधकता

सर्वनाम-शब्द वाक्य में जिस किसी संज्ञा के बदले मे आता है, उसी संज्ञा का अर्थबोधक पद बन जाता है । जैसे -

(१) लडकी बोली, 'मै शेरनी हूं' इस वाक्य मे 'मैं' सर्वनाम-शब्द 'लडकी' जाति वाचक सज्ञा के बदले मे आकर उसी का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(२) आशा ने उषा से कहा, 'तू मेरे साथ चल ।' इस वाक्य में 'तू' सर्वनाम-शब्द उषा' व्यक्तिवाचक सज्ञा के बदले मे आकर उसी का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(३) 'राहुल ने उज्ज्वल से कहा कि अपना वह बड़ा भाई सुनीत कुछ लिख रहा है। इस वाक्य में 'वह' सर्वनाम-शब्द 'सुनील' व्यक्तिवाचक सज्ञा के बदले में आ गया है और उसीका अर्थ बोधक पद बन गया है ।

(अ) सर्वनाम-शब्द की लिंग, वचन तथा पुरुषसंबंधी अर्थबोधकता

हिन्दी भाषा के वाक्य मे बहुधा क्रिया-पद के पुल्लिंग या स्त्रीलिंग सूचक रूप के आधर पर सर्वनाम-शब्द पुल्लिंग या स्त्रीलिग का अर्थबोधक पद बन जाता है । जैसे 'मै/तू/वह चला ।' इस वाक्य में क्रिया-पद 'चला' पुल्लिंग सूचक होने के कारण 'मैं/तू/वह सर्वनाम-शब्द पुल्लिंग का अर्थबोधक पद है ।

'मै/तू/वह चली ।' इस वाक्य में क्रिया-पद 'चली' स्त्रीलिंग सूचक होने के कारण 'मैं/तू/वह' सर्वनाम-शब्द स्त्रीलिंग का अर्थबोधक पद है ।

हिन्दी भाषा के वाक्य में 'मैं/तू/वह/यह' सर्वनाम-शब्द एक वचन का अर्थबोधक पद बने रहते हैं, तो 'हम/तुम/आप/वे/ये' सर्वनाम-शब्द बहु वचन का अर्थबोधक पद बने रहते है ।

'मैं' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिग, एक वचन तथा बोलने वाले या लिखने वाले के रूप में उत्तम पुरुष का अर्थबोधक पद बन जाता है ।

'हम' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, बहुवचन तथा बोलने वालों या लिखने वालों के रूप में उत्तम पुरुष का अर्थबोधक पद बन जाता है ।

'तू' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एक वचन तथा सुनने वाले या पढ़ने वाले के रूप में मध्यम पुरुष का अर्थबोधक पद बना रहता है ।

'तुम' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, बहुवचन तथा सुनने वालों या पढ़ने वालो के रूप में मध्यम पुरुष का अर्थबोधक पद बन जाता है ।

'आप' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिग, आदरार्थी बहुवचन और मध्यम पुरुष का अर्थबोधक पद बन जाता है ।

'वह' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एक वचन, अन्य पुरुष निश्चयता तथा कुछ दूरता का अर्थबोधक पद बना रहता है ।

'यह' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिग एक वचन, अन्य पुरुष निश्चयता तथा कुछ निकटता का अर्थबोधक पद बना रहता है ।

वे' सर्वनाम-शब्द वाक्य मे पुल्लिंग या स्त्रीलिंग बहु वचन, अन्य पुरुष निश्चयता तथा कुछ दूरता का अर्थबोधक पद बन जाता है ।

'ये' सर्वनाम-शब्द वाक्य मे पुल्लिंग या स्त्रीलिग, बहु वचन, अन्य पुरुष, निश्चयता तथा कुछ निकटता का अर्थबोधक पद बन जाता है ।

'सो' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिग एक वचन या बहु वचन, अन्य पुरुष निश्चयता वाचक तथा संबंधवाचक सर्वनाम 'जो' के साथ संबध का भी अर्थबोधक पद बन जाता है ।

'जो' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिग, एक वचन या बहु वचन, अन्य पुरुष तथा संबंध का भी अर्थ बोधक पद बन जाता है ।

'कौन' अथवा 'क्या' सर्वनाम-शब्द वाक्य में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एक वचन, अन्य पुरुष तथा प्रश्न का अर्थबोधक पद बन जाता है ।

'कोई' अथवा 'कुछ' सर्वनाम-शब्द वाक्य मे पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एक वचन या बहु वचन अन्य पुरुष तथा अनिश्चय का अर्थबोधक पद बन जाता है ।

(आ) विशिष्ट स्थिति में सर्वनाम शब्द की विभिन्न अर्थबोधकता

'आप' सर्वनाम-शब्द वाक्य में कभी कभी निज का तथा समानाधिकरण का अर्थबोधक पद बन जाता है । जैसे- 'मै आप आया हूँ ।' इस वाक्य में 'आप' का अर्थबोध खुद/स्वतः/स्वयं है । इसीलिए इस वाक्य में 'आप' सर्वनाम-शब्द 'मैं' का समानाधिकरण अर्थबोधक पद है ।

'सो' सर्वनाम-शब्द वाक्य मे कभी 'जो' संबंधबोधक सर्वनाम के साथ 'वह' अथवा वे' का अर्थबोधक पद बन जाता है । जैसे - 'जो मुझे करना था, सो (=वह) मैने किया। जो मुझे पुस्तकें पढ़नी थीं, सो (=वे) मैने पढ़ीं ।

'जो' संबंधबोधक सर्वनाम-शब्द मुख्य उप वाक्य की 'संज्ञा' या 'सर्वनाम' के सबध का अर्थबोध कराने वाला पद बनकर दूसरे विशेषण उपवाक्य के साथ जुड़ा रहता है । जैसे- 'वह लड़का मेरा मित्र है, जो स्वाभाव से भला है ।'

'वे लड़के दौडते है, जो दौड़ना बहुत पसंद करते है ।

पहले वक्य में 'वह' और 'जो' एक ही संज्ञा 'लड़का' का अर्थबोधक पद है तो दूसरे वाक्य में 'वे' और 'जो' एक ही संज्ञा 'लड़के' का अर्थबोधक पद हैं । इसीलिए वह और 'जो'/'वे' और 'जो' नित्य संबंध का अर्थबोधक पद है । यही वास्तविकता अगले वाक्यो मे भी है - 'जो करेगा, सो (=वह) भरेगा ।' जो पढेंगे, सो (=वे) ज्ञान पायेंगे ।'

'हम' सर्वनाम-शब्द विशिष्ट परिस्थिति में किसी एक व्यक्ति के बड़प्पन का अर्थबोधक एक वचन पद बना रहता है । जैसे, वह लड़का सदा कहता रहता है कि हम बड़े खिलाडी है । लेखक ने उत्तर दिया कि हम एक सफल सम्पादक भी हैं ।

'तू' सर्वनाम-शब्द विशिष्ट परिस्थिति में अतिशय विनय, अतिशय प्रेम, अतिशय मित्रता, अतिशय क्रोध या तिरस्कार या अनादर का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे-

भगवान, तू बड़ा कृपालु है । (अतिशय विनय का अर्थबोधक पद ।)

मेरी प्यारी बहना, तू बहुत अच्छी है । (अतिशय प्रेम का अर्थबोधक पद ।)

अरे यार, तू तो मेरी जान है । (अतिशय मित्रता का अर्थबोधक पद ।)

तू मेरी नजर से दूर हो जा । (अतिशय क्रोध का अर्थबोधक पद ।)

मै जानता हूँ कि तू कितना लायक है ! (अतिशय तिरस्कार या अनादर का अर्थबोधक पद ।)

'तू' सर्वनाम-शब्द के स्थान पर 'तुम' सर्वनाम-शब्द अथवा 'तुम' के स्थान पर आप' सर्वनाम-शब्द आदर का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे -

'मित्र, तुम बहुत अच्छे हो ।' 'आप बडे परोपकारी है ।'

'यह' सर्वनाम-शब्द विशिष्ट स्थिति मे निश्चय का अर्थबोधक पद इस प्रकार बनता है -

'राहुल' यह व्यक्तिवाचक संज्ञा है ।

'गोदान' यह प्रेमचन्द का उत्कृष्ट उपन्यास है । (संज्ञा के आगे तुरंत आया निश्चय का अर्थबोधक पद ।)

समय के सदुपयोग करना यह सदा अच्छा है

पढाई मे ध्यान देना, यह एक कठिन काम है । (संज्ञा वाक्यांश के आगे तुरत *आया निश्चय का अर्थबोधक पद ।)*

मेरी बात बहुत पते की है, इसे ध्यान मे रखना ।

तेरी कहानी पढने लायक है, इसे मैं पढूंगा ही । (पहले वाक्य मे कही गयी सज्ञा के बदले अगले वाक्य में आया निश्चय का अर्थबोधक पद ।)

मैंने यह चाहा था कि तेरा भला हो ।

मैं इससे खुश हूँ कि मैं पास हो गया हूँ । (बाद में आने वाले वाक्य के बदले पहले वाक्य में आया निश्चय का अर्थबोधक पद ।)

निजवाचक 'आप' से बने हुए *'आप ही, अपने आप, आप ही आप, आप से आप'* ये सभी (तथा 'खुद ब खुद' भी), क्रिया विशेषण वाक्यांश के समान 'बिना किसी की सहायता लिए' का अर्थबोधक पद बध बनते हैं । जैसे, बच्चे ने आप ही/अपने आप/आप ही *आप/आप से आप (/खुद ब खुद) खाना खा लिया ।*

'जो' और 'सो' की द्विरुक्ति अथवा इनमें से किसी एक की भी द्विरुक्ति समूह का अर्थ बोधक पद बंध बनती है । जैसे, ज्ञानप्राप्ति के लिए जो-जो करना है, सो-सो करना चाहिए । मुझे जो-जो करना था सो मैंने किया । पढ़ाई के लिए मुझे जो पढ़ना है, सो-सो मैं पढूँगा ।

'सो' सर्वनाम-शब्द कभी समुच्चयबोधक 'इसलिए' का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे -

वह लड़की बहुत अच्छी है, सो मुझे वह प्रिय लगती है । जो सर्वनाम-शब्द कभी एक उपवाक्य के बदले समुच्चयबोध जैसा अर्थबोधक पद बना रहता है, जैसे- तू यह पुस्तक पढ, जिससे तू पास हो जाएगा/तू मेरी बात सुन, जिसमे तेरा ही भला है ।

'कौन' प्रश्नवाचक सर्वनाम-शब्द स्वतंत्र रूप से या 'सा' के साथ निर्धारण जिज्ञासा आश्चर्य, पीड़ा, तिरस्कार आदि का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे इन लडकियो मे आशा कौन-सी (निर्धारण के अर्थ में) है ? वहाँ कौन (आश्चर्य के अर्थ में) होगा ? वह कौन (जिज्ञासा के अर्थ में) है, जो गा रहा है ? पता नही मुझे कौन-सा (पीडा के अर्थ मे) काम करना है । मुझे रोकने वाला तब कौन (तिरस्कार के अर्थ में) होता है ?

'कौन' की द्विरुक्ति भिन्नता तथा असंख्यता का अर्थबोधक पद बंध बनती है। जैसे मेले मे *कौन-कौन गये थे ? तुमने कौन-कौन से अच्छे काम किए हैं ?*

'क्या' प्रश्नवाचक सर्वनाम-शब्द किसी का लक्षण जानने से संबंधित जिज्ञासा का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे - मनुष्य क्या है ? घोडा क्या है ? राजनीति क्या होती है?

'क्या' क्रिया विशेण के समान आश्चर्य का भी अर्थबोधक पद बनता है । जैसे- घोड़ा दौड क्या आया है, उड़ आया है । वाह ! क्या अच्छी बात है ! यह क्या हुआ !

'क्या' की द्विरुक्ति आश्चर्य और बहुत्व का अर्थबोधक पद बध बनती है । जैसे - मै क्या-क्या बताऊँ ? वहाँ लड़को ने क्या-क्या किया ?

'क्या' प्रश्नवाचक सर्वनाम कभी-कभी विभिन्न अर्थबोधक पद बनता है । जैसे-

वह क्या काम करेगा ? (संदेह का अर्थबोधक पद)

तू यह क्या करता है ? (धमकी का अर्थबोधक पद ।)

वह क्या जाने पढाई ! (अनादर का अर्थबोधक पद ।)

तू पहले क्या था, और अब क्या हुआ है !

वह क्या से क्या हुआ है ! (दशा और दशांतर के अर्थबोधक पद)

'क्या' प्रश्नवाचक सर्वनाम कभी-कभी 'क्या - - - - क्या' के रूप में समुच्चयबोधक के समान अर्थबोधक पद बनता है । जैसे - क्या मनुष्य और क्या पशु कभी-कभी दोनों एक जैसा व्यवहार करते हैं ।

'क्या' सर्वनाम कभी-कभी आश्चर्य तथा प्रश्न का अर्थबोधक पद बनता है। जैसे - क्या ! काम हो गया ? क्या ! तुझे मेरी बात ठीक नही लगी ?

'कोई' अनिश्चयवाचक सर्वनाम विभिन्न अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे-

कोई सी पुस्तक दे दो । (सा/से/सी के साथ 'कोई' अधिक अनिश्चय का अर्थबोधक पद बनत है ।)

कोई एक यहाँ आया था ।

मैने कोई एक बात की थी । ('एक' संख्यावाचक विशेषण के साथ भी 'कोई' अधिक अनिश्चय का अर्थबोधक पद बनता है ।)

मेरी बात कोई और समझ न सका ।

क्या और कोई बात है ?

वह कोई दूसरा है । ('और' या 'दूसरा' के साथ 'कोई' किसी अज्ञात व्यक्ति का अर्थबोधक पद बंध बना रहता है ।)

हर कोई वहाँ बोलता था । ('हर' के साथ 'कोई' प्रत्येक व्यक्ति का अर्थबोधक पद बंध बनता है ।)

सब कोई खाना चाहते है । ('सब' के साथ 'कोई' 'सब लोग का अर्थबोधक पद बंध बनता है ।)

वहाँ कोई आये है । (आदर का अर्थबोधक पद)

कोई-कोई ऐसा कहते हैं ।

वह चित्र कोई-कोई देखते हैं । ('कोई' की द्विरुक्ति बहुत्व का अर्थबोधक पद बंध बनती है ।)

कोई न कोई मिलेगा ।

कोई न कोई बोलेगा ।

(बीच मे 'न' के योग से 'कोई' की द्विरुक्ति अवधारण का अर्थबोधक पद बंध बनती है ।)

कोई ऐसा कहता है, कोई वैसा ।

कोई अच्छा है, कोई बुरा ।

('कोई - - - कोई' यह प्रयोग विचित्रता या भिन्नता का अर्थबोधक पद बनता है।)

वह पुस्तक कोई दो सौ पृष्ठों की है ।

उसने कोई दो चार काम किए थे

(सख्यावाचक विशेषण के पहले 'कोई' का प्रयोग 'लगभग' का अर्थबोधक पद बंध बनता है ।)

'कुछ' अनिश्चयवाचक सर्वनाम विभिन्न अर्थबोधक पद बना रहता है। जैसे-

मैंने वहाँ कुछ और देखा है ।

लगता है, तेरे मन में कुछ और है । ('और के साथ 'कुछ' अज्ञात पदार्थ या अज्ञात धर्म का अर्थबोधक पद बंध बनता है ।)

मेरे यहाँ सब कुछ है ।

मै सब कुछ समझ गया । ('सब' के साथ 'कुछ' सब पदार्थ या सब धर्म का अर्थबोधक पद बंध बनता है ।)

मैं बहुत कुछ जानता हूँ ।

मैंने बहुत कुछ पाया । ('बहुत' के साथ 'कुछ' अधिकता या बहुत से पदार्थों या बहुत से धर्मों का अर्थबोधक पद बंध बनता है ।)

लड़का कुछ छोटा है ।

वे दोनों कुछ-कुछ मिलते हैं ।

('कुछ{ स्वतंत्र रूप में या द्विरुक्ति के रूप में परिमाणवाचक क्रिया विशेषण के समान अर्थबोधक पद बनता है ।)

वह कुछ न कुछ पढ़ता है ।

तू कुछ न कुछ खा । ('बीच में 'न' के योग से 'कुछ' की द्विरुक्ति अवधारण का अर्थबोधक पद बंध बनती है ।)

अब वह कुछ का कुछ हुआ है । (भिन्नता या विपरीतता का अर्थबोधक पद बंध ।)

कुछ मैं समझा, कुछ तू समझा । ('कुछ - - - कुछ' का प्रयोग विचित्रता का अर्थबोधक पद है ।)

'मैं, तू, आप यह, वह, ये, वे, सर्वनाम-शब्द 'ही' के साथ अवधारण का अर्थबोधक पद बने रहते है । जैसे वहाँ, मैंही/तूही/यही/वही बैठा था/घर मे आप ही/येही/वेही बैठे थे ।

'हम, तुम' सर्वनाम-शब्द 'ही' के साथ अवधारण का अर्थबोधक पद बनते है। जैसे, हम्ही (/हमी) ने/तुम्हीं ने अपना काम किया ।

'सो' सर्वनाम-शब्द 'ई' के साथ अवधारण का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, सोई आया है । 'कोई' या 'कुछ' 'भी' के साथ अवधारण का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, यहाँ कोई भी आ सकता है । उसने कुछ भी नही खाया ।

(इ) सर्वनाम-शब्द की कारक संबंधी अर्थबोधकता

सर्वनाम-शब्द वाक्य मे विभिन्न कारकों के अर्थबोधक पद इस प्रकार बने रहते हे -

अप्रत्यय सप्रत्यय सप्रत्यय करण अधिकरण संबंध कारक

कर्ता कारक अथवा अप्रत्यय कर्म कारक	कर्ता कारक 'ने' पर प्रत्यय के साथ	कर्म कारक अथवा संप्रदान कारक 'को' परप्रत्यय के साथ	कारक अथवा अपादन कारक 'से' पर-प्रत्यय के साथ	कारक 'में' या 'पर' पर प्रत्यय के साथ	का/के/की रा/रे/री ना/ने/नी पर प्रत्यय के साथ
मैं	मैंने	मुझको/मुझे	मुझसे	मुझमें/मुझ पर	मेरा/मेरे/मेरी
हम	हमने	हमको/हमें	हमसे	हममें/हम पर	हमारा/हमारे/हमारी
तू	तूने	तुझको/तुझे	तुझसे	तुझमें/तुझ पर	तेरा/तेरे/तेरी
तुम	तुमने	तुमको/तुम्हें	तुमसे	तुममें/तुम पर	तुम्हारा/तुम्हारे/तुम्हारी
आप (आदरार्थी)	आपने	आपको	आपसे	आपमें/आप पर	आपका/आपके/आपकी
वह	उसने	उसको/उसे	उससे	उसमें/उस पर	उसका/उसके/उसकी
वे	उनने/ उन्होंने	उनको/उन्हें	उनसे	उनमें/उन पर	उनका/उनके/उनकी
यह	इसने	इसको/इसे	इससे	इसमें/इस पर	इसका/इसके/इसकी
ये	इनने/ इन्होंने	इनको/इन्हें	इनसे	इनमें/इन पर	इनका/इनके/इनकी
सो (एक वचन)	तिसने	तिसको/तिसे	तिससे	तिसमें/तिस पर	तिसका/तिसके/तिसकी
सो (बहु वचन)	तिनने/ तिन्होने	तिनको/तिन्हें	तिनसे	तिनमें/तिन पर	तिनका/तिनके/तिनकी
जो (एक वचन)	जिसने	जिसको/जिसे	जिससे	जिसमें/जिस पर	जिसका/जिसके/जिसकी
जो (बहु वचन)	जिनने/ जिन्होंने	जिनको/जिन्हें	जिनसे	जिनमें/जिन पर	जिनका/जिनके/जिनकी
कौन (एक वचन)	किसने	किसको/किसे	किससे	किसमें/किस पर	किसका/किसके/किसकी
कौन (बहु वचन)	किनने/ किन्होने	किनको/किन्हें	किनसे	किनमे/किन पर	किनका/किनके/किनकी
कोई (एक वचन)	किसी ने	किसी को	किसी से	किसी में/किसी पर	किसी का/किसी के/किसी की
क्या (एक वचन)	-	-	क्या से क्या हुआ ?		- तू क्या का क्या हुआ ? तुम क्या के क्या हुए ?

					तू क्या की क्या हुई ?
कुछ	-	-	-	-	कुछ का कुछ हुआ ?
आप (निज वाचक)	-	अपने को	अपने से	अपने में/अपने पर	अपना/अपने/अपनी

यहाँ स्पष्ट होता है कि -

(१) सभी सर्वनाम-शब्द अपने-अपने मूल अर्थ का बोध करने वाले पद तो बने रहते ही हैं ।

(२) साथ ही साथ सभी सर्वनाम-शब्द लिंग, वचन, पुरुष तथा कारक को सूचित करने वाले व्याकरणिक अर्थों के भी बोधक पद बने रहते हैं ।

(३) कुछ सर्वनाम-शब्द विशिष्ट स्थिति में विभिन्न अर्थों के भी बोधक पद बने रहते हैं ।

(४) कारक को के पर प्रत्ययों को 'विभक्तियाँ' भी कहा जाता है और 'कारक-चिन्ह' भी ।

९. विशेषण-शब्द की व्याकरणिक अर्थ बोधकता

विशेषण-शब्द किसी की (अर्थात् विशेष्य बोधक शब्द की) विशेषता का अर्थ बोधक पद बन जाता है । विशेषण-शब्द विशेष्य-विशेषण के रूप में या विधेय-विशेषण के रूप में विशेषता का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे -

(अ) लाल घोड़ा दौड़ा, सफेद घोड़ा दौड़ा और काला घोड़ा भी दौड़ा ।

इस वाक्य में लाल, सफेद, काला ये तीनों विशेष्य-विशेषण का अर्थबोधक पद हैं जो विशेष्य पद 'घोड़ा, के पहले आये हैं ।

(आ) घोड़ा काला है । लड़की सुन्दर है । फूल कोमल है ।

इन वाक्यों में काला, सुंदर, कोमल ये तीनों विधेय-विशेषण का अर्थबोधक पद हैं, जो विशेष्य पद घोड़ा, लड़की, फूल के बाद आये है ।

'मैं, तू, हम, तुम' और निजवाचक 'आप' को छोड़कर वाक्य में संज्ञा के साथ (प्रायः संज्ञा-शब्द के पहले) सर्वनाम-शब्द का प्रयोग सार्वनामिक विशेषण का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, वह लड़की आयी है । उस लड़के का नाम सुनीत है । किसी लड़के ने मुझे बुलाया था । इन वाक्यों में संज्ञा-शब्द के पहले आये 'वह, उस, किसी' ये सर्वनाम के रूप सार्वनामिक विशेषण का अर्थबोधक पद हैं ।

यहाँ सार्वनामिक विशेषण के अर्थबोधक पद के रूप में 'वह' सर्वनाम अपने मूल रूप में आया है और 'उस' वह के विकृत रूप में आया है तथा 'किसी' कोई के विकृत रूप मे आया है । इसका अर्थ यह हुआ कि कुछ 'मूल सार्वनामिक विशेषण' का अर्थबोधक पद होते है तो कुछ 'विकृत सार्वनामिक विशेषण' का अर्थबोधक पद होते है ।

(क) 'यह, वह, ये, वे, सो जो, कौन, क्या, कोई, कुछ' ये सभी सर्वनाम-शब्द अपने मूल रूप मे अर्थात् अविकृत रूप में 'मूल सार्वनामिक विशेषण' का अर्थबोधक पद बने रहते है ।

(ख) 'यह, वह, सो, जो, कौन' ये सर्वनाम-शब्द अपने विकृत रूप में 'विकृत सार्वनामिक विशेषण' का अर्थबोधक पद इस प्रकार बने रहते हैं -

मूल सार्वनामिक विशेषण	विकृत अर्थात् यौगिक गुणवाचक सार्वनामिक विशेषण	विकृत अर्थात् यौगिक परिमाणवाचक सार्वनामिक विशेषण	विकृत अर्थात् यौगिक पुल्लिंग बहुवचन संख्यावाचक सार्वनामिक विशेषण
यह	ऐसा, ऐसे, ऐसी	इतना, इतनी	·इतने
वह	वैसा,वैसे,वैसी	उतना, उतनी	उतने
सो	तैसा,तैसे,तैसी	तितना, तितनी	तितने
जो	जैसा,जैसे,जैसी	जितना, जितनी	जितने
कौन	कैसा,कैसे,कैसी	कितना, कितनी	कितने

'यौगिक गुणवाचक सार्वनामिक विशेषण' पुल्लिंग एकवचन या बहुवचन का और स्त्रीलिंग एक वचन या बहु वचन का भी अर्थबोधक पद बनते हैं। जैसे, मैंने ऐसा भैंसा, ऐसे बैल तथा ऐसी गायें कहीं नहीं देखीं ! 'यौगिक परिमाणवाचक सार्वनामिक विशेषण पुल्लिंग या स्त्रीलिंग एकवचन का भी अर्थबोधक पद बनते हैं। जैसे, मैंने इतना दूध पिया और इतनी रोटी खायी ।

वाक्य में 'जैसा, जैसे, जैसी, जितना, जितनी 'या' जितने 'संबंधवाचक यौगिक सार्वनामिक विशेषण' के अर्थबोधक पद के रूप मे आने पर उसके साथ नित्य संबंध रखने वाला 'वैसा, वैसे, वैसी, उतना,, उतनी 'याओट उतने 'नित्यसंबंधी यौगिक सार्वनामिक विशेषण के अर्थबोधक पद के रूप मे आता ही है । जैसे, जैसा देश वैसा भेष । तू जितना दूध चाहिए उतना पी ले । जितने लोग, उतने भेष । (वाक्य में जब संबधवाचक और नित्यसंबंधी एक ही विशेष्य के साथ संबंध रखते हैं, तब नित्यसंबंधी के आगे विशेष्य का लोप होता है । जैसे, तू जितना दूध चाहिए, उतना ( ) पी ले। मैं जैसा काम करता हूँ, वैसा ( ) कोई नहीं करता ।

वाक्य में सबंधवाचक और नित्यसंबंधी यौगिक सार्वनामिक विशेषणों की द्विरुक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती या घटती का अर्थबोधक पद-बंध बनी रहती है । जैसे, जैसा-जैसा काम बढ़ेगा, वैसी-वैसी आमदनी भी बढ़ेगी ; जैसा-जैसा काम कम होगा वैसी-वैसी आमदनी भी कम होगी । जितनी-जितनी बदनामी बढती है, उतना-उतना सन्मान कम होता है । (वाक्य में जब संबंधावाचक और नित्यसंबधी यौगिक सार्वनामिक विशेषणों के साथ विशेष्य पद का प्रयोग नहीं रहता, तब इन विशेषणों का प्रयोग संज्ञा-पदों के समान होता है । जैसे, जैसे को तैसा मिला । जैसा करोगे, वैसा भरोगे। इतने से उतना नहीं बनेगा ।)

यौगिक सार्वनामिक विशेषणों का एक विशिष्ट प्रयोग 'ऐसा वैसा' वाक्य में तिरस्कार या अनादर का अर्थबोधक पदबंध बना रहता है । जैसे, ऐसी वैसी बात मत करो । ऐसे वेसे क़िसी को हम नहीं मानते ।

बीच मे 'का/के/की' के साथ यौगिक विशेषणों का एक विशिष्ट प्रयोग 'जैसा का तसा/ जैसे के तैसे/ जैसी की तैसी' वाक्य में 'पूर्ववत' का अर्थबोधक पद बध बना रहता है।

जैसे, तू तो जैसा का तैसा ही रहा । आप तो जैसे के तैसे रहे है ! वह लडकी स्वभाव से जैसी की तैसी रही है ।

विशिष्ट स्थिति में 'ऐसा' और 'वैसा' यौगिक गुणवाचक सार्वनामिक विशेषण सादृश्यवाचक संबधसूचक का अर्थबोधक पद बने रहते है । जैसे, लड़का शेर ऐसा शूर है । लड़की शेरनी जैसी शूर है ।

विशिष्ट स्थिति मे यौगिक सार्वनाभिक विशेषण 'कैसा' और 'कितना' आश्चर्य का अर्थबोधक पद बने रहते हैं । जैसे, यश से कैसी खुशी हो रही है ! उस दानी ने कितना दान दिया !

विशिष्ट स्थिति मे यौगिक सार्वनाभिक विशेषण क्रियाविशेष्ण का भी अर्थबोधक पद बने रहते हैं । जैसे, वह सोचे-समझे बिना ऐसा ही बोलता है । वह लडका कैसे चल रहा है ! वह परीक्षा से इतना डरती है ! वह इतना खाता है !

'में के साथ 'इतने' यौगिक सार्वनामिक विशेषण 'उसी समय' का अर्थबोधक क्रियाविशेषण पद-बंध बन जाता है । जैसे, मैं घर से निकला, इतने में वर्षा होने लगी।

मेरा, मेरे, मेरी, तेरी, तेरे, तेरी, हमारा, हमारे, हमारी, तुम्हारा, तुम्हारे, तुम्हारी, आपका, आपके, आपकी, उसका, उसके, उसकी, इसका, इसके, इसकी, उनका, उनके, उनकी, इनका, इनके, इनकी, तिसका, तिसके, तिसकी, तिनका, तिनके, तिनकी, जिसका, जिसके, जिसकी, जिनका, जिनके, जिनकी, किसका, किसके, किसकी, किनका, किनके, किनकी, किसी का, किसी के, किसी की, अपना, अपने, अपनी ये सभी संबधकारकीय रूप विकृत सार्वनामिक विशेषण के अर्थबोधक पद बने रहते हैं । 'निज' और 'पराया' भी मूल सार्वनामिक विशेषण के अर्थबोधक पद बने रहते हैं । विशेषण-शब्द 'गुणवाचक विशेषण' के रूप में कभी विशेष्य के गुण (=अच्छा, भला, शांत, न्यायी, दानी, बुरा, सच्चा) का अर्थबोधक पद बनता है, कभी 'दशा' (= दुबला, पतला, मोटा, भारी, बारी, अमीर, दीन, गाढ़ा, गीला, चि‍कना, घना, सूखा, उद्यमी) का अर्थबोधक पद बनता है , कभी 'आकार' (=ऊँचा, लंबा, छोटा, बड़ा, ठिगना, नुकीला, चौकोर, समान, सुडौल, सुंदर) का अर्थबोधक पद बनता है ; कभी 'रंग =पीला, नीला, लाल, गुलाबी, नारंगी, बैगनी, सुनहरा, चमकीला, हरा, काला, सफेद का अर्थबोधक पद बनता है, कभी 'स्थान' (= स्थानीय, आन्तर्देशीय, आन्तर्राष्ट्रीय, भीतरी, बाहरी) का अर्थबोधक पद बनता है और कभी 'काल' (=भूत, वर्तमान, भविष्य, नया, पुराना, प्राचीन, अर्वाचीन, आगामी, मौसमी, टिकाऊ, अगला, पिछला) का अर्थबोधक पद बनता है ।

कभी 'सा' के साथ 'गुणवाचक विशेषण' कुछ न्यूनता का अर्थबोधक पद बंध बना रहता है । जैसे, यह छोटा-सा घर है । तुमने बड़ी-सी बात कही । अच्छा-सा नौकर मिला । लड़का भला-सा लगता है । लड़की दुबली-सी है । यह नीला-सा कपड़ा है । पुस्तक नयी-सी है । (फूल-सा बच्चा है । चमेली-सी देह है । पहाड़-सा डील है । पहाड सरीखा शरीर है । डाली सरीखी देह है । फूल समान मुख है । मीन सदृश्य चंचल नयन है । तू मित्रतुल्य है । गुरु योग्य आप हैं । इन वाक्यो से स्पष्ट होता है कि 'सा', सरीखा, समान, सदृश्य, तुल्य, योग्य' ये विशेषण संज्ञा या सर्वनाम के साथ विभक्ति के बिना आकर विशेषण का अर्थबोधक पदबंध बन जाते है ।)

कभी 'नाम', 'नामक,' 'संबंधी', और 'रूपी' संज्ञा के साथ मिलकर विशेषण का अर्थबोधक पदबंध बनते हैं । जैसे, मैने 'गोदान' नामक उपन्यास पढ़ा है । मैंने प्रेमचन्द सबधी बात की थी । जीवन में साहित्यरूपी मार्गदर्शक अच्छा होता है । मेरी 'स्वत्व' नाम की पुस्तक है ।

कभी संज्ञा का सबंधकारक भी गुणवाचक विशेषण का अर्थबोधक पद बनकर रहता है । जैसे, मैं बनारसी (=बनारस की) साड़ी लाया हूँ । जंगली (=जगल का) पशु से सावधान रहना । वह तो देश प्रेमी (देश का प्रेमी) है ।

जब कभी विशेष्य लुप्त रहता है, तब गुणवाचक विशेषण संज्ञा का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, बड़ा आया है । छोटा कहाँ है ? दीन ने रोटी खायी ।

विशेषण-शब्द 'संख्यावाचक विशेषण' के रूप में कभी विशेष्य की निश्चित संख्या (एक, दो, तीन, दस, सौ) का अर्थबोधक पद बनता है, कभी विशेष्य की 'अनिश्चित संख्या' (सब, सर्व, सकल, समस्त, कुल, बहुत, अनेक, कई, अधिक, ज्यादा, कम, कुछ, थोडा, आदि, इत्यादि, वगैरह, अमुक, फलाना, कै, दो चार दिन) का अर्थबोधक पद बनता है और कभी विशेष्य की 'परिमाणवाचक संख्या' (सब, और सारा, समूचा, अधिक, ज्यादा, कम पूरा अधूरा, यथेष्ट) का अर्थबोधक पद बनता है।

'निश्चित संख्यावाचक विशेषण' गुणवाचक विशेषण के रूप मे कभी विशेष्य के पूर्णांक (=एक, दस, पचास, हजार,) का अर्थबोधक पद बनता है और कभी विशेष्य के अपूर्णांक (= पाव, आधा, पौन, सवा, डेढ़, अढ़ाई) का अर्थबोधक पद बनता है ।

'निश्चित संख्यावाचक विशेषण' क्रमवाचक विशेषण के रूप में विशेष्य के क्रम (=पहला, दूसरा, पॉचवाँ, दसवॉ, सौवॉ, प्रथम, दशम, द्वितीया, तृतीया) का अर्थबोधक पद बनता है ।

'निश्चित संख्यावाचक विशेषण' आवृत्तिवाचक विशेषण के रूप में विशेष्य के गुना (= दुगुना, तिगुना, चौगुना, सौगुना, इकहरा, दुहरा, चौहरा) का अर्थबोधक पद बनता है ।

'निश्चित संख्यावाचक विशेषण' समुदायवाचक विशेषण के रूप में विशेष्य के समुदाय (=दोनो, तीनों, चारो, पचासो, हजारो, जोड़ा, युग्म, दहाई, चालीसा, सैकड़ा) का अर्थबोधक पद बनता है ।

'निश्चित संख्यावाचक विशेषण' प्रत्येकवाचक विशेषण के रूप में विशेष्य के प्रत्येक होने (हर, प्रत्येक, एक-एक) का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, हर घडी तेरी याद आती है । यहॉ प्रत्येक छात्र स्वस्थ है । एक-एक लडकी आ रही है ।

कुछ आकारान्त विशेषण ही विशेष्य के लिग, वचन और विशिष्ट कारक के अर्थबोधक पद बने रहते है । जैसे,

(१) काला घोडा दौडा । (२) मैंने काला घोड़ा देखा ।

पहले वाक्य में आकारान्त विशेषण 'काला' पुल्लिग, एकवचन, अप्रत्यय कर्ता विशेष्य 'घोडा' की रंगसबंधी विशेषता का अर्थबोधक विशेषण पद है, तो दूसरे वाक्य मे पुल्लिग, एकवचन, अप्रत्यय कर्म विशेष्य 'घोडा' की रगसंबधी विशेषता का अर्थबोधक पद है ।

(३) काले घोडे ने पानी पिया (४) मैंने काले घोडे को देखा

तीसरे और चौथे वाक्य में आकारान्त विशेषण काला, एकारान्त, विशेषण 'काले' के रूप में तीसरे वाक्य में पुल्लिंग, एकवचन, सप्रत्यय कर्त्ता 'घोडे ने' के लिए और चौथे वाक्य मे पुल्लिंग, एक वचन, सप्रत्यय कर्म 'घोड़े को' के लिए विशेषण का अर्थबोधक पद बना है।

(५) काले घोड़े दौड़े । (६) मैंने काले घोड़े देखे ।

पाँचवें और छठे वाक्य में आकारान्त विशेषण 'काला' एकारान्त विशेषण 'काले' के रूप में पाँचवें वाक्य में पुल्लिंग, बहुवचन, अप्रत्यय कर्ता' घोड़े के लिए और छठे वाक्य मे पुल्लिंग, बहुवचन अप्रत्यय कर्म 'घोड़े' के लिए विशेषण का अर्थबोधक पद बना है ।

(७) काले घोड़ों ने पानी पिया । (८) मैंने काले घोड़ों को देखा ।

सातवें और आठवें वाक्य मे आकारान्त विशेषण 'काला' एकारान्त विशेषण 'काले के रूप में सातवें वाक्य में पुल्लिंग, बहुवचन, सप्रत्यय कर्त्ता 'घोड़ों ने' के लिए और आठवे वाक्य में पुल्लिंग, बहुवचन, सप्रत्यय कर्म 'घोड़ों को' के लिए विशेषण का अर्थबोधख पद बना है ।

(९) काली घोड़ी दौड़ी । मैंने काली घोड़ी देखी । काली घोड़ी ने पानी पिया। मैने काली घोडी को देखा । काली घोड़ियाँ दौड़ी । मैने काली घोड़ियाँ देखीं। काली घोडियो ने पानी पिया । मैने काली घोड़ियों को देखा ।

नौवें क्रम के सभी वाक्यों में आकारान्त विशेषण 'काला' ईकारान्त विशेषण 'काली' के रूप में स्त्रीलिंग, एकवचन, अप्रत्यय कर्ता 'घोड़ी' या अप्रत्यय कर्म 'घोड़ी' अथवा एक वचन, सप्रत्यय कर्ता 'घोड़ी ने' या एकवचन, सप्रत्यय कर्म 'घोड़ों को' अथवा बहुवचन, अप्रत्यय कर्त्ता 'घोड़ियाँ' या बहुवचन, अप्रत्यय कर्म 'घोड़ियाँ' या बहुवचन सप्रत्यय कर्त्ता घोड़ियों ने' अथवा बहुवचन सप्रत्यय कर्म 'घोड़ियों के लिए रंग संबंधी विशेषता का अर्थबोधक पद बना है ।

इस प्रकार 'काला' विशेषण के समान कुछ आकारान्त विशेषण-शब्द विशेष्य के लिग, वचन और विशिष्ट कारक के अर्थबोधक पद बनते हैं ।

सर्वनाम-शब्दों में से 'हम, तुम' अपने मूल रूप में और 'मैं तू, यह, वह, ये, वे, जो, सो, कौन, कोई' अपने विकृत रूप में अर्थात् 'मुझ, तुझ, इस, उस, इन, उन, जिस, जिन, तिस, तिन, किस, किन, किसी' इन रूपों में विभक्तिसाहित विशेष्यों या संबंधसूचकांत विशेष्यों के साथ विशेषण का अर्थबोधक पद बनते है । जैसे,

हम छात्रों की समझ और तुम विद्वानों की विद्वता अच्छी है ।

मुझ अधिकारी को और तुझ कर्मचारी को काम करना ही है ।

इस घर में मैं रहता हूँ और उस घर में तुम रहते हो ।

इन छात्रों के साथ मुझे और उन छात्रों के साथ तुझे जाना है ।

जिस चीज को पाना है, तिस चीज को मै पा लूँगा ।

जिन छात्रों को पढ़ना था, तिन छात्रों को हमने पढ़ाया ।

किस लड़के ने काम किया ? किन लोगों को बुलाना है ?

किसी घर में जाना है ।

जब 'एक' पूर्णांकबोधक विशेषण का प्रयोग संज्ञा के समान होता है तब वह बहुवचन का अर्थबोधक पद इस प्रकार बनता है - 'एक काम करता है और एक आराम करता है ।

विशेषण-शब्द तुलनावस्था का भी अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, विशेषण की

मूल अवस्था	उत्तरावस्था	उत्तमावस्था
गुरू (भारी)	गुरूतर (अधिक भारी)	गुरूतम (सबसे भारी)
लघु (छोटा)	लघुतर (अधिक छोटा)	लघुतम (सबसे छोटा)
उच्च	उच्चतर	उच्चतम
प्राचीन	प्राचीनतर	प्राचीनतम

यहाँ उत्तरावस्था के अर्थबोध के लिए 'तर' प्रत्यय सहायक हुआ है और उत्तमावस्था के अर्थबोध के लिए 'तम' प्रत्यय सहायक हुआ है ।

कभी संस्कृत के 'इष्ठ' या 'ईयस' प्रत्यय के योग से भी विशेषण की उत्तरावस्था का अर्थबोधक पद बन जाता है । जैसे, वसुमत् (धनी) इष्ठ= वसिष्ठ (अधिक धनी); बलिन् (बलवान) इष्ठ = बलिष्ठ (अधिक बलवान); गुरू (भारी) इष्ठ = गरिष्ठ (अधिक भारी), स्वाद (मीठा) इष्ठ = स्वादिष्ठ (अधिक मीठा) ।

बलिन् (बलवान) ईयस = बलीयस (अधिक बलवान); गुरू (भारी) ईयस = गरीयस (बड़ी भारी) । 'बलीयस' या 'गरीयस' का स्त्रीलिंग अर्थबोधक पद बनता है- बलीयसी, गरीयसी ।

यहाँ स्पष्ट होता है कि सार्वनामिक विशेषण-शब्द हो, गुणवाचक विशेषण-शब्द हो या संख्यावाचक विशेषण-शब्द हो, वह विशेष्य की विशेषता का अर्थबोधक पद बना रहता है । साथ ही कुछ आकारान्त विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन और विशिष्ट कारक के भी अर्थबोधक पद बने रहते हैं ।

१०. क्रिया-शब्द की व्याकरणिक अर्थबोधकता

क्रिया-शब्द क्रियात्मक अर्थबोधक पद बन जाता है और वाक्य में उद्देश्यवाचक पद के विषय मे कुछ कहने का अर्थात् कुछ विधान करने का काम करता है । इसलिए क्रिया-पद को 'विधेय' कहा जाता है । क्रिया-पद अर्थात् क्रिया-शब्द उद्देश्य के विषय मे स्थिति (अस्तित्व) या विकार (परिवर्तन) अथवा कार्य (क्रिया-व्यापार) का अर्थबोधक पद बन जाता है । जैसे,

(१) 'कली है ।' इस वाक्य में 'है' यह विधेयरूपी क्रिया-शब्द उद्देश्यरूपी 'कली' के विषय में स्थिति (अस्तित्व) का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(२) 'कली खिली ।' इस वाक्य में 'खिली' यह विधेय रूपी क्रिया-शब्द उद्देश्य रूपी 'कली' के विषय में विकार (परिवर्तन) का ऊर्थबोधक पद बन गया है।

(३) 'कली गिरी ।' इस वाक्य मे 'गिरी' यह विधेय रूपी क्रिया-शब्द उद्देश्यरूपी 'कली' के विषय में क्रिया-व्यापार (कार्य) का अर्थबोधक पद बन गया है।

(क) विभिन्न क्रिया-शब्दों की अर्थबोधकता -

(१) क्रिया-शब्द के रूप में धातु रूप भी क्रिया का अर्थबोधक पद बनता है। जैसे, तू आ/जा/खा/ पी/ चल/खेल/निकल । (यहाँ सभी क्रिया-शब्द आज्ञावाचक अर्थबोधक पद है ।)

(२) क्रिया-शब्द के रूप मे धातु रूप 'ना' प्रत्यय के साथ क्रिया का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, तू आना/जाना/ खेलना । (यहाँ सभी क्रिया-शब्द आज्ञावाचक अर्थबोधक पद हैं ।)

(३) क्रिया-शब्द के रूप मे धातु रूप विभिन्न प्रत्ययों के साथ परिवर्तनशील क्रिया का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे वह चलता है/चला/ चलेगा । यहाँ 'ता', 'आ', 'एगा पुल्लिंग, एक वचन अन्यपुरुष सामान्य वर्तमान काल/सामान्य भूतकाल/सामान्य भविष्यकाल का अर्थबोधक प्रत्यय है ।

(४) कर्म की अपेक्षा न करने वाला क्रिया-शब्द अकर्मक क्रिया का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, मैं उठता हूँ/चला/ जाऊँगा ।

(५) कर्म की अपेक्षा करने वाला क्रिया-शब्द सकर्मक क्रिया के रूप मे एक कर्मक क्रिया का या द्विकर्मक क्रिया का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, 'वह रोटी खाता है । इस वाक्य में 'खाता है' यह क्रिया-शब्द 'रोटी' इस एक कर्म के आधार पर एक कर्मक क्रिया का अर्थबोधक पद बन गया है ।

'उसने दीन को रोटी दी ।' इस वाक्य मे 'दी' यह क्रिया-शब्द 'दीन को' (गौण कर्म) और 'रोटी' (मुख्य कर्म) के आधार पर द्विकर्मक क्रिया का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(६) कर्तृपूरक पद की अपेक्षा करने वाला अपूर्ण अकर्मक क्रिया-शब्द कर्तृपूरकीय अपूर्ण अकर्मक क्रिया का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, 'फूल कोमल है ।' इस वाक्य मे 'है' यह अपूर्ण अकर्मक क्रिया-शब्द 'कोमल' इस कर्तृपूरक पद के आधार पर कर्तृपूरकीय अपूर्ण अकर्मक क्रिया का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(७) कर्मपूरक पद की अपेक्षा करने वाला अपूर्ण सकर्मक क्रिया-शब्द कर्मपूरकीय अपूर्ण सकर्मक क्रिया का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, 'मैंने लडकी को सुन्दर माना । इस वाक्य में अपूर्ण सकर्मक क्रिया शब्द सुंदर इस कर्मपूरक पद के आधार पर कर्मपूरकीय अपूर्ण सकर्मक क्रिया का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(८) वाक्य मे प्रेरक कर्ता और प्रेरित कर्ता की अपेक्षा करने वाला क्रिया-शब्द प्रेरणार्थक क्रिया का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे,

(१) माँ ने बच्चे को चलाया ।

(२) दादी ने माँ से बच्चे को चलवाया ।

पहले वाक्य में 'चलाया' क्रिया-शब्द प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया का अर्थबोधक पद है। इसलिए इस वाक्य में 'माँ' प्रेरक कर्ता है और 'बच्चा' प्रेरित कर्ता है, तभी तो माँ की प्रेरणा से बच्चे ने चलने का काम किया है ।

दूसरे वाक्य में 'चलवाया' क्रिया-शब्द द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया का अर्थबोधक पद है । इसलिए इस वाक्य में 'दादी' प्रेरक कर्ता है और 'माँ' दादी की प्रेरणा से प्रेरित होकर बच्चे को चलाने वाला द्वितीय प्रेरक कर्ता है, तभी तो बच्चा भी माँ की प्रेरणा से प्रेरित होकर चलने वाला प्रेरित कर्ता है ।

इस प्रकार 'चलाया' प्रथम प्रेरणार्थक यौगिक क्रिया का अर्थबोधक पद है. क्योंकि इसमे 'चलाया' प्रेरणार्थक क्रिया और 'चला' प्रेरित क्रिया का योग है

'चलवाया' द्वितीय प्रेरणार्थक यौगिक क्रिया का अर्थबोधक पद है, क्योंकि इसमे चलवाया' प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया, 'चलाया' द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया और 'चला' प्रेरित क्रिया का योग है ।

(९) 'लजाना, बतियाना, हथियाना, दुखाना, शर्माना, अनुरागना, खरीदना, त्यागना, बदलना, स्वीकारना, अपनाना, अलगाना, सठियाना, इस प्रकार के क्रिया-शब्द यौगिक नाम धातु के रूप में 'नामिक क्रिया' का अर्थबोधक पद बने रहते हैं । इस कारण से ही ये क्रिया-शब्द क्रमानुसार लाज, बात, हाथ, दुख, शर्म, अनुराग, खरीद, त्याग, बदल, स्वीकार इन संज्ञा-शब्दो से, अपना (आप) इस सर्वनाम-शब्द से और अलग, साठ इन विशेषण शब्दों से बन गये है ।

'खटखटाना, कड़कड़ाना, चमचमाना, चहचहाना, जगमगाना, छलछलाना, झनझनाना, झरझराना, झलमलाना, टनटनाना, तिलमिलाना, थपथपाना, फटफटाना, फड़फड़ाना, बड़बड़ाना, भनभनाना, मिमियाना' इस प्रकार के क्रिया-शब्द यौगिक अनुकरण धातु के रूप मे अनुकरणात्मक क्रिया' का अर्थबोधक पद बने रहते है । इस कारण से ही ये क्रिया-शब्द 'खटखट, कडकड, चहचह, झनझन, टनटन, फटफट, फडफड, बड़बड़, भनभन, मिमि इन ध्वन्यात्मक अनुकरण-शब्दों से ; चमचम, जगमग, झलमल, तिलमिल इन दृश्यात्मक अनुकरण-शब्दों से और छलछल, झरझर, थपथप, इन ध्वन्यात्मक तथा गत्यात्मक अनुकरण शब्दों से बन गये है ।

(१०) करना पडता है, जाना है, आना चाहिए, होता आया है, बढ़ता गया, गिरता रहा, खा चुका, पी लिया, चलते नहीं बनता, खाये जाता है, स्वीकार करता है, पढ़ा-लिखा है, सोचा समझा है' इस प्रकार के क्रिया-बंध संयुक्त क्रिया का अर्थबोधक पद-बंध बने रहते हैं । क्योंकि इन पद-बंधों के मूल में कम से कम दो क्रियाओं का मेल या संज्ञा के साथ क्रिया का मेल रहता है । इसलिए 'स्वीकार करता है' इस सयुक्त क्रिया में 'स्वीकार' इस संज्ञा के साथ 'करना है' इस क्रिया का मेल है ।

(ख) क्रिया-शब्द की विविध अर्थबोधकता

वाक्य में क्रिया-पद वाच्य,काल, अर्थ, पुरूष, लिग, वचन, प्रयोग, कृदंत, और पक्ष का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे,

(अ) वाच्य का अर्थबोधक क्रिया-पद

(१) वाक्य मे 'कर्तापद' के विषय मे विधान करने वाला क्रिया-पद कर्तृवाच्य क्रिया का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, 'सुनीत गीत गाता है ।' इस वाक्य मे 'गाता है यह क्रिया-पद 'सुनीत' इस 'कर्ता-पद' की गीत गाने की क्रिया के विषय में विधान करता है, इसलिए यह 'कर्तवाच्य क्रिया का अर्थबोधक पद' है । यही स्थिति अगले वाक्यो मे प्रयुक्त क्रिया-पदों की है- उज्ज्वल ने पुस्तक पढ़ी । राहुल ने नहाया। मैंने मित्र को बुलाया । लतिका ने गाना सुना । ज्ञानराज गीत लिखेंगे ।

(२) वाक्य में 'कर्म-पद' के विषय में विधान करने वाला क्रिया-पद कर्मवाच्य क्रिया का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, गीत गाया जाता है ।' इस वाक्य मे 'गाया जाता है यह क्रिया पद गीत इस 'कर्म पद' के गाये जाने के विषय में विधान करता है

इसलिए यह 'कर्मवाच्य क्रिया का अर्थबोधक पद' है । यही स्थिति अगले वाक्यों मे प्रयुक्त क्रिया-पदों की है - पुस्तक पढ़ी गयी । मित्र को बुलाया गया।

(३) वाक्य मे केवल 'भाव' के विषय में विधान करने वाला क्रिया-पद भाववाच्य क्रिया का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, गाया नहीं जाता । इस वाक्य में केवल (सयुक्त) क्रिया-पद 'गाया नहीं जाता' का ही प्रयोग हुआ है, जिससे केवल अशक्तता (असमर्थता) के भाव के विषय में विधान होता है, इसलिए यह 'भाववाच्य क्रिया का अर्थबोधक पद' है । यही स्थिति अगले वाक्यों की है- पढा नहीं गया । बुलाया नहीं गया। नहाया नहीं गया ।

(आ) काल का अर्थबोधक क्रिया-पद

(१) वाक्य में सामान्य वर्तमान काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'सामान्य वर्तमान काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे वह चलता है /चलती है । वे चलते हैं/ चलती हैं । यहाँ 'त्' पर प्रत्यय प्रयुक्त सभी क्रिया-पद है/हैं के योग से सामान्य वर्तमान काल का अर्थबोधक पद हैं ।

(२) वाक्य में सामान्य भूतकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'सामान्य भूतकाल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चला/चली । वे चले/चलीं। यहाँ 'आ/ ई/ ए/ईं' पर प्रत्यय युक्त क्रिया-पद सामान्य भूत काल का अर्थबोधक पद है ।

(३) वाक्य में सामान्य भविष्यकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'सामान्य भविष्य काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चलेगा/चलेगी । वे चलेंगे/ चलेंगी । यहाँ 'ग' पर प्रत्यय युक्त सभी क्रिया-पद सामान्य भविष्यकाल का अर्थबोधक पद हैं ।

(४) वाक्य में अपूर्ण वर्तमान काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'अपूर्ण वर्तमान काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चल रहा है/ चल रही है। वे चल रहे हैं/चल रही हैं । यहाँ 'रहा है/रही है/रहे हैं/रही हैं, के योग से क्रिया-पद अपूर्ण वर्तमान काल का अर्थबोधक पद है ।

(५) वाक्य में अपूर्ण भूतकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'अपूर्ण भूतकाल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चल रहा था/ चल रही थी। वे चल रहे थे/ चल रही थीं । यहाँ 'रहा था/रही थी/ रहे थे/ रही थीं' के योग से क्रिया-पद अपूर्ण भूतकाल का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(६) वाक्य में पूर्ण वर्तमान काल को सूचित करने वाला क्रिया पद 'पूर्ण वर्तमान काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चला है/चली है । वे चले हैं/ चली हैं। यहाँ 'आ है /ई है/ ए है / ई हैं के योग से क्रिया-पद पूर्ण वर्तमान काल का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(७) वाक्य मे पूर्ण भूतकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद' पूर्ण भूतकाल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चला था/ चली थी । वे चले थे/ चली थीं । यहाँ आ था/आ थी/ ए थे/ ई थीं' के योग से क्रिया-पद पूर्ण भूतकाल का अर्थबोधक पद बन गया है ।

आग्रह का अर्थबोधक क्रिया-पद :- तू चल तो सही/ तुम बोलना तो सही।

प्रार्थना का अर्थबोधक क्रिया-पद : - आप मुझ पर कृपा कीजिए । आप उस पर कृपा कीजिएगा ।

आप इधर से चलिए । (आदर का अर्थबोधक क्रिया-पद) ।

अनुमतिवाचक प्रश्न का अर्थबोधक क्रिया-पद : - क्या मै चलूँ ? हम लोग यहाँ बैठें ?

(५) वाक्य मे 'सकेतार्थ' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'संकेतार्थ का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो सामान्य संकेतार्थ काल, अपूर्ण संकेतार्थ काल या पूर्ण संकेतार्थ काल का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, वह गीत गाता तो अच्छा होता । वह गीत गाता होता तो ठीक होता । उसने गीत गाया होता तो मजा आता । (यहाँ संकेतार्थक वाक्य मे कार्यकारण पर आधारित दो घटनाओं की असिद्धि का अर्थबोधक क्रिया-पद हैं । ऐसे संकेतार्थक वाक्य मे 'यदि . . . . तो, 'अगर. . . तो, 'जो .. . .तो' नित्यसंबंधी समुच्चयबोदक आते है और वाक्य अपने आप 'मिश्र वाक्य' बन जाता है ।)

पूर्व शर्त का अर्थबोधक क्रिया-पद : - यदि मै जाता, तो काम बनता । यदि मैं ऐसा करता होता, तो अब तक धनी हो जाता । यदि तुमने कमाया होता, तो आज कितना अच्छा होता ।

(ई) पुरुष, लिंग और वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद

वाक्य में क्रिया-पद पुरुष, लिग और वचन का अर्थबोधक पद इस प्रकार बना रहता है --

(१) उत्तम पुरुष, पुल्लिंग, एक वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद : - मै चलता हूँ/ चला/चलूँगा ।

(२) उत्तम पुरुष, स्त्रीलिंग, एक वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद :- मै चलती हूँ/ चली/चलूँगी ।

(३) उत्तम पुरुष, पुल्लिंग, बहुवचन का अर्थबोधक क्रिया-पद : हम चलते हैं/ चले/ चलेंगे ।

(४) उत्तम पुरुष स्त्रीलिग, बहुवचन का अर्थबोधक क्रिया-पद - हम चलती हैं/ चलीं/ चलेंगी ।

(५) मध्यम पुरुष पुल्लिंग, एक वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद - तू चलता है/ चला/चलेगा

(६) मध्यम पुरुष स्त्रीलिग, एक वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद :- तू चलती है/ चली/चलेगी ।

(७) मध्यम पुरुष पुल्लिंग, बहुवचन का अर्थबोधक क्रिया-पद :- तुम चलते हो/ चले/ चलोगे ।

(८) मध्यम पुरुष, स्त्रीलिग बहुवचन का अर्थबोधक क्रिया-पद : - तुम चलती हो/ चलीं/चलोगी

इसलिए यह 'कर्मवाच्य क्रिया का अर्थबोधक पद' है । यही स्थिति अगले वाक्यों मे प्रयुक्त क्रिया-पदों की है - पुस्तक पढ़ी गयी । मित्र को बुलाया गया।

(३) वाक्य में केवल 'भाव' के विषय मे विधान करने वाला क्रिया-पद भाववाच्य. क्रिया का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, गाया नहीं जाता । इस वाक्य में केवल (सयुक्त) क्रिया-पद 'गाया नहीं जाता' का ही प्रयोग हुआ है, जिससे केवल अशक्तता (असमर्थता) के भाव के विषय मे विधान होता है, इसलिए यह 'भाववाच्य क्रिया का अर्थबोधक पद' है । यही स्थिति अगले वाक्यों की है- पढ़ा नहीं गया । बुलाया नहीं गया। नहाया नहीं गया ।

(आ) काल का अर्थबोधक क्रिया-पद

(१) वाक्य में सामान्य वर्तमान काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'सामान्य वर्तमान काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे वह चलता है /चलती है । वे चलते है/ चलती हैं । यहाँ 'त्' पर प्रत्यय प्रयुक्त सभी क्रिया-पद है/हैं के योग से सामान्य वर्तमान काल का अर्थबोधक पद हैं ।

(२) वाक्य मे सामान्य भूतकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'सामान्य भूतकाल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चला/चली । वे चले/चलीं। यहॉ 'आ/ ई/ ए/ई' पर प्रत्यय युक्त क्रिया-पद सामान्य भूत काल का अर्थबोधक पद है ।

(३) वाक्य मे सामान्य भविष्यकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'सामान्य भविष्य काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चलेगा/चलेगी । वे चलेगे/ चलेगी । यहाँ 'ग' पर प्रत्यय युक्त सभी क्रिया-पद सामान्य भविष्यकाल का अर्थबोधक पद है ।

(४) वाक्य मे अपूर्ण वर्तमान काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'अपूर्ण वर्तमान काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चल रहा है/ चल रही है। वे चल रहे है/चल रही हैं । यहाँ 'रहा है/रही है/रहे है/रही हैं, के योग से क्रिया-पद अपूर्ण वर्तमान काल का अर्थबोधक पद है ।

(५) वाक्य मे अपूर्ण भूतकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'अपूर्ण भूतकाल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चल रहा था/ चल रही थी। वे चल रहे थे/ चल रही थीं । यहाँ 'रहा था/रही थी/ रहे थे/ रही थी' के योग से क्रिया-पद अपूर्ण भूतकाल का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(६) वाक्य में पूर्ण वर्तमान काल को सूचित करने वाला क्रिया पद 'पूर्ण वर्तमान काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चला है/चली है । वे चले हैं/ चली है। यहाँ 'आ है /ई है/ ए है / ई हैं के योग से क्रिया-पद पूर्ण वर्तमान काल का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(७) वाक्य में पूर्ण भूतकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद' पूर्ण भूतकाल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चला था/ चली थी । वे चले थे/ चली थीं । यहॉ आ था/आ थी/ ए थे/ ई थीं' के योग से क्रिया-पद पूर्ण भूतकाल का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(८) वाक्य में संभाव्य वर्तमान काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'संभाव्य वर्तमान काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चलता हो/चलती हो । वे चलते हों/चलती हों । मैं चलता होऊं । यहाँ मुख्य क्रिया 'तृ' पर प्रत्यय से युक्त होकर 'हो/हों/होऊँ' के साथ जुड़कर क्रिया-पद के रूप में संभाव्य वर्तमान काल का अर्थबोधक पद बन गयी है ।

(९) वाक्य मे संभाव्य भूतकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'संभाव्य भूतकाल का अर्थबधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चला हो/चली हो/ वे चले हो/ चली हो । मै चला होऊं ' यहाँ 'आ हो/ई हो/ए हो / ई हों / आ होऊँ' के योग से क्रिया-पद संभाव्य भूतकाल का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(१०) वाक्य में संभाव्य भविष्य काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'संभाव्य भविष्य काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चले/वे चले / मैं चलूं । यहाँ 'ए/एँ/ऊँ' के योग से क्रिया-पद संभाव्य भविष्यकाल का अर्थबोधक पद है ।

(११) वाक्य में संदिग्ध वर्तमान काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'संदिग्ध वर्तमाना काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चलता होगा/ चलती होगी । वे चलते होंगे/ चलती होंगी । मैं चलता होऊँगा/ चलती होऊँगी । यहाँ मुख्य क्रिया 'तृ' पर प्रत्यय से युक्त होकर 'होगा/होगी/ होंगे/ होंगी/ होऊँगा/ होऊँगी' के साथ जुड़कर क्रिया-पद के रूप मे संदिग्ध वर्तमान काल का अर्थबोधक पद बन गयी है ।

(१२) वाक्य में संदिग्ध भूतकाल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'संदिग्ध भूतकाल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चला होगा/ चली होगी/ वे चले होगे/ चली होंगी । मैं चला होऊँगा/चली होऊँगी । यहाँ 'आ होगा/ई होगी/ ए होंगे/ ई होंगी/ आ होऊँगा/ ई होऊँगी' के योग से क्रिया-पद 'संदिग्ध भूतकाल का अर्थबोधक पद है ।

(१३) वाक्य में विधिकाल को सूचित करने वाला 'क्रिया-पद' प्रत्यक्ष विधिकाल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चले । वे चले । तुम चले । मैं चलूँ। आप चलिए/ तू चल/यहाँ ए/एँ/ओ/ऊँ/इ ए/ पर प्रत्यय को योग से क्रिया-पद प्रत्यक्ष विधिकाल का अर्थबोधक पद है ।

(१४) वाक्य में परोक्ष विधिकाल को सूचित करने वाला 'क्रिया-पद' परोक्ष विधि काल का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, तू चलना/ तुम चलना / आप चलिएगा । यहाँ 'ना/ इएगा' पर प्रत्यय के योग से क्रिया-पद परोक्ष विधिकाल का अर्थबोधक पद है।

(१५) वाक्य मे सामान्य संकेतार्थ काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'सामान्य संकेतार्थ काल' का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चलता/ चलती/वे चलते/ चलतीं/ यहाँ केवल 'तु' पर प्रत्यय से युक्त क्रिया-पद ही 'सामान्य संकेतार्थ काल का अर्थबोधक पद है ।

(१६) वाक्य में अपूर्ण सकेतार्थ काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'अपूर्ण सकेतार्थ काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चलता होता/चलती होती। वे चलते होते/ चलती होती । यहाँ मुख्य क्रिया 'तृ' पर प्रत्यय से युक्त होकर 'होता होती/ होते/होती' के योग से अपूर्ण संकेतार्थ काल का अर्थबोधक पद बन गयी है ।

(१७) वाक्य में पूर्ण संकेतार्थ काल को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'पूर्ण सकेतार्थ काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चला होता/ चली होती। वे चले होते/

चली होती । यहाँ 'आ होता/ ई होती/ए होते/ ई होतीं' के योग के क्रिया-पद पूर्ण सकेतार्थ काल का अर्थबोधक पद है ।

(इ) अर्थ और काल का अर्थबोधक क्रिया-पद

वाक्य में वक्ता से व्यक्त मानसिक भाव को अर्थात् अर्थ को सूचित करने वाला क्रियापद 'अर्थ और काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे,

(१) वाक्य में 'निश्चयार्थ' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'निश्चयार्थ का अर्थबोधक पद' बना रहता है , जो सामान्य वर्तमान काल, अपूर्ण वर्तमान काल, पूर्ण वर्तमान काल, सामान्य भूतकाल, अपूर्ण भूतकाल, पूर्ण भूतकाल या सामान्य भविष्य काल का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, मैं गीत गाता हूँ । मैं गीत गा रहा हूँ । मैने गीत गाया है । मैंने गीत गाया । मैं गीत गा रहा था । मैंने गीत गाया था। मैं गीत गाऊँगा ।

(२) वाक्य में 'संभावनार्थ' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'संभावनार्थ का अर्थ बोधक पद' बना रहता है, जो संभाव्य वर्तमान काल, संभाव्य भूतकाल, संभाव्य भविष्यकाल सदिग्ध वर्तमान काल या संदिग्ध भूत काल का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, वह गीत गाता हो । उसने गीत गाया हो । वह गीत गाये । मैं गीत गाता होऊँ । वह गीत गाना होगा । उसने गीत गाया होगा । अनुमति अर्थबोधक क्रिया-पद - क्या मैं चलूँ ? क्या हम चलें ? (संभाव्य भविष्यकाल)

अनुमान का अर्थबोधक क्रिया-पद :- शायद पानी बरसे । कदाचित् वे चले। (सभाव्य भविष्यकाल)

संभावना (अनिश्चय) का अर्थबोधक क्रिया-पद :- कहीं वह लौट न आये। (सभाव्य भविष्यकाल)

शायद वह गीत गाता होगा । (संदिग्ध वर्तमान काल) शायद उसने गीत गाया होगा । (संदिग्ध भूतकाल) आशीर्वाद का अर्थबोधक क्रिया-पद : - आपका भला हो/तेरी जय हो । (संभाव्य भविष्यकाल) ।

इच्छा का अर्थबोधक क्रिया-पद :- ईश्वर तेरा कल्याण करे । (संभाव्य भविष्य काल) ।

कर्तव्य (उद्देश्य/हेतु/ आवश्यकता) का अर्थबोधक क्रिया-पद : -

ऐसा करो जिससे बात बन जाये । (संभाव्य भविष्यकाल) ।

(३) वाक्य मे 'संदेहार्थ' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'संदेहार्थ का अर्थबोधक पद बना रहता है, जो संदिग्ध वर्तमान काल या संदिग्ध भूतकाल का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, वह गीत गाता होगा । उसने गीत गाया होगा। **तर्क, कल्पना या संभावना का अर्थबोधक क्रिया-पद :-** आप बहुत अध्ययन करते होगे। पुस्तक कागज से ही बनी होगी । मैं गीत गाता होऊँगा ।

(४) वाक्य मे 'अज्ञार्थ' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'आज्ञार्थ का अर्थबोधक पद बना रहता है, जो प्रत्यक्ष विधि काल या परोक्ष विधिकाल का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, तू चल/ तुम चलो/ आप चलिए/तू चलना/ तुम चलनां/ आप चलिएगा ।

उपदेश का अर्थबोधक क्रिया-पद : - तू सही काम कर / तुम बुरा न बोलना

आग्रह का अर्थबोधक क्रिया-पद :- तू चल तो सही/ तुम बोलना तो सही।

प्रार्थना का अर्थबोधक क्रिया-पद : - आप मुझ पर कृपा कीजिए । आप उस पर कृपा कीजिएगा ।

आप इधर से चलिए । (आदर का अर्थबोधक क्रिया-पद) ।

अनुमतिवाचक प्रश्न का अर्थबोधक क्रिया-पद : - क्या मैं चलूँ ? हम लोग यहाँ बैठे ?

(५) वाक्य मे 'सकेतार्थ' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'सकेतार्थ का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो सामान्य संकेतार्थ काल, अपूर्ण संकेतार्थ काल या पूर्ण संकेतार्थ काल का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, वह गीत गाता तो अच्छा होता । वह गीत गाता होता तो ठीक होता । उसने गीत गाया होता तो मजा आता । (यहाँ सकेतार्थक वाक्य में कार्यकारण पर आधारित दो घटनाओं की असिद्धि का अर्थबोधक क्रिया-पद हैं । ऐसे सकेतार्थक वाक्य मे 'यदि . . . तो, 'अगर. . तो, 'जो .. . .तो' नित्यसंबंधी समुच्चयबोदक आते हैं और वाक्य अपने आप 'मिश्र वाक्य' बन जाता है ।)

पूर्व शर्त का अर्थबोधक क्रिया-पद : - यदि मै जाता, तो काम बनता । यदि मैं ऐसा करता होता, तो अब तक धनी हो जाता । यदि तुमने कमाया होता, तो आज कितना अच्छा होता ।

(ई) पुरूष, लिंग और वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद

वाक्य मे क्रिया-पद पुरूष, लिंग और वचन का अर्थबोधक पद इस प्रकार बना रहता है -

(१) उत्तम पुरूष, पुल्लिंग, एक वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद . - मैं चलता हूँ/ चला/चलूँगा ।

(२) उत्तम पुरूष, स्त्रीलिंग, एक वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद :- मैं चलती हूँ/ चली/चलूँगी ।

(३) उत्तम पुरूष, पुल्लिंग, बहुवचन का अर्थबोधक क्रिया-पद : हम चलते हैं/ चले/ चलेगे ।

(४) उत्तम पुरूष स्त्रीलिंग, बहुवचन का अर्थबोधक क्रिया-पद : - हम चलती हैं/ चलीं/ चलेगी ।

(५) मध्यम पुरूष पुल्लिंग, एक वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद : - तू चलता है/ चला/चलेगा

(६) मध्यम पुरूष स्त्रीलिंग, एक वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद :- तू चलती है/ चली/चलेगी '

७ मध्यम पुरूष पुल्लिग ९ का अर्थबोधक क्रिया पद तुम चलते हो/

(९) अन्य पुरूष, पुल्लिग, एक वचन अर्थबोधक क्रिया-पद : - वह चलता है/चला/ चलेगा ।

(१०) अन्य पुरूष, स्त्रीलिग एक वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद : - वह चलती है/ चली/चलेगी ।

(११) अन्य पुरूष, स्त्रीलिंग बहु वचन का अर्थबोधक क्रिया-पद : - वे चलते है/ चले/चलेंगे ।

(१२) अन्य पुरूष, स्त्रीलिंग, बहुवचन का अर्थबोधक क्रिया-पद :- वे चलती है/ चलीं/ चलेंगी ।

वास्तविकता यह है कि ऊपर जिन १७ प्रकारों के कालों को और उनके अर्थबोधक क्रिया-पदों को दिखाया गया है, उनको ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलता है कि उपर्युक्त प्रत्येक काल के संदर्भ में क्रिया-पद मै, हम, तू, तुम, वह वे आदि सर्वनामों तथा संज्ञाओं के उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष, पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एक वचन या बहुवचन का अर्थबोधक पद बना ही रहता है ।

(उ) प्रयोग का अर्थबोधक क्रिया-पद

(१) वाक्य में 'कर्तरि प्रयोग' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'कर्तरि प्रयोग का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो वाक्य के अप्रत्यय कर्ता के पुरूष, लिंग और वचन के अनुरूप होता है । जैसे, वह चलता है । वह चला । वह चलेगा । मैं पुस्तक पढ़ता हूँ/ पढती हूँ । हम चलते है/ चलती हैं । इन सभी वाक्यों में प्रत्येक क्रिया-पद अपने-अपने अप्रत्यय कर्ता के पुरूष, लिग और वचन के अनुरूप आकर 'कर्तरि प्रयोग का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(२) वाक्य में 'कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो सप्रत्यय होता है । जैसे, मैंने/हमने/ तूने/उसने/लड़के ने पुस्तक पढ़ी/ ग्रंथ पढ़ा । मुझको/हमको/ तुझको/उसको/लड़के को पुस्तक मिली/ग्रंथ मिला ।

यहाँ पढ़ी, पढ़ा, मिली या मिला क्रिया-पद अपने सप्रत्यय कर्ता के बदले अप्रत्यय कर्म के पुरूष, लिंग और वचन के अनुरूप आकर 'कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग का अर्थबोधक पद' बन गया है ।

(३) वाक्य में 'कर्मणि प्रयोग' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'कर्मणि प्रयोग का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो कर्तारहति स्थिति में अप्रत्यय कर्म के पुरूष, लिग और वचन के अनुरूप होता है । जैसे, पुस्तक पढ़ी गयी । ग्रंथ पढ़ा गया । घोड़े खरीदे गये।

यहाँ पढी गयी, पढ़ा गया या खरीदे गये क्रिया-पद अपने अप्रत्यय कर्म के पुरूष, लिग और वचन में आकर 'कर्मणि प्रयोग का अर्थबोधक पद' बन गया है ।

(४) वाक्य में 'कर्मवाच्य भावे प्रयोग' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'कर्मवाच्य भावे प्रयोग का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो कर्तारहित स्थिति में सप्रत्यय कर्म के पुरूष, लिग और वचन के अनुरूप आता है । जैसे, रोटी को खाया जाता है । पानी को पिया जाता है । घोड़ों को खरीदा जाता है ।

(५) वाक्य मे 'कर्तृवाच्य भावे प्रयोग' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'कर्तृवाच्य भावे प्रयोग का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो सप्रत्यय कर्ता या सप्रत्यय कर्म के पुरुष लिंग और वचन के अनुरूप आने के बदले अन्य पुरुष, पुल्लिंग और एकवचन के अनुरूप आता है । जैसे, शिकारी ने शेर को मारा । राहुल ने दोस्तों को बुलाया । लड़कियो ने लड़कों को मूर्ख बनाया ।

(६) वाक्य में 'भावे प्रयोग' को सूचित करने वाला क्रिया-पद' भावे प्रयोग का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो कर्तारहित तथा कर्मरहित स्थिति में भाव के अनुकूल केवल अन्य पुरुष, पुल्लिंग और एक वचन में होता है । जैसे, पढा नहीं जाता । चला नही जाता ।

(ऊ) कृदन्त का अर्थबोधक क्रिया-पद

हिन्दी भाषा मे 'कृदंत' (कृत्‌अंत) अर्थात् धातु (मूल क्रिया-शब्द) के अंत मे जुड़ने वाले प्रत्यय के आधार पर क्रिया-पद विशिष्ट काल का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे,

(१) 'त्' कृदन्त के योग से क्रिया-पद 'वर्तमान काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, तल्‌त्= चलल् = वह चलता है/ चलती है ।

(२) '०' (शून्य) कृदन्त के योग से क्रिया-पद 'भूतकाल का अर्थबोधक पद' बना. रहता है । जैसे, चल्०=चल् = वह चला/चली । वे चले/चलीं ।

(३) 'ग्' कृदन्त के योग से क्रिया-पद 'भविष्य काल का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे,चल्ग = वह चलेगा/चलेगी/वे चलेंगे/ चलेंगी ।

(ए) पक्ष का अर्थबोधक क्रिया-पद

पक्ष के रूप में क्रिया-पद क्रिया के काल की अपूर्णता या पूर्णता का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे,

(१) क्रिया के काल के 'नित्य अपूर्ण पक्ष' को सूचित करने वाला क्रिया -पद 'त्' चिन्हक से युक्त होकर 'क्रिया के काल की नित्य अपूर्णता का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो वर्तमानकालिक कृदंत से बने हुए कालों का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, वह चलता । वह चलता है/चलता था/ चलता हो/चलता होगा/चलता होता।

(२) क्रिया के काल के 'सातत्य अपूर्ण पक्ष' को सूचित करने वाला क्रिया-पद 'रह' चिन्हक से युक्त होकर 'क्रिया के काल की सातत्य अपूर्णता का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, वह चल रहा है/चल रही है । वे चल रहे हैं । वह चल रहा था/चली रही थी। वे चल रहे थे । वह चल रहा हो । वे चल रहे हों/चल रही हों/ वह चल रहा होगा / वह चल रहा होता / वे चल रहे होंगे/चल रही होंगी/ चल रहे होते/चल रही होतीं ।

(३) क्रिया के काल के 'पूर्ण पक्ष' को सूचित करने वाला क्रिया-पद '०' (शून्य) चिन्हक से युक्त होकर 'क्रिया के काल की पूर्णता का अर्थबोधक पद' बना रहता है, जो भूतकालिक कृदन्त (=शून्य) से बने हुए कालो का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, वह चला/चली/चला था/चली थी । वे चले/चलीं/चले थे/चली थीं ।

इस प्रकार वाक्य मे एक ही क्रिया-पद वाच्य काल अर्थ पुरुष लिंग वचन प्रयोग कृदन्त और पक्ष का अर्थबोधक पद बना रहता है जैसे लड़का/वह चला

इस वाक्य मे 'चला' यह क्रिया-पद कर्तृवाच्य, सामान्य भूतकाल, निश्चयार्थ, अन्य पुरूष, पुल्लिंग, एक वचन, कर्तरि प्रयोग, भूतकालिक कृदन्त और पूर्ण पक्ष का अर्थबोधक पद है ।

११. क्रियाविशेषण-शब्द की व्याकरणिक अर्थबोधकला

वाक्य मे क्रियाविशेषण-शब्द क्रिया की विभिन्न विशेषताओं का अर्थबोधक पद बना रहता है ।

(१) वाक्य में क्रिया की 'स्थानसंबधी विशेषता' को सूचित करने वाला क्रियाविशेषण स्थानवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, लडके मैदान मे खेलेंगे। 'इस वाक्य मे 'मैदान मे' यह क्रिया की स्थानसंबंधी विशेषता का अर्थबोधक क्रियाविशेषण पद है, जिससे अर्थबोध होता है कि लड़कों के खेलने की क्रिया का स्थान मैदान ही है ।

(२) वाक्य में क्रिया की 'कालसंबंधी विशेषता' को सूचित करने वाला क्रियाविशेषण 'कालवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, 'वह कल आया है । यहाँ 'कल' यह क्रिया की कालसबंधी विशेषता का अर्थबोधक क्रियाविशेषण पद है, जिससे अर्थबोध होता है कि उसकी आने की क्रिया 'कल' हुई है ।

(३) वाक्य में क्रिया की 'रीतीसंबधी विशेषता' को सूचति करने वाला क्रियाविशेषण 'रीतिवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, 'लड़की धीरे-धीरे चली।' यहां 'धीरे-धीरे' यह क्रिया की रीति संबधी विशेषता का अर्थबोधक क्रियाविशेषण पद है, जिससे अर्थबोध होता है कि लड़की की चलने की क्रिया 'धीरे-धीरे' हुई है ।

(४) वाक्य मे क्रिया की 'परिमाण संबंधी विशेषता' को सूचित करने वाला क्रियाविशेषण परिमाणवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, लडका बहुत बोलता है ।' यहाँ 'बहुत' यह क्रिया की परिमाण संबंधी विशेषता का अर्थबोधक क्रियाविशेषण पद है, जिससे अर्थबोध होता है कि लड़के की बोलने की क्रिया 'बहुत' होती है ।

(५) वाक्य में क्रिया की 'कारण सबंधी विशेषता' को सूचित करने वाला क्रिया विशेषण 'कारणवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद' बना रहता है । जैसे, 'मेरे आने से उसे लाभ हुआ ।' यहाँ मेरे आने से 'यह क्रिया की कारण संबंधी विशेषता का अर्थबोधक क्रियाविशेषण पद है, जिससे अर्थबोध होता है कि उसे लाभ होने की क्रिया का कारण 'मेरा आना' है ।

क्रिया विशेषण के रूप मे जो क्रिया का पदात्मक विस्तार होता है, वह विधेयवर्धक या विधेय विस्तार का अर्थबोधक बना रहता है । जैसे,

(१) **स्थानवाचक क्रियाविशेषण** स्थिति और गति इन दो रूपों में विधेयवर्धक का अर्थबोधक पद-बंध बना रहता है - **(क) स्थिति के अर्थ में :-** दिल्ली भारत की राजधानी है । तिल मे तेल है । फूल में सुगंध है । वह चिता में बैठा है । उसका घर सड़क पर है । घर दुकान से आगे है ।

(ख) गति तथा दिशा के अर्थ में :- (ख-१) आरंभ स्थान : - नदी पहाड से निकली है । वह छत पर से गिरा ।

(ख-२) **लक्ष्य स्थान :-** गाडी दिल्ली को गयी । वह घर की तरफ गया । वह आगरा तक पैदल गया ।

(२) **कालवाचक क्रियाविशेषण** तीन रूपो में विधेयवर्धक का अर्थबोधक पदबंध बना रहता है । -

(च) **निश्चित काल के अर्थ में :-** वह कल ही आया । तीन बजे हम चलेगे। छात्र समय पर आया ।

(छ) **अवधि के अर्थ में :-** तू दिन भर काम कर । वह दो घटों मे लौटा। मैं सबेरे से साँझ तक बैठा रहा ।

(ज) **पौनः पुन्य के अर्थ में :-** मैने बार बार वही कहा । हम इतवार के इतवार मिलते हैं ।

(३) **रीतिवाचक क्रियाविशेषण** चार रूपो में विधेयवर्धक का अर्थबोधक पदबंध बना रहता है ।

(ट) **शुद्ध रीति के अर्थ में :-** मैं ध्यान से सुनता हूँ । वह लंगड़ाता हुआ आया। वे सब क्रम से खड़े हैं । (ठ) दशा के अर्थ मे :- लड़का स्वभाव से अच्छा है । वह शरीर से बलवान है ।

(ड) **साधन (कर्तृत्व) के अर्थ में :-** बंदूक से शेर मारा गया । मुझसे (/मेरे द्वारा) उसका काम हुआ ।

(ढ) **साहित्य के अर्थ में : -** वह एक कपड़े से आया । वह मेरे साथ रहेगी। हवा के बिना कोई नही जीता ।

(४) **परिमाणवाचक क्रियाविशेषण** चार रूपो मे विधेयवर्धक का अर्थबोधक पदबध बना रहता - (त) निश्चय के अर्थ में :- वह दस मील चला । वह गाँव चार मील पर है।

(थ) **अनिश्चय के अर्थ में :-** शायद वह कुछ चलेगा । वह थोड़ा-सा बीमार है। वह बहुत दौड़ता है ।

(द) **विनिमय के अर्थ में :-** यह पुस्तक दस रूपये की है ।

(ध) **तुलना के अर्थ में :-** जैसे को तैसा मिला । भारी से भारी काम हुआ। मुझसे बढकर कौन मिलेगा ?

(५) **कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण** चार रूपों मे विधेयवर्धक का अर्थबोधक पदबंध बना रहता -

(प) **हेतु या कारण के अर्थ में :-** मेरे आने से उसे लाभ हुआ। ठंड के कारण वह काँपने लगा । बच्चा बिल्ली से डरता है । मैंने उसे जाने से रोका। इस हेतु से काम हुआ ।

(फ) **कार्य या निमित्त के अर्थ में :-** पीने को पानी मिला । मैं तेरे लिए पुस्तक लाया हूँ । पुस्तक दस रूपये में मिली ।

(ब) **द्रव्य (उत्पादन कारण) के अर्थ में :-** दूध से दही बनता है । धागे से कपडा बनता है ।

(भ) **विरोध के अर्थ में :-** तेरे सामने वह नही टिकेगा । यह पुस्तक उस पुस्तक से भिन्न है ।

वाक्य में क्रिया की विशेषता को सूचित करने के लिए कुछ अन्य प्रकारों के भी क्रियाविशेषण-शब्द महत्वपूर्ण हैं -

(१) अवधारण बोधक क्रियाविशेषण-शब्द :- ही, तो, भी, तक, भर, मात्र, सा। जैसे, फूल बहुत ही सुन्दर हैं । तू जा तो । तुम उठो भी । मैंने पूछा तक नही। चाय प्याली भर पी ली । वह पुस्तक मात्र पढ़ता है । उसने थोड़ा-सा पानी पिया।

(२) पर्याप्ति बोधक क्रियाविशेषण-शब्द :- बस, यथेष्ट, काफी, केवल, सिर्फ फकत, पर्याप्त, ठीक, अस्तु, खैर, अच्छा, चाहे, इति, बराबर इत्यादि ।

(३) निश्चय बोधक क्रियाविशेषण शब्द :- अवश्य,जरूर, बेशक, सचमुच, निस्सदेह सही, वास्तव में, यथार्थ में, यथार्थतः दरअसल, मुख्य करके, निःसंशय, अलबत्ता इत्यादि।

(४) अनिश्चय बोधक क्रियाविशेषण-शब्द :- शायद, कदाचित्, संभवतः, संभवतया, यथासंभव, बहुत करके ।

(५) कारणबोधक क्रियाविशेषण-शब्द :- इसलिए, क्यों काहे को, अतः, अतएव ।

(६) निषेधबोधक क्रियाविशेषण-शब्द :- न, नहीं, मत, कभी नहीं, कही नही।

(७) प्रश्नवाचक क्रियाविशेषण-शब्द :- कहाँ, किधर, कब, कैसे, क्यों, किसलिए किसवास्ते, क्या, कौन इत्यादि ।

(८) अधिकताबोधक क्रियाविशेषण-शब्द :- बहुत, अधिक, निपट, निरा, नितात, बिलकुल इत्यादि ।

(९) न्यूनताबोधक क्रियाविशेषण-शब्द :- कम, थोड़ा, तनिक, कुछ, प्रायः, लगभग करीब-करीब इत्यादि ।

(१०) तुलनाबोधक क्रियाविशेषण-शब्द :- अधिक, ज्यादा, कम, थोड़ा, इतना उतना, कितना इत्यादि ।

(११) श्रेणी बोधक क्रियाविशेषण-शब्द :- क्रम-क्रम से (क्रमशः), बारी-बारी से यथाक्रम इत्यादि ।

(१२) सार्वनामिक क्रियाविशेषण-शब्द : -

सर्वनाम	स्थानवाचक		कालवाचक	परिमाणवाचक	रीतिवाचक	
	स्थितिवाचक	दिशावाचक		तुलनात्मक	प्रकारवाचक	कारणवाचक
यह	यहाँ	इधर	अब	इतना	ऐसे, यों,	इसलिए, इस वास्ते
वह	वहाँ	उधर		उतना	वैसे	इसलिए, उस वास्ते
जो	जहाँ	जिधर	जब	जितना	जैसे, ज्यो	जिसलिए, जिसवास्ते
सो	तहाँ	तिधर	तब	तितना	तैसे, त्यो	
क्या	कहाँ	किधर	कब	कितना	कैसे, क्यों	किसलिए, किसवास्ते

'जो' सबंधवाचक सर्वनाम से बने संबंधवाचक क्रियाविशेषण-शब्द 'जहां, जिधर जब, जितना, जैसे, ज्यों, प्रायः आश्रित उपवाक्य के आरंभ में आते हैं और मुख्य उपवाक्य के आरभ में इनके नित्यसंबंधी क्रियाविशेषण-शब्द 'वहाँ, उधर, तो, उतना, वैसे, त्यों, आते है । ये दोनों इस प्रकार सार्वनामिक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद बने रहते है -

जहाँ . .वहाँ, 'जिधर....उधर,' 'जब ....तो,' 'जितना...उतना,' 'जैसे ....वैसे,' और ज्यो त्यो'।

'कहाँ' स्थानवाचक क्रियाविशेषण दो वाक्यो के आरंभ मे आकर अत्यधिक अंतर का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली ।

'कहीं' स्थानवाचक क्रियाविशेषण कभी (१) अनिश्चित स्थान का अर्थबोधक पद बनता है, जैसे, लड़का कहीं गया है । कभी (२) तुलना के संदर्भ मे 'अतिशय' का अर्थबोधक पद बनता है, जैसे, हम उनसे कहीं सुखी हैं । कभी (३) 'कदाचित्' का अर्थबोधक पद बनता है, जैसे, कहीं वह गाँव गया हो । कभी (४) दो वाक्यों के आरंभ में आकर विरोध का अर्थबोधक पद बनता है,जैसे, कहीं सुख है, कहीं दुख। कहीं उजाला है, कहीं अंधेरा । कभी (५) आश्चर्य' का अर्थबोधक पद बनता है, जैसे, पत्थर कहीं पसीजता है ।

'परे' दिशावाचक क्रियाविशेषण 'तिरस्कार' का भी अर्थबोधक पद बनता है, जैसे 'परे हट ! 'परे हो' 'यहाँ....वहाँ' स्थितिवाचक क्रियाविशेषण या 'इधर...उधर'दिशावाचक क्रियाविशेषण दो अलग अलग वाक्यों के आरंभ में आकर 'विचित्रता' (भिन्नता) का अर्थबोधक पद बनता है, जैसे, यहाँ ठंडी चाय मिलती है, वहाँ गरम चाय मिलती है । इधर मेरा अभ्यास है, उधर घर का काम है ।

'कभी' कालवाचक क्रियाविशेषण 'अनिश्चित' या 'आश्चर्य' या 'तिरस्कार' या 'विरोधदर्शक क्रमागत काल' का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, कभी मैं तुमसे मिलूँगा (अनिश्चित का अर्थबोधक) तूने कभी शेर को देखा है ! (आश्चर्य का अर्थबोधक) । तुम कभी शेर देखोगे ! (तिरस्कार का अर्थबोधक) । कभी धूप होती है, कभी छाया । (विरोधदर्शक क्रमागत काल का अर्थबोधक)

'कब का' अवधिवाचक क्रियाविशेषण 'बहुत समय से' इसका अर्थबोधक पद बनता है, जैसे, वह मुझे कब का पुकार रहा है ।

'कभी-कभी' कालवाचक क्रियाविशेषण 'बीच बीच में' या 'कुछ कुछ दिनों मे' का अर्थबोधक पद बनता है, जैसे, हे दोस्त, कभी-कभी मिलते रहना ।

'कब कब' कालवाचक क्रियाविशेषण 'बहुत कम' का अर्थबोधक पद बना रहता है, जैसे, वह 'कब कब' यहाँ आता है ।

'जैसे तैसे,' 'ज्यों त्यों करके,' 'कैसा भी करके' या 'येन केन प्रकारेण' वाक्य मे किसी न किसी प्रकार से' का अर्थबोधक पदबंध बना रहता है । जैसे, वह जैसे तैसे अभ्यास करता है । वह ज्यों-त्यों करके दूकान चलाता है । लड़का कैसा भी करके (/येन केन प्रकारेण) काम करेगा । 'जैसे जैसे ..तैसे तैसे' या 'ज्यों-ज्यों...त्यों-त्यों'वाक्य मे उत्तरोत्तर बढती-घटती का अर्थबोधक पदबंध बनता है । जैसे, जैसे, जैस वह शेर के निकट जाने लगा, वैसे वैसे वह बहुत डरने लगा । ज्यों-ज्यों अंधेरा छाने लगा, त्यो-त्यो अस्पष्ट दिखाई देने लगा ।

'वैसे तो' वाक्य में' दूसरे विचार से या दूसरे स्वभाव से का अर्थबोधक पदबंध बनता है जैसे, वैसे तो हम सब एक ही है ।

'आप ही'. 'आप ही आप', अपने आप या 'आप से आप' वाक्य में क्रियाविशेषण के रूप मे 'अपने बल से या अपने मन से' का अर्थबोधक पदबंध बनता है । जैसे, बच्चा आप ही चलने लगा । लड़का आप ही आप अभ्यास करता है ।

'होते होते' का प्रयोग 'क्रम क्रम से' का अर्थबोधक पद बंध बनता है , 'बैठे बैठे का प्रयोग 'परिश्रम के बिना' का अर्थबोधक पदबंध बनता है और 'खड़े खड़े' का प्रयोग तुरंत का अर्थबोधक पदबंध बनता है । जैसे, उसका काम होते होते पूरा होगा। मेरा काम बैठे बैठे होगा । मेरी पुस्तक 'उपयोगी हिन्दी व्याकरण' खड़े खडे बिकेगी ।

'इसलिए' कारणवाचक क्रियाविशेषण पहले (मुख्य) वाक्य मे आकर 'कारण' का अर्थबोधक पद बना रहता है और तब उसके साथ का (आश्रित) वाक्य 'कि' समुच्चय-बोधक से आरंभ होता है । जैसे, वह पानी इसलिए पी रहा है कि उसे प्यास लगी है ।

'न' निषेधवाचक क्रियाविशेषण वाक्य मे अंतिम स्थान पर आकर प्रश्न का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, सब कुशलमगल है न? तू पुस्तक पढेगा न ?

'ही' अवधारणबोधक क्रियाविशेषण' अब, कब, जब, तब, सब, तुम, हम' के साथ पूर्णतया मिलकर 'आश्चर्य' का अर्थबोधक पद बनता है । जैसे, अभी, कभी, जभी, तभी सभी, तुम्हीं, हमी ।

'मात्र' अवधारणबोधक क्रियाविशेषण संज्ञा या विशेषण के साथ प्रत्यय के रूप मे आकर 'ही' (केवल) का अर्थबोधक पदबंध बनता है । जैसे, अभ्यास मात्र परीक्षा का आधार है । मुझे एक मात्र पुस्तक मिली है ।

'तक' या 'भर' अवधारणबोधक क्रियाविशेषण संज्ञा या अन्य शब्द के साथ प्रत्यय के रूप में आकर क्रियाविशेषण पदबंध (वाक्यांश) का अर्थबोधक बनता है । जैसे, मैं शाम तक लौटूँगा । मैं वहाँ तक जाऊँगा । वह घर तक पैदल गया । मैंने महीना भर काम किया । वह दिन भर दौडा ।

'जहाँ तक', 'यहाँ तक' या 'कहाँ तक' का प्रयोग 'बहुत परिमाण' का अर्थबोधक पदबंध बनता है । जैसे, जहाँ तक हो सके, पढते रहना । वह बहुत दौड़ता है, यहाँ तक कि वह अपनी जान की भी चिंता नहीं करता । मेरा साथ कहाँ तक दोगी ?

'सा' परिमाणवाचक विशेषण के साथ आकर अवधारणबोधक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद बनता है और आकारान्त होने के कारण विशेष्य के लिंग वचनानुसार (सा/से/सी) बदला रहता है । जैसे, उसने जरा-सी बात की और बहुत-सा धन तथा थोडे-से कपडे पाये ।

स्पष्ट है कि क्रियाविशेषण-शब्द वाक्य में क्रिया की किसी न किसी प्रकार की विशेषता का अर्थबोधक पद बना रहता है । इस प्रकार का क्रियाविशेषण वाक्य में विभिन्न रीतियों से बना रहता है । जैसे,

(१) **क्रियाविशेषण से :-** वह आज आया । लड़की भीतर है । सुंदरी धीरे-धीरे चलती है ।

(२) **क्रियाविशेषणात्मक पदबंध से :-** उसके आने के बाद मै गया । वह कही न कही मिलेगी ।

लडका सिर से पैर तक भीग गया - पुस्तक हाथोहाथ बिक गयी ।

(३) **संज्ञा या संज्ञा पदबंध से :-** मै घर आया । वह सारा दिन सोया । एक समय बात की थी ।

(४) **विधेय विशेषण से :-** फूल कोमल है । राहुल अच्छा खेलता है । वह चुप खड़ा है वह उदास बैठी

(५) **अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत से :** - लडकी बोलते हुए आम खाती है । वह चलते चलते सोचता है ।

(६) **पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत से :** - लड़की लेटे हुए पुस्तक पढती है । मै बैठे बैठे ऊब गया ।

(७) **तात्कालिक कृदंत से :**- उसने आते ही पत्र पढ़ा । वह देखते ही देखते भाग गयी ।

(८) **पूर्वकालिक कृदंत से :** - लड़की ने प्रसन्न होकर बातें कीं । मैं उठकर चलने लगा ।

(९) **स्वतंत्र पदबंध (वाक्यांश) से :** - इससे थकान मिटकर आराम मिलता है । सूर्यास्त होते ही अंधेरा छा गया ।

(१०) **संबंधसूचकांत शब्द से :**- वह बीमारी के मारे चल नही सका । अध्ययन के सिवा उपाय नहीं । सूर्यास्त के पहले यह काम करना है । घर के भीतर लड़की है । छात्र स्कूल के बाहर गया । वह मामा के यहाँ रहता है । उस घर के पीछे मै रहता हूँ । छत के ऊपर बन्दर है । इस स्कूल के आगे मैदान है । मेरी परीक्षा के बाद उसकी परीक्षा है । मैं कल तक पहुँचूँगा । मैं कॉलेज तक पैदल जाता हूँ । एक घंटे के भीतर मुझे पहुँचना है । दिन भर लड़का खेलता है । गाँव भर लड़का भटकता है । छात्र पुस्तको सहित स्कूल गया । सड़क के निकट मेरा घर है । मैं घर की तरफ जा रहा हूँ । लाठी के सहारे वह चलता है । मैं थकान के कारण आराम करता हूँ । मै पुस्तक के लिए यहाँ आया हूँ । तू उसके भरोसे मत रह। आपके नाम आज की शाम । आपके विषय में बहुत सुना है । उसके बिना यह काम नहीं होगा । मैं उसकी जगह आया हूँ । इस फूल के समान वह फूल नहीं है। यह काम तेरे लायक है । फूल का सा कोमल चेहरा सूख गया। मै आपके अनुकूल हूँ । वह मेरे प्रतिकूल नहीं है । मै आपके साथ आऊँगा । आपके सामने (/आगे) वह कुछ भी नही ।

(११) **करण कारक से :**- शिकारी ने बन्दूक से शेर मारा । उसने चाबी से ताला खोला । मुझे इस कारण से लाभ हुआ । उसके आने से बात बन गयी ।

(१२) **संप्रदान कारक से :** - मुझे पीने को पानी मिला । लड़की नहाने को गयी उसे पढ़ने के लिए पुस्तक मिली । उसे काम के वास्ते बुलाया गया ।

(१३) **अपादान कारक से :** - छत से वह गिरा । हिमालय से गंगा निकली है । डाल से पत्ता टूटा । वह दिल्ली से आया है । मै कल से प्रसन्न हूँ । सैनिक अटक से कटक तक गये । किसी से कुछ नहीं मिलेगा । मै तुमसे कुछ नही चाहता। पढ़ाई मे मै सबसे आगे हूँ । (तुलना का अर्थबोधक) । गाडी समय से पहले आ गयी।

(१४) **अधिकरण कारक से :** - लडकी घर मे बैठी है । लडका दूकान पर बैठा हे । पक्षी पेड पर बैठे है । छत पर बंदर है । फूल है सुगंध है । तिल में तेल है । दुख मे ईश्वर का स्मरण सभी करते हैं, परतु सुख मे ईश्वर का स्मरण कोई नही करता । यदि सुख मे भी ईश्वर का स्मरण किया गया, तो दुख होगा ही नही कुछ ध्यान मे/सुनने मे आया। काम करने मे हम आगे है ।

इस प्रकार वाक्य मे क्रिया विशेषण कई रीतियो से बना रहता है, जो क्रिया की किसी न किसी प्रकार की विशेषता का अर्थबोधक पद या पदबंध भी बना रहता है ।

१२. संबंधबोधक शब्द की व्याकरणिक अर्थबोधकता

संबंधबोधक-शब्द संज्ञा (अथवा संज्ञा के समान प्रयुक्त शब्द) के आगे आकर उसका संबंध किसी दूसरे शब्द के साथ करने वाला अर्थबोधक पद या पदबंध बना रहता है । जैसे, 'रोटी के बिना नहीं चलता ।' इस वाक्य मे 'रोटी' संज्ञा का संबंध 'चलता' क्रिया के साथ सूचित करने के लिए (के) 'बिना' शब्द संबंध बोधक का अर्थबोधक पद बना है ।

'लड़का घर तक गया ।' इस वाक्य में 'घर' संज्ञा का संबंध 'गया' क्रिया के साथ सूचित करने के लिए 'तक' शब्द संबंधबोधक का अर्थबोधक पद बन गया है ।

'दिन भर सोना अच्छा नहीं ।' इस वाक्य मे 'दिन' संज्ञा का संबंध 'सोना' क्रियार्थक संज्ञा के साथ सूचित करने के लिए 'भर' शब्द संबंधबोधक का अर्थबोधक पद बना है ।

वाक्य में संबंधबोधक-शब्द के पहले 'के' विभक्ति अथवा 'की' विभक्ति अथवा 'का' विभक्ति अथवा 'से' विभक्ति आती है अथवा कोई विभक्ति नहीं आती है । जैसे,

(१) **कालवाचक संबंधबोधक शब्द** :- के आगे, के पीछे, के बाद, के पश्चात्, के पहले, के पूर्व, के उपरांत, के अनंतर । से पहले, से पूर्व ।,

(२) **स्थानवाचक संबंधबोधक शब्द** : - के पास, के निकट, के करीब, के नजदीक, के समीप, के भीतर, के बाहर, के यहाँ, के ऊपर, के आगे, के सामने, के पीछे, के बाद, के बीच, के सम्मुख, के पहले, से परे, से दूर, से आगे, से पहले, से बाहर, से पूर्व ।

(३) **दिशावाचक संबंधबोधक शब्द** :- के प्रति, के पार, के आर पार, के आस पास, की ओर, की तरफ ।

(४) **साधनवाचक संबंधबोधक शब्द** :- के द्वारा, के हाथ, के बल, के सहारे, की जरिए, की जबानी, की मारफत ।

(५) **हेतुवाचक संबंधबोधक शब्द** : - के हेतु, के कारण, के निमित्त, के मारे, के लिए, के वास्ते, की खातिर, की बदौलत, की सबब ।

(६) **विषयवाचक संबंधबोधक शब्द** : - के भरोसे, के नाम, के विषय, के लेखे, की जान ।

(७) व्यतिरेक (अभाव) वाचक **संबंधबोधक शब्द** : - के सिवा, के सिवाय, के बिना, के बगैर, के अतिरिक्त, के अलावा, से रहित ।

(८) विनिमयवाचक **संबंधबोधक शब्द** :- के बदले, के एवज, की जगह।

(९) सादृश्यवाचक **संबंधबोधक शब्द** : - के समान, के सदृश्य, के सम, के अनुरूप, के अनुकूल, के बराबर, के तुल्य, के योग्य, के लायक, के अनुसार, के मुताबिक की तरह, की भाँति, की नाई, का सरीखा, की सरीखी, के सरीखे, का ऐसा, की ऐसी, के ऐसे, का जैसा, की जैसी, के जैसे, का सा, की सो, के से ।

(१०) विरोधवाचक **संबंधबोधक शब्द** : - के विरुद्ध, के खिलाफ, के उल्टा, के विपरीत, के प्रतिकूल ।

(११) सहचारवाचक **संबंधबोधक शब्द** :- के संग, के साथ, के अधीन, के स्वाधीन के वश समेत सहित पूर्वक ।

(१२) **संग्रहवाचक संबंधबोधक शब्द :** - तक, लौं, पर्यंत, भर, मात्र ।

(१३) **तुलनावाचक संबंधबोधक शब्द :** - के आगे, के सामने, की अपेक्षा।

सा, ऐसा, जैसा, सरीखा' इन आकारान्त सादृश्यवाचक संबंधबोधको का रूप विशेष्य के लिग-वचन के अनुसार बदलता है । जैसे, फूल का सा कोमल मुख है । फूल की सी नाजुक लड़की है । फूल के से सुकुमार बच्चे हैं ।

कुछ सम्बन्धबोधक अपने पूर्व 'से' विभक्ति के योग से तुलना का भी अर्थबोधक पद बनते हैं । जैसे, वह पढाई में सबसे आगे/सबसे पीछे है/ गाड़ी समय से पहले/समय से पूर्व आ गयी ।

वाक्य में कभी 'पास' अथवा 'यहाँ' का लोप होता है और केवल 'के' 'संबंधकार की विभक्ति से इनका अधिकार का अर्थ सूचित होता है । जैसे, उनके एक अच्छा लड़का है। तुम्हारे बहिन होगी । उसके बहुत धन है । इस प्रकार संबंधबोधक भी संबंध सूचकात क्रियाविशेषण ही बना रहता है ।

१३. समुच्चयबोधक शब्द की व्याकरणिक अर्थबोधकता

मुख्य रूप से दो वाक्यों को जोड़ने वाले समुच्चयबोधक शब्द उन दो वाक्यो मे किसी न किसी प्रकार के संबंध का अर्थबोधक पद बने रहते हैं । चार प्रकार के समुच्चयबोधक शब्द 'संयुक्त वाक्य में' मुख्य वाक्यों को जोड़कर 'समानाधिकरण संबंध' का अर्थबोधक पद बने रहते है । अन्य चार प्रकार के समुच्चयबोधक शब्द 'मिश्र वाक्य में' एक मुख्य उपवाक्य के साथ आश्रित उपवाक्य या आश्रित उपवाक्यों को जोड़कर 'व्यधिकरण सबध' का अर्थबोधक पद बने रहते हैं ।

(अ) 'समानाधिकरण संबंध के अर्थबोधक पद बनने वाले समुच्चयबोधक शब्द 'सयुक्त वाक्य' में महत्व का कार्य करते है । जैसे,

(क) मुख्य रूप से संयुक्त वाक्य में 'संयोजनरूपी समानाधिकरण संबंध' को सूचित करने के लिए दो या दो से अधिक मुख्य वाक्यों को जोड़ने वाले शब्द 'संयोजक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद' बने रहते हैं । जैसे, 'और, व, तथा, एवं, भी' ये सभी संयुक्त वाक्य मे प्रायः संयोजक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बने रहते हैं, जिनसे अर्थ की दृष्टि से मुख्य वाक्यो का महत्वपूर्ण आपसी संबंध व्यक्त हो जाता है । जैसे, लडके ने रोटी खायी और पानी पिया । वह आयी, बैठ गयी, व मेरे साथ बातें करने लगी । मैं नाटक पढूंगा तथा (/एव) उपन्यास पढूँगा। । तुम आयी,बहार भी आयी । (वाक्य में शब्दो या वाक्यांशों को भी जोडने का काम संयोजक समुच्चयबोधक से होता है, जैसे, सुनीत और (/तथा/एवं/व) राहुल गायेंगे। उज्ज्वल तथा राहुल खेलते हैं । 'भी' सयोजक समुच्चयबोधक दो मुख्य वाक्यो में कुछ सादृश्यात्मक संबंध का अर्थबोधक पद बन जाता है, जैसे, वह गाना गाती है, मैं भी गाना गाऊँगा । कभी पहला मुख्य वाक्य लुप्त रहता है, और अगला वाक्य 'भी' के साथ आकर पहले वाक्य के साथ 'सादृश्यात्मक संबंधी 'सूचित करता है, जैसे, मैं भी गाना गाऊँगा ।)

(ख) संयुक्त वाक्य में 'विकल्परूपी समानाधिकरण संबंध' को सूचित करने के लिए दो या दो से अधिक मुख्य वाक्यों को जोड़ने वाले शब्द विभाजक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद' बने रहते हैं । जैसे 'अथवा या वा किंवा कि या या चाहे चाहे

न . न, न कि, नहीं तो, क्या-क्या ये सभी संयुक्त वाक्य में प्रायः विभाजक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बने रहते है, जिनसे किसी एक वाक्य या दोनो वाक्यों के त्याग का अर्थ व्यक्त होता है । जैसे,

(१) मैं गाना गाऊँगा अथवा (/या/वा/किंवा) चुप रहूँगा । (यहाँ अथवा/या/वा/किंवा विभाजक समुच्चयबोधक एक मुक्य वाक्य के स्वीकार का और दूसरे मुख्य वाक्य के त्याग का अर्थबोधक पद है ।)

(२) मालूम नही, वह सच बोलता है कि झूठ बोलता है । (यहाँ 'कि' भी किसी एक वाक्य के स्वीकार का और किसी एक वाक्य के त्याग का अर्थबोधक पद है ।) (वाक्य मे दो शब्दों या दो वाक्यांशों को भी जोड़ने का काम 'अथवा/या/वा/किंवा से होता है, जैसे, मै दूध अथवा पानी पीऊँगा । आशा या ऊषा गाना गायेगी।)

(३) या तुम जाओ या ठहरो । या गाओ या न गाओ । चाहे पढ़ो, चाहे न पढ़ो । चाहे कुछ खाना, चाहे कुछ पीना । इन वाक्यों मे 'या...या' और 'चाहे...चाहे' ये दोहरे विभाजक समुच्चयबोधक विकल्पसंबंधी अधिक निश्चय का अर्थबोधक पद बन गये हैं । ('चाहे....चाहे' ये दोहरे विभाजक समुच्चयबोधक चाहना 'क्रिया से बने हुए हैं।)

(४) न राम मिला, न माया मिली । वह न कुछ खाता है, न पीता है । न तू जाता, न बात बिगड़ती । इन वाक्यों में 'न....न' ये दोहरे विभाजक समुच्चयबोधक प्रत्येक मुख्य वाक्य के त्याग का अर्थबोधक पद बने है, जिनसे अशक्यता या कार्यकारण का भी अर्थ सूचित होता है ।

(५) मैं मनुष्य हूँ, न कि पशु । तू पढ़ने के लिए यहाँ आया है, न कि खेलने के लिए । इन वाक्यो में 'न कि यह विभाजक समुच्चयबोधक संयुक्त वाक्य मे से दूसरे (अगले) वाक्य के निषेधात्मक स्वरूप का अर्थबोधक पद बना है ।

(६) तू अपना काम कर, नहीं तो तुझे दाम नही मिलेगा । तुम अभ्यास करो नहीं तो तुम नापास हो जाओगे । इन वाक्यों में 'नही तो 'यह संयुक्त क्रियाविशेषण रूपी विभाजक समुच्चयबोधक दो मुख्य वाक्यों के कार्य-कारण संबंध का अर्थबोधक पद बन गया है, जिससे किसी बात के त्याग के फल का भी अर्थ सूचित होता है ।

(७) क्या अपने, क्या पराये, सब एक से होते हैं । क्या स्त्री, क्या पुरूष, समाज की दृष्टि से दोनों महत्वपूर्ण है । इन वाक्यों में 'क्या .. .क्या' ये प्रश्नवाचक सर्वनामरूपी दोहरे विभाजक समुच्चयबोधक दो या अधिक शब्दों का विभाग सूचित करके बाद मे उन सबके 'एकत्रित उल्लेख का अर्थबोधक पद बन गये हैं ।

(ग) संयुक्त वाक्य मे 'विरोधरूपी समानाधिकरण संबध' को सूचित करने के लिए दो या दो से अधिक मुख्य वाक्यो को जोड़ने वाले शब्द 'विरोधसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद' बने रहते हैं ।' जैसे, 'पर परंतु, लेकिन, मगर, किन्तु, बल्कि' ये सब संयुक्त वाक्य में विरोधसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बने रहते हैं ।

(१) प्राण जाय पर वचन न जाय । वह ज्यादा काम करता है, परंतु (/लेकिन/मगर/पर) ज्यादा दाम नही लेता । इन वाक्यों में 'पर/परंतु/लेकिन/मगर' यह विरोधसूचक समुच्चयबोधक पहले वाक्य के निषेध का या पहले वाक्य के अर्थ की मर्यादा का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(२) सुनीत गायक ही नही, किंतु (/अपितु/वरन्/किन्तु) मार्गदर्शक भी है। इन वाक्यों मे किंतु/अपितु/वरन्' यह विरोधसूचक समुच्चयबोधक पहले वाक्य के निषेध का या पहले वाक्य के अर्थ की मर्यादा का अर्थबोधक पद बन गया है ।

(घ) संयुक्त वाक्य में 'परिणामरूपी (फलरूपी) समानाधिकरण संबध' को सूचित करने के लिए दो मुख्य वाक्यों को जोड़ने वाले शब्द 'परिणामसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बने रहते हैं । जैसे, इसलिए, अतएव, अत- सो' ये सब संयुक्त वाक्य मे पहले वाक्य के कारण रूपी स्वरूप का और दूसरे वाक्य के परिणाम रूपी अर्थात् फलरूपी स्वरूप का अर्थबोधक पद बने रहते है ।

मुझे लिखने की आदत है, इसलिए (/अतएव/अतः/सो) लिखते रहता हूँ । इस संयुक्त वाक्य मे क्रियाविशेषण रूपी परिणामसूचक समुच्चयबोधख 'इसलिए/अतएव/अतः/ सो' पहले वाक्य के कारण रूपी स्वरूप का और दूसरे वाक्य के परिणाम रूपी अर्थात् फल रूपी स्वरूप का अर्थबोधक पद बन गया है । ('सो' निश्चयवाचक सर्वनाम होते हुए भी परिणामसूचक समुच्चयबोधक बनता है । परिणामसूचक समुच्चयबोधक के अर्थ में इससे,' 'इस वास्ते' अथवा 'इस कारण' का भी प्रयोग होता है । जैसे, सुनीत, उज्ज्वल और राहुल गाते है, इसलिए/इससे/इस वास्ते/इस कारण हम सुनते हैं । अवधारण के अर्थ के लिए 'इसलिए' का प्रयोग 'इसीलिए' के रूप मे होता है, जैसे, वह काम करता है, इसीलिए दाम पाता है ।)

(आ) 'व्याधिकरण संबंध' के अर्थबोधक पद बनने वाले समुच्चयबोधक शब्द 'मिश्र वाक्य' में महत्त्व का कार्य करते हैं । जैसे,

(च) मिश्र वाक्य मे' कारण रूपी व्यधिकरण संबध' को सूचित करने के लिए एक मुख्य वाक्य पर दूसरे वाक्य को आश्रित बनाने वाले शब्द' क्योंकि, कारण, इसलिए कि, कारणसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बने रहते हैं । जैसे,

(१) वह दौड़ सकता है, क्योंकि उसे दौडना आता है । मैं नहीं गाऊँगा, कारण मेरा गला खराब है । इन मिश्र वाक्यो मे पहले मुक्य वाक्य पर दूसरे वाक्य को आश्रित बनाने का काम क्योकि/कारण' इस कारणसूचक समुच्चयबोधक ने किया है, इसीलिए यह कारणसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बन गया है, जिससे पूर्ववर्ती वाक्य के अर्थ का समर्थन परवर्ती वाक्य मे दिए गये कारण से होता है ।

(२) 'वह बहुत परिश्रमी है, इसलिए कि वह कुछ बनना चाहता है ।' इस मिश्र वाक्य मे पहले मुख्य वाक्य पर दूसरे वाक्य को आश्रित बनाने का काम 'इसलिए कि' इस कारणसूचक समुच्चयबोधक ने किया है, इसीलिए यह कारणसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पदबंध बन गया है, जो परिणामसूचक 'इसलिए' और कारणसूचक 'कि' के योग से बना है ।

(छ) मिश्र वाक्य मे, उद्देश्यरूपी व्यधिकरण संबंध' को सूचित करने के लिए एक मुख्य वाक्य के साथ एक या एक से अधिक आश्रित वाक्यो को जोड़ने वाले शब्द 'कि, जो (जिससे, जिसमें), ताकि, इसलिए कि, उद्देश्यसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बने रहते है । आश्रित वाक्य से पूर्वकथित मुख्य वाक्य के अर्थ का उद्देश्य व्यक्त होता है । जैसे,

(१) मैं बहुत पढना चाहता हूँ कि/जिससे मैं कुछ बन पाऊँगा ।

(२) तू ऐसा काम कर, जो/जिससे/जिसमें तू बड़ा आदमी बनेगा ।

(३) वह अच्छा काम करता है, ताकि/इसलिए के लोग उसका आदर करे ।

(४) वह इसलिए अच्छा रहता है कि लोग उसे भला मनुष्य मानें ।

(कभी पहले मुख्य वाक्य में 'इसलिए' आता है और अगले आश्रित वाक्य के आरभ मे 'कि' आता है । कभी मुख्य वाक्य के पूर्व आश्रित उद्देश्यसूचक वाक्य आता है और उसके आगे 'इसलिए' के साथ मुख्य वाक्य आता, है, जैसे, उसे परीक्षा मे उत्तम यश पाना है इसलिए वह बहुत अभ्यास करता है ।)

(ज) मिश्र वाक्य में 'संकेत (शर्त) रूपी व्यधिकरण संबंध' को सूचित करने के लिए मुख्य वाक्य के साथ एक या एक से अधिक आश्रित वाक्यों को जोड़ने वाले शब्द 'यदि .. तो जो .तो, अगर...तो, कदाचित्....तो, यद्यपि....तथापि, यद्यपि ..परंतु/पर/तो भी, चहे. ..परतु/पर, कि (त्योंही)' संकेतसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बने रहते हैं । जैसे,

(१) 'यदि...तो, जो....तो, अगर ...तो, कदाचित....तो' ये दुहरे संकेतसूचक समुच्चयबोधक अपने नित्यसंबंध का अर्थबोधक पद बने रहते हैं और मिश्र वाक्य में पहले आश्रित वाक्य के आरभ में' यदि/जो/अगर/कदाचित् (क्रियाविशेषण रूपी) पद आता है, जो मुख्य वाक्य को शर्त जैसी घटना का अर्थबोधक बना देता है और अगले मुख्य वाक्य के आरभ में 'तो' (अथवा तो भी) नित्यसंबंधी पद आता है, जो वाक्य को पूर्वकथित शर्त जैसी घटना पर आधारित रहने का अर्थबोधक बना देता है । जैसे, यदि (/अगर/जो/कदाचित्) तुम आते तो हमारा काम बन जाता ।

अगर उसने कहा है, तो भी मैं नहीं मानता ।

(२) 'यद्यपि....तथापि/तो भी/परंतु/पर' ये दुहरे संकेतसूचक समुच्चयबोधक अपने नित्यसंबंध का अर्थबोधक पद बने रहते हैं और 'यद्यपि' से आरंभ होने वाले आश्रित वाक्य तथा 'तथापि/तो भी/परतु/पर' से आरंभ होने वाले मुख्य वाक्य में 'परस्पर विरोध' का भी अर्थबोधक पद बन जाते हैं । जैसे,

यद्यपि देशवासियों को देशभक्त बनना चाहिए, तथापि (/तो भी/परंतु/पर) कुछ लोग देशद्रोही बनते हैं ।

(३) 'चाहे... परन्तु/पर' ये दुहरे संकेतसूचक समुच्चयबोधक अपने नित्य संबंध का अर्थबोधक पद बने रहते हैं और 'चाहे' से आरंभ होने वाले आश्रित वाक्य तथा 'परंतु/पर से आरंभ होने वाले मुख्य वाक्य में 'परस्पर संदेहात्मक विरोध' का भी अर्थबोधक पद बन जाते हैं । जैसे,

तू चाहे चाय पी ले, पर/परंतु तुझे दूध पीने का मजा नहीं मिलेगा ।

तुम चाहे जितना खा सकते हो, परंतु उतना पचाना कठिन होगा ।

(४) 'कि' जब मिश्र वाक्य में संकेतसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बना रहता है, तब वह मुख्य वाक्य और आश्रित वाक्य के बीच में 'त्योंही' का अर्थबोधक पद बन जाता है । कभी 'कि' के साथ उसका समानार्थी वाक्यांश 'इतने मे आता है । जैसे,

मै गाने लगता हूँ कि (=त्योंही) लोग सुनने लगते है ।

मैं बाहर निकला ही था कि इतने में वर्षा होने लगी

(झ) मिश्र वाक्य में 'स्वरूप (स्पष्टीकरण) रूपी व्यधिकरण संबंध को सूचित करने के लिए मुख्य वाक्य के साथ एक या एक से अधिक आश्रित वाक्यों को जोड़ने वाले शब्द 'कि, अर्थात्, याने, उर्फ, ,मानो' स्वरूपसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बने रहते है। जैसे,

(१) 'कि' जब मिश्र वाक्य मे स्वरूपसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बना रहता है, तब वह मुख्य वाक्य पर आश्रित वाक्य के आरंभ में आकर मुख्य वाक्य की बात के आरंभ का या उस बात की प्रस्तावना (भूमिका) के स्पष्टीकरण का अर्थबोधक पद बन जाता है । जैसे, उसने कहा कि अब मै चलूँगा । मैं नहीं जानता कि वह कहाँ गया है । बात यह है कि हम किसी से नहीं डरते । क्या जाने कि किसी के मन में क्या है । कभी मिश्र वाक्य के मुख्य वाक्य मे 'इतना, ऐसा, यहाँ तक' अथवा किसी विशेषण के आने पर उसका स्वरूप (अर्थ) स्पष्ट करने के लिए 'कि' से आरंभ हुआ आश्रित वाक्य आता है । जैसे, लड़की इतनी पढ़ती है कि वह कुछ बनना चाहती है । वह ऐसा लड़का है कि हमेशा काम में लगा रहता है । वह यहां तक पढता है कि उसे भूख का भी खयाल नहीं रहता। समय बड़ा बलवान होता है कि उसके आगे कोई नहीं टिकता । वह कैसी बात करता है कि उसकी बात कोई भी समझ नहीं पाता।

(कभी 'यहाँ तक' और 'कि' समुच्चयबोधक वाक्यांश के रूप में साथ-साथ आकर मिश्र वाक्य में वाक्यों या शब्दों को जोड़ने वाला अर्थबोधक पदबंध बना रहता है । जैसे सुनीत अच्छा गाता है, यहाँ तक कि लोग उसके गाने की तारीफ करते हैं । उपन्यास, कहानी, यहाँ तक कि नाटक भी कथासाहित्य ही है ।

कभी स्वरूपसूचक समुच्चयबोधक 'कि' के अर्थ में 'जो' आता है, जैसे, वह ऐसा लडका है, जो (=कि) हमेशा काम में लगा रहता है ।

जब आश्रित वाक्य मुख्य वाक्य के पूर्व आता है, तब स्वरूपसूचक समुच्चयबोधक कि' के अर्थ में पूर्वकथित आश्रित वाक्य का कोई समानाधिकरण शब्द आता है । जैसे ज्ञानराज उत्कृष्ट वक्ता है यह सभी जानते हैं । लता घर मे ही है यह मैं जानता हूँ । सुनीत, उज्ज्वल, राहुल तीनो भाई सुशील हैं यह महत्वपूर्ण बात है ।)

(२) 'मिश्र वाक्य में जब अर्थात याने, स्वरूपसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बना रहता है तब वह मुख्य वाक्य के अर्थ को स्पष्ट करने वाले वाक्य का अर्थबोधक बन जाता है । जैसे, मोहन राकेश का 'लहरों के राजहंस' नाटक उत्कृष्ट है, अर्थात्/याने वह गद्य में लिखा गया एक उत्कृष्ट कथाकाव्य है ।

(वाक्य में शब्द के स्पष्टीकरण के अर्थ में भी अर्थात्/याने/उर्फ का प्रयोग होता है जैसे, ज्ञानराज अर्थात् मेरे गुरू आये है । मुझे रोटी यानी भूख मिटाने का एक साधन चाहिए । वह याने मेरा मित्र आया है । लतिका उर्फलता बहुत गुणी है।

(३) मिश्र वाक्य में जब 'मानो' ('मानना' क्रिया का विधिकाल का एक रूप) स्वरूपसूचक समुच्चयबोधक का अर्थबोधक पद बना रहता है, तब मुख्य वाक्य में ऐसा/ऐसे/ऐसी सार्वनामिक विशेषण आता है और उत्प्रेक्षा अलंकार के रूप में उसके स्पष्टीकरण के लिए 'मानो' से आरंभ हुआ आश्रित वाक्य आता है । जैसे, वह लड़का ऐसा दौडता है, मानो वह हवा से बाते करता हो । वह लड़की ऐसी सुन्दर है मानो प्रत्यक्ष सुन्दरता मूर्त हुई हो

१४. विस्मयादिबोधक शब्द की भावात्मक अर्थबोधकता

वाक्य में विस्मयादिबोधक शब्द विस्मय (आश्चर्य), हर्ष, शोक, तिरस्कार, क्रोध स्वीकार, अनुमोदन, आशीर्वाद, सबोधन या किसी भी प्रकार के भाव की तीव्रता का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे,

(१) अरे ! क्या सुन्दर चित्र है ! (विस्मय की तीव्रता का अर्थबोधक पद) ।

(२) वाह ! तुमने अच्छा काम किया ! (हर्ष की तीव्रता का अर्थबोधक पद)।

(३) हाय ! यह क्या हुआ ! (शोक अर्थात् दुख की तीव्रता का अर्थबोधक पद।

(४) छिः ! कैसी बात तू करता है ! (तिरस्कार की तीव्रता का अर्थबोधक पद)।

(५) जी हाँ ! मै आऊँगा ! (स्वीकार की तीव्रता का अर्थबोधक पद) ।

(६) ठीक ठीक ! आपने अच्छा किया ! (अनुमोदन की तीव्रता का अर्थबोधक पद)।

(७) जय हो ! बन्धु, जय हो ! (आशीर्वाद की तीव्रता का अर्थबोधक पद)।

वाक्य मे विभिन्न शब्द-भेदों से भी विस्मयादिबोधक पद बने रहते हैं । जैसे,

(प) संज्ञा से बनने वाले विस्मयादिबोधक पदः- हे भगवान ! हे राम ! बाप रे! शाबास ! आदि

(फ) सर्वनाम से बनने वाले विस्मयादिबोधक पद :- क्या !

(ब) विशेषण से बनने वाले विस्मयादिबोधख पदः- अच्छा ! भला ! ठीक ! सच! धन्य ! खूब ! आदि

(भ) क्रिया से बनने वाले विस्मयादिबोधक पद :- ले ! लो ! हट ! चल चल! चुप! जियो ! आदि

(म) क्रियाविशेषण से बनने वाले विस्मयादिबोधख पद : - दुर ! दुर दुर ! क्यो! अवश्य ! आदि

(य) वाक्यांश (पदबध) से बनने वाले विस्मयादिबोधक पद :- बहुत अच्छा! क्या कहने !

धन्य मित्र ! धन्यवाद ! दइया रे ! बाप रे ! छिः छिः ! दुर दुर ! जी हॉ ! हाँ हाँ! ठीक ठीक ! आदि

(र) वाक्य से बनने वाले विस्मयादिबोधक पद सयोग :- जय हो ! क्या बात है ! क्या करे ! ठीक है ! न जाने ! क्यों न हो ! सर्वनाश हो गया ! आदि

(ल) संबोधनबोधक से बनने वाले विस्मयादिबोधक पद :- अरे ! अरी ! रे! री! हे! ऐ ! ए ! ओ ! हो ! अजी ! आदि ।

इन विस्मयादिबोधक पदो में से प्रायः

'अरे ! वाह ! सच ! ऐ ! क्या ! है ! ओहो ! विस्मय की तीव्रता का अर्थबोधक पद है

'वाह ! वाह वा ! आहा ! शाबास ! धन्यवाद ! जय ! जियो ! जयति !' हर्ष की तीव्रता का अर्थबोधक पद है ;

'आह ! ओह ! हा ! हाय ! दइया रे ! बाप रे !' शोक की तीव्रता का अर्थबोधक पद है ,

छि., छि. छि. ! दुर ! दुर दुर ! हट ! धत् ! धिक् ! चुप ! अरे !' तिरस्कार (क्रोध) की तीव्रता का अर्थबोधक पद हैं ,

'ठीक ! अच्छा ! बहुत अच्छा ! हाँ ! जी हाँ ! हाँ ! हाँ ! जी !' स्वीकार की तीव्रता का अर्थबोधक पद है;

'हाँ हाँ ! ठीक ठीक ! अच्छा ! भला ! अवश्य ! जरूर !' अनुमोदन की तीव्रता का अर्थबोधक पद है ,

'जय हो ! जियो !' आशीर्वाद की तीव्रता का अर्थबोधक पद है ,

'अरे ! अरी ! रे ! री ! हे ! ऐ ! ए ! ओ ! अजी ! हो ! अहो ! लो !' संबोधन की तीव्रता का अर्थबोधक पद हैं ।

यहां तक जो विवेचन हुआ है, उससे स्पष्ट होता है कि संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण क्रिया, क्रियाविशेषण, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक ये सभी शब्द व्याकरण के आधार पर क्रमानुसार संज्ञा-पद, सर्वनाम-पद, विशेषण-पद, क्रिया-पद, क्रियाविशेषण-पद, सम्बन्धबोधक-पद, समुच्चयबोधक पद और विस्मयादिबोधक पद बनकर अपने मूल अर्थ के साथ व्याकरणिक अर्थ का भी बोधक बनकर मनुष्य के भाषा-व्यवहार में प्रयुक्त होते रहते हैं । जैसे, 'पानी मे' (कमल खिला है !) संज्ञा-पद से मूल अर्थ के रूप में 'जल' इस तरल द्रव- विशेष का अर्थबोध होता ही है और उसके अधिकरण कारक का भी अर्थबोध होता है, जिससे (कमल के खिलने के आधार के रूप में) स्थान-विशेष को सूचित करने वाले क्रियाविशेषण का अर्थबोध हो जाता है।

इस प्रकार मनुष्य के भाषा-व्यवहार में शब्द-भेदों की मूल अर्थबोधकता के साथ - साथ शब्द भेदों की व्याकरणिक अर्थबोधकता भी (पद के रूप मे) महत्वपूर्ण होती है ।

१५. सामासिक शब्द की विशेष अर्थबोधकता

'समास' अर्थात् मेल के आधार पर कुछ शब्द अपने को जोड़ने वाले शब्दों का लोप करके एक शब्द के रूप मे जुड़े रहते है । शब्दो के इस जुडे रूप को ही 'सामासिक शब्द' या 'समस्त पद' कहा जाता है ।

वाक्य मे सामासिक शब्द अर्थात् समस्त पद विशिष्ट-विशिष्ट रीति से अर्थबोधक पद बना रहता है । इसलिए समास के आधार पर सामासिक शब्द की विशिष्ट अर्थबोधकता बनी रहती है । जैसे,

(१) 'अव्ययीभाव समास' के आधार पर सामासिक शब्द क्रियाविशेषण अव्यय (=अविकारी शब्द) का अर्थबोधक पद बना रहता है । ऐसे सामासिक शब्द में जो क्रियाविशेषण अव्यय क रूप मे पहला शब्द होता है वह क्रियाविशेषण का अर्थबोध करने की दृष्टि से अधिक महत्त्व का होता है ।

अव्यय	अव्ययीभाव का सामासिक शब्द	क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद
यथा (=अनुसार)	यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार)	तू मेरा काम यथाशक्ति कर ।
	यथा संभव (संभव के अनुसार)	मै मेरा काम यथासंभव करूँगा।
	यथाक्रम (क्रम के अनुसार)	तुम यथाक्रम आना ।

आ (=तक)	आमरण (मृत्यु आने तक)	आप आमरण/आजीवन/
	आजीवन (जीवन जीने तक)	आजन्म/यावज्जीवन सीखते
	आजन्म (जन्म है तब तक)	रहिए ।
यावत् (=तक)	यावज्जीव (जीवन जीने तक)	
वि (=बिना)	व्यर्थ (अर्थ के बिना)	तेरी बातें व्यर्थ है ।
प्रति/हर(=प्रत्येक)	प्रतिदिन/हर रोज	मैं प्रतिदिन/हररोज आऊँगा ।
	हर घड़ी/ हर पल	मुझे हर घड़ी/
		हर पल पढ़ना है ।
सम (-सामने)	समक्ष (आँखों के सामने)	मैं समक्ष मिलूँगा ।
नि/निः (=निषेध)	निडर/निर्भय (डर/भय नहीं है)	मैं बहुत निडर/निर्भय हूँ ।

अव्ययीभाव समास के रूप में संज्ञा की द्विरुक्ति या अव्यय की द्विरुक्ति भी सामासिक शब्द बन जाता है और क्रियाविशेषण का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, संज्ञा की द्विरुक्ति : घर घर, हाथों हाथ, दिनों दिन, रातोंरात, पल पल, घड़ी घड़ी आदि ।

अव्यय की द्विरुक्ति : धीरे-धीरे, जल्दी-जल्दी, धड़ाधड़, बीचोबीच आदि ।

(फ) तत्पुरूष समास के आधार पर जो सामासिक शब्द बनता है उसमें अर्थबोधकता की दृष्टि से दूसरे क्रम के शब्द की प्रधानता होती है ।

तत्पुरूष समास का एक भेद 'व्यधिकरण समास है, जिसके सामासिक शब्द में पहला शब्द संज्ञा या संज्ञा के समान प्रयुक्त विशेषण होता है । ऐसे सामासिक शब्द में अर्थबोधकता की दृष्टि से दूसरे क्रम के शब्द की ऐसी प्रधानता होती है, जिसके कारण संपूर्ण सामासिक शब्द विशेषण का तथा विशिष्ट कारक का भी अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, (१) कर्म तत्पुरूष (= कर्म कारक व्यधिकरण तत्पुरूष समास) : स्वर्गप्राप्त (स्वर्ग को प्राप्त) । (२) करण तत्पुरूष (=करण कारक व्यधिकरण तत्पुरूष समास) : प्रकृतिदत्त (प्रकृति से दिया हुआ), ज्ञानराजकृत (ज्ञानराज से/द्वारा कृत), मनमाना (=मन से माना हुआ), भुखमरा (भूख से मरा हुआ), दो गुना/सौ गुना (दो से गुना/सौ से गुना) ।

(३) संप्रदान तत्पुरूष (संप्दान कारक व्यधिकरण तत्पुरुष समास) · देशभक्त (देश के लिए भक्त), राहखर्च (राह के लिए खर्च) ।

(४) अपादान तत्पुरूष (अपादान कारक व्यधिकरण तत्पुरूष समास) = जन्मांध (जन्म से अंधा), पदमुक्त (पद से मुक्त) ।

(५) सम्बन्ध तत्पुरूष (सम्बन्ध कारक व्यधिकरण तत्पुरूष समास) : राजगृह (राजा का घर), जनसभा (जनो की सभा), घुड़दौड़ (घोडों की दौड़) ।

(६) अधिकरण तत्पुरूष (अधिकरण कारक व्यधिकरण तत्पुरूष समास) : शरणागत (शरण में आया हुआ), कविश्रेष्ठ (कवियों में श्रेष्ठ), वनवास (वन में वास), प्रेममगन (प्रेम में मगन), आप बीती(अपने पर बीती) ।

व्यधिकरण समास का एक भेद 'उपपद समास' है, जिसके अनुसार ऐसा सामासिक शब्द बनता है, जिसमें दूसरा पद कृदंत होता है । इस प्रकार का सामासिक शब्द कृदंत से बनी संज्ञा का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, ग्रंथकार, बटमार, चिड़ीमार, सौदागर, लकड़फोड़, घरघुसा, घुड़चढा आदि ।

व्यधिकरण समास का और एक भेद 'नञ् तत्पुरूष समास' है, जिसके अनुसार ऐसा सामासिक शब्द बनता है, जिसमें पहला पद अभावसूचक या निषेधसूचक होता है । इस प्रकार का सामासिक शब्द अभाव या निषेध का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, अधर्म (न धर्म), अन्याय (न न्याय), अनिष्ट (न इष्ट), अज्ञान (न ज्ञान), अनबन, अनचाहा, नापसंद (न पसंद), नालायक (न लायक) आदि ।

तत्पुरूष समास का दूसरा एक मुख्य भेद 'समानाधिकरण तत्पुरूष' अर्थात् 'कर्मधारय' समास है । इससे बना सामसिक शब्द 'विशेष्य-विशेषण 'भाव' या 'उपमानोपमेय भाव' का अर्थबोधक पद बना रहता है ।जैसे,

विशेष्य-विशेषण भाव का अर्थबोधक सामासिक शब्द : महापुरूष, महाकवि, नीलकमल, सुगंध, खुशबू, सुयोग, निराशा, दुकाल आदि ।

उपमानोपमेय भाव का अर्थबोधक सामासिक शब्द : चंद्रमुख, प्राणप्रिय, करकमल, गुरूदेव, पुरूषरत्न, कनकलता आदि ।

समानाधिकरण तत्पुरूष समास का एक उपभेद 'द्विगु समास' है । इससे संख्यावाचक विशेषणवाला पूर्व पद सामासिक शब्द में बना रहता है । इस प्रकार का सामासिक शब्द समुदायवाचक विशेषण का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, त्रिभुवन (तीन भुवनों का समूह), पंचवटी (पाँच वटों का समूह), चौराहा (चार राहों का समाहार), चहारदीवारी, सतसई, दोपहर, पंसेरी आदि ।

समानाधिकरण तत्पुरूष समास अर्थात् कर्मधारय समास का और एक उपभेद 'मध्यमपद लोपी समास' है । इससे बने सामासिक शब्द में ऐसे मध्यम पद का लोप होता है जो पहले पद का सबंध दूसरे पद के साथ सूचित कर देता है । इस प्रकार का सामासिक शब्द प्रायः संज्ञा का अर्थबोधक पद बना रहता है । जैसे, दहीबडा (दही मे डूबा बड़ा), गुडबा (गुड में उबाला आम), बैलगाडी (बैल से चलने वाली गाड़ी), पर्णशाला (पर्णनिर्मित शाला), पवनचक्की, जेबघड़ी, गुड़धानी आदि ।

(ब) 'द्वन्द्व समास' के आधार पर जो सामासिक शब्द बनते हैं, वे तीन रीतियों से अर्थबोधक बने रहते हैं -

(१) इतरेतर द्वन्द्व समास से बने सामासिक शब्दों में 'और' का लोप होता है। जैसे, गाय बैल, बेटा बेटी, नाककान, माँ बाप, सुख सुख, इक्कीस (एक और बीस), दालभात आदि।

(२) समाहार द्वन्द्व समास से बने सामासिक शब्द के साथ 'आदि/इत्यादि' का लोप रहता है । जैसे, कपड़े लत्ते (कपड़े लत्ते आदि), दियाबत्ती (दियाबत्ती इत्यादि), बोलचाल, भलचंगा आदि ।

(३) वैकल्पिक द्वन्द्व समास से बने सामासिक शब्दों में 'अथवा' का लोप रहता है। जैसे, भलाबुरा (भला अथवा बुरा), पाप पुण्य, थोड़ा बहुत आदि ।

(म) बहुब्रीही समास से ऐसा सामासिक शब्द बनता है, जिसके दोनों पद मिलकर किसी संज्ञा की विशेषता सूचित करने वाले 'विशेषण' बने रहते है । जैसे, कमलनेत्र (कमल से नेत्र वाला), इकतारा (एक तारवाला वाद्य), शान्तचित्त (शांत चित्तवाला कोई व्यक्ति), कृतकार्य (जिससे काम किया गया है, ऐसा मनुष्य), निर्विकार (जिसमें से विकार निकल गया है, ऐसा मनुष्य), बारहसिंगा (जिसके बारह सीग है ऐसा पशु)।

१६. सहायक क्रिया-शब्द की विशेष अर्थबोधकता

वाक्य मे संयुक्त क्रिया के रूप मे मुख्य क्रिया के साथ 'सकना', 'चुकना' इन सहायक क्रियाओ के साथ-साथ' पड़ना, होना, चाहिए, लगना, देना, पाना, आना, जाना, रहना करना, चाहना, उठना, बैठना, लेना, डालना' तथा 'बनाना' ये स्वतंत्र रूप में प्रयोग में आने वाली क्रियाएँ भी विशेष अर्थबोधक सहायक क्रियाएं बनी रहती है ।

'पड़ना' सहायक क्रिया संयुक्त क्रिया में आवश्यकता तथा विवशता का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, उसे काम पर जाना पड़ा । लडकी को दौड़ना पड़ा।

'होना, चाहिए' सहायक क्रियाएँ 'कर्तव्य' का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, घंटी बजती है । वहा जाना था । मुझे पढ़ना होगा । गाड़ी को आना चाहिए था । उसे पढ़ना चाहिए ।

'लगना' सहायक क्रिया एकारात क्रियार्थक संज्ञा के साथ 'आरंभ' का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, मै उस लड़की से प्यार करने लगा हूँ । पानी बरसने लगा है। वह अब गाने लगेगा ।

'देना' सहायक क्रिया 'अनुमति' का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, मैं तुझे जाने दूँगा । तू उसे काम पर जाने दे । तुमने दीन को रोटी यहाँ खाने दी ।

'पाना' सहायक क्रिया एकरांत क्रियार्थक संज्ञा के साथ 'अवकाश (फुरसत) का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, मैं वहॉ जाने न पाया । वह बात करने न पाएगा। तू क्यो न जाने पाता ?

'आना, जाना' और 'रहना' सहायक क्रियाएँ नित्यता (नितरंतरा) का अर्थबोधक बनने के लिए मुख्य क्रिया के वर्तमानकालिक कृदंत या पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत के साथ आती है । जैसे, सुनीत गीत गाता जाता रहता है । उज्ञवल पुस्तक पढता आता/ रहता है । राहुल बाते करता आयेगा/जायेगा/रहेगा । लडके खेलते आये/गये/रहे । वह काम किए आता/जाता/रहता है । लड़कियॉ गाना गाये आती/जाती /रहती थीं ।

'जाना' और 'पड़ना' सहायक क्रियाएँ 'तत्परता' का अर्थबोधक बनी रहती है। जैसे, लडका आया जाता है । चिंता के मारे वह मरा जाता था । लडका खेला पड़ता है।

'करना' सहायक क्रिया 'अभ्यास का अर्थबोधक बने रहने के लिए मुख्य क्रिया के आकारांत भूतकालिक रूप के साथ आती है । जैसे, मैं उस लड़की से प्यार किया करता हूँ । हम उसे देखा किए । कर्मचारी अपना अपना काम किया करेंगे ।

'चाहना' सहायक क्रिया 'इच्छा' का अर्थबोधक बने रहने के लिए मुख्य क्रिया के आकारांत भूतकालिक रूप के साथ आती है । जैसे, मैं लडकी को देखा चाहता हूँ । तूने किसको देखा चाह ? वह रोगी मरा चाहेगा । दस बजा चाहते है।

'उठना' सहायक क्रिया 'अचानकता' का अर्थबोधक बने रहने के लिए मुख्य क्रिया के धातुवत् रूप के साथ आती है । जैसे, रास्ते मे लड़का रो उठा । वह लड़की स्कूल मे जोर से चिल्ला उठी ।

'बैठना' सहायक क्रिया 'अचानकता' का अर्थबोधक बने रहने के लिए 'उठना' क्रिया के धातुवत रूप के साथ आती है । जैसे, लड़की नींद में उठ बैठी। सभा मे लोग उठ बैठे । लडका खाना खाते हुए उठ बैठा ।

'बैठना' सहायक क्रिया 'धृष्टता' (अयोग्य साहस) का अर्थबोधक बने रहने के लिए मुख्य क्रिया के धातुवत् रूप के साथ आती है । जैसे, वह कुछ भी कह बैठता है । वह लड़का वहाँ कुछ कर बैठेगा । बच्ची घोड़े पर चढ़ बैठी ।

'चुकना' सहायक क्रिया 'पूर्णता' (समाप्ति) का अर्थबोधक बने रहने के लिए मुख्य क्रिया के धातुवत् रूप के साथ आती है । जैसे, मैं अपना काम कर चुका हूँ। वह लड़की पुस्तक पढ़ चुकी । तू तो सबसे पहले काम कर चुकता है ।

'लेना' सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के धातुवत् रूप के साथ कर्ता को लाभ पहुँचाने वाले व्यापार का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, मैं दूध पी लेता हूँ । तुम मेरी बात समझ लेती हो । उसने खाना खा लिया था ।

'देना' सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के धातुवत् रूप के साथ दूसरे को लाभ पहुंचाने वाले व्यापार का तथा कुछ पूर्णता का भी अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, मैं लड़की को कहानी सुना देता हूँ । तुम मेरा काम कर दोगी ? लड़की ने मुसकुरा दिया। गाड़ी चल दी।

'डालना' सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के धातुवत् रूप के साथ 'उग्रता का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, तू कपड़े फाड़ डालता है । वह तुझे मार डालेगा।

'रहना' सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के धातुवत् रूप के साथ 'काल की सातत्य अपूर्णता' का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, हम बाते कर रहे हैं । वह जा रहा था। वह जा रहा होगा ।

'सकना' सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के धातुवत् रूप के साथ 'शक्ति' (शक्यता) का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, वह पत्र पढ़ सकेगा । लड़की बात कर सकती है ।

'बनना' सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत के साथ 'योग्यता' का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, उस बालक से पत्र पढते नहीं बनता। उससे कुछ करते नहीं बना था ।

'होना, करना, देना' सहायक क्रियाएँ संज्ञा या विशेषण के साथ नामबोधक संयुक्त क्रिया' बनी रहती है । जैसे, काम आरंभ हुआ । बात शुरू होगी । मैं तुझे क्षमा करूँगा। वह मेरी बात स्वीकार करता है ।

'लेना,देना, डालना' अवधारणबोधक सहायक क्रियाएँ मुख्य क्रिया के पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत के साथ 'निश्चय' का अर्थबोधक बनी रहती है । जैसे, मैं यह ग्रंथ लिये लेता हूँ । लड़का अपना काम किये देता था । इस तरह तू मुझे मारे डालती है । मैं आज तुझे कहे देता हूँ ।

'पढना-लिखना', 'खाना-पीना' ऐसी पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ एक जैसी अर्थ वाली बनी रहती है; 'कहना-सुनना', 'आना-जाना' ऐसी पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ विरोधी अर्थवाली बनी रहती हैं और 'खाना-वाना' 'पूछना-ताछना', 'देखना-भालना' ऐसी पुनरुक्त संयुक्त क्रियाएँ सार्थक-निरर्थक बनी रहती है । जैसे, वह कुछ पढ़ता-लिखता है । तू तो खाता-पीता है । मैं कुछ कहता -सुनता था । तू यहाँ सदा आती-जाती थी । तुम कुछ खाओ-वाओ । आपने क्या पूछा-ताछा ?. तुम सब देखना-भालना ।

'जाना' सहायक क्रिया के योग से 'कुचलना, छूना, खोना, खिलाना, छवाना, धोना, झूलाना, सीना, पकडना' आदि सकर्मक क्रियाएँ अकर्मक क्रिया का अर्थबोधक' बनी रहती है । जैसे,

मूल सकर्मक क्रिया रूप या प्रेरणार्थक सकर्मक क्रिया रूप	'जाना' सहायक क्रिया के योग से अकर्मक संयुक्त क्रिया रूप
हाथी ने पौधा कुचला ।	पैर के नीचे पौधा कुचल जायेगा ।
मैं फूल को छूता हूँ ।	मुझसे फूल छू जाता है ।
मैं बार बार रूमाल खोता हूँ ।	मेरा रूमाल खो जाता है ।
लड़की ने फूल को खिलाया ।	फूल खिल गया ।
तूने वहाँ क्या क्या छवाया ?	आकाश में बादल छा जाते हैं ।
वह अपने कपड़े धोता है ।	कपड़े धोये जाते हैं ।
वह कपड़े सीता है ।	कपड़े सीये जायेंगे ।
मैंने लड़की को झूले पर झुलाया ।	लड़की झूले पर झूल गयी ।
मैंने तुमको पकड़ा ।	तू पकड़ी गयी ।

१७. समानाधिकरण की विशेष अर्थबोधकता

किसी पद, पद-बंध या वाक्य की अर्थस्पष्टता के लिए समानाधिकरण विशेष अर्थबोधक बना रहता है । जैसे, पुत्र सुनीत ने गीत गाया । उज्ज्वल और राहुल दोनो भाई क्रिकेट खेलते हैं । पत्नी लतिका का हित देखना, यह ज्ञानराज का कर्तव्य है। मैं यह पुस्तक अर्थात् नाटक पढ़ रहा हूँ । यहाँ पहले वाक्य में 'पुत्र' शब्द (पद) की अर्थस्पष्टता के लिए 'सुनीत' शब्द (पद) समानाधिकरण का अर्थबोधक पद है । दूसरे वाक्य में 'उज्ज्वल और राहुल' पद-बंध की अवधारणात्मक अर्थस्पष्टता के लिए 'दोनो भाई' समानाधिकरण का अर्थबोधक पद-बंध है। तीसरे मिश्र वाक्य में 'पत्नी लतिका का हित देखना' - आश्रित उपवाक्य अवधारणात्मक अर्थस्पष्टता के लिए 'यह' निश्चयात्मक सर्वनाम के साथ आरंभ हुए मुख्य उपवाक्य के समानाधिकरण का अर्थबोधक वाक्य बन गया है। चौथे वाक्य में 'पुस्तक' शब्द (पद) की अर्थस्पष्टता के लिए 'अर्थात्' स्वरूपसूचक समुच्चयबोधक के सहयोग से 'नाटक' शब्द (पद) समानाधिकरण का अर्थबोधक पद बन गया है । दोनो, यह, सब कोई, कुछ आदि ये सभी शब्द समानाधिकरण का अर्थबोधक पद बने रहते हैं । आदि, नाम, नामक, अर्थात्, सरीखा, जैसे, ये शब्द प्राय: दो समानाधिकरण शब्दों (पदो) के बीच मे आते हैं । जैसे, वह आशा नाम की लड़की है। यह मेरा 'गीत गुंजन' नामक कविता संग्रह है । वह गधा जैसा आदमी है । सोना, चाँदी आदि धातु हैं । पदवी तथा दशासूचक शब्द भी समानाधिकरण का अर्थबोधक पद बने रहते हैं । जैसे, भगवान बुद्ध, महात्मा कबीर, महात्मा फुले, महात्मा गांधी, डॉक्टर भीमराव रामजी आंबेडकर ये सब महामानव है। तू तो एक संकट ही है ।

इस प्रकार मनुष्य के भाषा-व्यवहार में कुछ अन्य शब्दों की भी विशेष अर्थबोधकता महत्वपूर्ण होती है ।

१८. वाक्य की व्याकरणिक अर्थबोधकता

मनुष्य-समाज में जो भाषा-व्यवहार होता है, वह तो व्याकरणमान्य वाक्य के रूप मे ही होता है । इसीलिए वाक्य को भाषा की व्याकरणमान्य सहज इकाई माना जाना स्वाभाविक है ।

अर्थपूर्ण शब्दों से जो व्याकरणिक अर्थों को भी व्यक्त करने वाले भिन्न-भिन्न पद बनते हैं, उन्हीं पदों में से आवश्यक पदों की व्याकरणमान्य व्यवस्था से युक्त संयोग से वाक्य बनता है और वह वाक्य विशिष्ट तथा अपेक्षित अर्थ का बोधक बनकर रहता है ।

आवश्यक पदों की व्याकरणमान्य व्यवस्था से युक्त संयोग से बनने वाले वाक्य विभिन्न अर्थों के बोधक इस प्रकार बने रहते हैं -

(१) **विधानार्थ बोधक वाक्य :** - राहुल दौड़ता है । उज्ज्वल ने पत्र पढ़ा। सुनीत पत्र लिखेगा ।

(२) **निषेधार्थ बोधक वाक्य :** - राहुल नहीं दौड़ता । उज्ज्वल ने पत्र नहीं पढ़ा । सुनीत पत्र नहीं लिखेगा ।

(३) **आज्ञार्थ बोधक वाक्य :**- राहुल दौड़ । उज्ज्वल पत्र पढ । सुनीत पत्र लिखा।

(४) **प्रश्नार्थबोधक वाक्य :**- राहुल दौड़ता है ? उज्ज्वल ने पत्र पढ़ा ? सुनीत पत्र लिखेगा ?

(५) **विस्मयार्थबोधक वाक्य :** - राहुल दौडता है ! उज्ज्वल ने पत्र पढ़ा ! सुनीत पत्र लिखेगा !

(६) **सन्देहार्थ बोधक वाक्य :** - शायद राहुल दौड़ता है । उज्ज्वल ने पत्र पढ़ा होगा । कदाचित् सुनीत पत्र लिखेगा ।

(७) **इच्छार्थ बोधक वाक्य :**- राहुल, उज्ज्वल और सुनीत, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें ।

(८) **संकेतार्थबोधक वाक्य :**- यदि राहुल चाहता तो उज्ज्वल और सुनीत भी दौड़ते ।

इस प्रकार चाहे 'सरल वाक्य' अर्थात् 'साधारण वाक्य' हो (जैसे, राहुल दौड़ता है/ उज्ज्वल ने पुस्तक पढ़ी/सुनीत पत्र लिखेगा), चाहे मिश्र वाक्य' हो (जैसे, राहुल ने कहा कि मैं अब दौडूँगा), चाहे 'संयुक्त वाक्य' हो (जैसे, राहुल दौडता है, उज्ज्वल पत्र पढ़ता है और सुनीत पत्र लिखता है) प्रत्येक वाक्य उपर्युक्त अर्थों में से विशिष्ट अर्थ का बोधक बना रहता ही है ।

१८.१. शब्दार्थ, पदार्थ और वाक्यार्थ

वाक्य में व्याकरणमान्य व्यवस्था के आधार पर संयोजित सभी पद अपने अपने मूल शब्द के अर्थ के साथ-साथ अपने अपने व्याकरणिक पदार्थ और वाक्यार्थ के भी बोधक बने रहते हैं । जैसे,

'सुनीत ने लोगों को गाना सुनाया ।'

इस वाक्य मे प्रयुक्त 'सुनीत ने' इस पद में से 'सुनीत' यह शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा-शब्द अर्थात् विशेष नाम के रूप में एक व्यक्ति-विशेष का अर्थबोधक है और 'सुनीत ने' यह पद कर्ताकारक के 'ने' विभक्ति-प्रत्यय के योग से वाक्य के सप्रत्यय कर्ता और अप्रधान उद्देश्य का अर्थबोधक है, क्योंकि इस वाक्य में 'सुनाया' इस क्रिया से 'सुनीत ने' इस सप्रत्यय कर्तासूचक तथा अप्रधान उद्देश्यसूचक पद के विषय में विधान हुआ है ।

'लोगों को' इस पद में से 'लोग' यह शब्द समुदायवाचक संज्ञा-शब्द के रूप मे व्यक्ति-समूह का अर्थबोधक है और साथ ही 'लोगो को' यह पद संप्रदान कारक के 'को'

विभक्ति-प्रत्यय के योग से वाक्य के ऐसे सप्रत्यय गौण कर्म-पद का अर्थबोधक है, जिसके लिए कर्तारूपी 'सुनीत ने' गाना सुनाने की क्रिया की है ।

'गाना' यह पद रूपी मूल शब्द भाववाचक संज्ञा-शब्द के रूप में व्यापार संबधी धर्म-विशेष का अर्थबोधक है और साथ ही यह पद के रूप में कर्मकारक के शून्य विभक्ति-प्रत्यय के योग से वाक्य के ऐसे मुख्य कर्म-पद का अर्थबोधक है जिस पर कर्ता रूपी सुनीत की गाना सुनाने की क्रिया का फल पड़ता है ।

'सुनाया' इस पद में से 'सुन्' यह मूल क्रिया-शब्द (=धातु) के रूप मे सुनने की क्रिया का अर्थबोधक है (तभी तो लोगों ने गाना सुना) और 'सुनाया' इस क्रिया-पद के रूप में (लोगों को गाना सुनाने की) प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया 'सुनाना' (प्रथम प्रेरणार्थक धातु 'सुना') का अर्थबोधक है और साथ ही यह पद 'सुना' इस प्रथम प्रेरणार्थक धातु के साथ सामान्य भूतकाल सूचक, पुल्लिंग सूचक, एक वचन सूचक और अन्य पुरूष सूचक 'आ' (=या) पर प्रत्य के योग से विशिष्ट काल, विशिष्ट लिंग, विशिष्ट वचन, विशिष्ट पुरूष, भाववाच्य, निश्चयार्थ, कर्तृवाच्य भावे प्रयोग और पूर्ण पक्ष का अर्थबोधक क्रिया-पद बन गया है, जिससे 'सुनीत ने' इस सप्रत्यय कर्तारूपी पद के बारे में विशेष विधान हुआ है ।

इस प्रकार वाक्य में व्याकरणमान्य व्यवस्था के आधार पर संयोजित प्रत्येक पद अपने मूल शब्द के अर्थ के साथ-साथ अपने व्याकरणिक पदार्थ का भी बोधक बनकर रहता है । इसके परिणामस्वरूप ही वाक्य में संयोजित सभी पद मिलकर ऐसे विशिष्ट वाक्यार्थ का बोधक बन जाते हैं, जो वक्ता के लिए अपेक्षित होता है । इसका अर्थ यह हुआ कि शब्दार्थ पर पदार्थ आधारित होता है । और पदार्थों पर वाक्यार्थ आधारित होता है । इससे वाक्य अपने आप वाक्यार्थ का बोधक बना रहता है। इसी वास्तविकता के कारण ही उपर्युक्त वाक्य अपने वाक्यार्थ का बोधक इस प्रकार बना है -

(१) सुनीत ने ही गाना सुनाया है ।
(२) सुनीत ने लोगों के लिए ही गाना सुनाया है ।
(३) सुनीत ने गाना ही सुनाया है ।
(४) लोगो ने ही गाना सुना
(५) लोगों ने गाना ही सुना ।

१८-२. सरल वाक्य का अर्थबोधक पद-संयोग

वाक्य के सहज, सरल और स्वाभाविक प्रकार के रूप में 'सरल वाक्य' ही महत्वपूर्ण होता है ,जिसे 'साधारण वाक्य' भी कहा जाता है ।

'सरल वाक्य' मे एक उद्देश्य का और एक विधेय का अर्थबोधक पद-संयोग होता है/ जैसे,

(त) **उद्देश्य का अर्थबोधक कर्ता-पद**	**विधेय का अर्थबोधक क्रिया-पद**
मैं/तू/वह/लड़का (अप्रत्यय कर्ता)	चला । (अकर्मक कर्तृवाच्य क्रिया-पद)
मैंने/तूने/उसने/लड़के ने (सप्रत्यय कर्ता)	नहाया (अकर्मक कर्तृवाच्य क्रिया-पद)
मुझको/तुझको/उसको/लड़के को कर्ता)	चलना है । अकर्मक कर्तृवाच्य क्रिया पद

लड़की/हवा (अप्रत्यय कर्ता) चली ।
(अकर्मक कर्तृवाच्य क्रिया-पद)

इन सरल वाक्यो से ज्ञात होता है कि जिस-जिस सरल वाक्य मे विधान करने वाले विधेय के रूप में केवल अकर्मक-कर्तृवाच्य क्रिया-पद आता है, उस उस सरल वाक्य मे सबधित क्रिया-पद के द्वारा होने वाले स्थितिवाचक विधान या विकारवाचक विधान या कार्यव्यापारवाचक विधान के साथ विधान के लक्ष्य के रूप में संबंध रखने वाले उद्देश्य का अर्थबोधक पद वाक्य के अप्रत्यय कर्ता के रूप में अथवा सप्रत्यय कर्ता के रूप में आता है।

(थ) **अप्रत्यय कर्ता-पद**	**कर्तृपूर्ति-पद**	**क्रिया-पद**
फूल	कोमल	है । (अकर्मक अपूर्ण कर्तृवाच्य क्रिया-पद)
लडकी	सुन्दर	है । (अकर्मक अपूर्ण कर्तृवाच्य क्रिया-पद)
घोड़ी	काली	थी। (अकर्मक अपूर्ण कर्तृवाच्य क्रिया-पद)

इन कर्तृपूरकीय सरल वाक्यों में ऐसे अकर्मक अपूर्ण कर्तृबाच्य क्रिया-पदों का प्रयोग हुआ है, जिनके संबंधित अप्रत्यय कर्ता के विषय में विधान करते समय आशय की पूर्ति के लिए 'कोमल', 'सुन्दर' तथा 'काली इन (विधेय विशेषण रूपी) कर्तृपूर्ति पदों की सहायता लेनी पडी है ।

(द) **अप्रत्यय कर्ता-पद या सप्रत्यय कर्ता-पद**	**अप्रत्यय एक कर्म-पद या सप्रत्यय एक कर्म-पद**	**सकर्मक/एक कर्मक, कर्तृवाच्य क्रिया पद**
सुनीत	गीत	गाता है ।
राहुल	आम	खायेगा ।
उज्ज्वल ने	पुस्तक	पढ़ी ।
आशा	शेर को	देखती है ।
उषा ने	हाथी को	देखा ।

इन सकर्मक सरल वाक्यों में ऐसे एक कर्मक-कर्तृवाच्य क्रिया-पदों का प्रयोग हुआ है जिनको संबंधित अप्रत्यय कर्ता या सप्रत्यय कर्ता के विषय में विधान करते समय क्रिया के व्यापार का फल जिस पर पड़ता है ऐसे अप्रत्यय कर्म-पद या सप्रत्यय कर्म-पद की सहायता लेनी पड़ी है ।

(ध) **अप्रत्यय कर्ता-पद या सप्रत्यय कर्ता-पद**	**अप्रत्यय एक कर्म-पद या सप्रत्यय एक कर्म-पद**	**कर्मपूर्ति पद**	**सकर्मक/एक कर्मक, अपूर्ण, कर्तृवाच्य क्रिया-पद**
छात्र	पुस्तक को	उपयोगी	समझता है ।
लडके ने	लड़की को	सुन्दर	माना ।
मैंने	मित्र को	मंत्री	बनाया ।
उसने	मिट्टी को	सोना	बनाया ।
गरीब को	रोटी	महत्वूपर्ण	लगती है ।

इन कर्मपूरकीय सकर्मक सरल वाक्यों में ऐसे एक कर्मक, अपूर्ण, कर्तृवाच्य क्रिया-पदों का प्रयोग हुआ है, जिनको संबंधित अप्रत्यय कर्ता या सप्रत्यय कर्ता के विषय में विधान करते समय आशय की पूर्ति के लिए संबंधित एक एक कर्म-पद के लिए एक-एक कर्म-पूर्ति-पद की सहायता लेनी पड़ी है ।

(न) अप्रत्यय कर्ता-पद या सप्रत्यय कर्ता-पद	सप्रत्यय गौण कर्म-पद	अप्रत्यय मुख्य कर्म-पद	सकर्मक/द्विकर्मक कर्तृवाच्य क्रिया-पद
ज्ञानराज	छात्रों को	व्याकरण	पढ़ाते हैं ।
लता ने	बेटों से	बातें	कीं ।
सुनीत ने	लोगों को	गाना	सुनाया ।

इन सकर्मक सरल वाक्यों में ऐसे द्विकर्मक क्रिया-पदों का प्रयोग हुआ है, जिनको संबंधित अप्रत्यय कर्ता या सप्रत्यय कर्ता के विषय में विधान करते समय क्रिया के व्यापार का फल जिस पर पड़ता है, ऐसे अप्रत्यय मुख्य-कर्म-पद की और क्रिया का व्यापार जिनके लिए हुआ है, उनसे संबंधित सप्रत्यय गौण कर्म-पद की भी सहायता लेनी पड़ी है ।

यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त विभाग (त) के 'सरल वाक्य का अर्थबोधक पद-संयोग' केवल कर्ता-पद और क्रिया-पद इन दो ही पदों पर आधारित होता है । इसका अर्थ यह हुआ कि मूल सरल वाक्य के लिए दो पदों का संयोजन पर्याप्त होता है । इस प्रकार के सरल वाक्य को ही 'बीज वाक्य' माना जाता है ।

विभाग (थ) के 'कर्तृवाच्य सरल वाक्य का अर्थबोधक पद-संयोग', केवल कर्ता-पद, कर्तृपूर्ति-पद और क्रिया-पद इन तीन ही पदों पर आधारित होता है ।

विभाग (द) के 'सकर्मक/एक कर्मक सरल वाक्य का अर्थबोधक पद-संयोग' केवल कर्ता-पद, कर्म-पद और क्रिया-पद इन तीन ही पदों पर आधारित होता है।

विभाग (ध) के 'कर्मपूरकीय सकर्मक/एक कर्मक सरल वाक्य का अर्थबोधक पद-संयोग केवल कर्ता-पद, कर्म-पद, कर्मपूर्ति-पद और क्रिया-पद इन चार पदों पर आधारित होता है ।

विभाग (न) के 'सकर्मक/द्विकर्मक सरल वाक्य का अर्थबोधक पद-संयोग' केवल कर्ता-पद, गौण कर्म-पद, मुख्य कर्म-पद और क्रिया-पद इन चार पदों पर आधारित होता है ।

इस प्रकार 'सरल वाक्य' का अर्थबोधक पद-संयोग कम से कम दो अत्यावश्यक पदों पर आधारित हो सकता है और अधिक से अधिक तीन अथवा चार अत्यावश्यक पदों पर आधारित हो सकता है । लेकिन सरल वाक्य का अर्थबोधक पद-संयोग आवश्यकता के अनुसार विशेषताबोधक विशेषण-पद और क्रियाविशेषण-पद के योग से विस्तारित हो सकता है ।

सरल वाक्य में कर्ता या कर्म की अथवा इन दोनों की विशेषता सूचित करके अर्थ मे स्पष्टता, निश्चितता या सूक्ष्मता लाने के लिए विशेष्य के पूर्व एक विशेषण-पद आता है

या एक से अधिक विशेषण-पद आते हैं । जैसे,

वह भला, उद्यमी, सुडौल लड़का चला । (यहाँ 'लड़का' कर्ता रूपी विशेष्य-पद है ।)

उस सीधी, स्वस्थ, सुन्दर, गोरी लड़की को पढ़ना है । (यहाँ 'लड़की' कर्तारूपी विशेष्य पद है ।)

मैंने एक सुंदर लड़की देखी । (यहाँ लड़की कर्मरूपी विशेष्य-पद है ।)

एक साँवला लड़का गोरी लड़की को चाहता है । (यहाँ 'लड़का' कर्तारूपी विशेष्य-पद है और 'लड़की' कर्मरूपी विशेष्य-पद है ।)

सरल वाक्य में क्रिया की स्थानसंबधी, कालसंबधी, रीतिसंबंधी, परिमाणसंबंधी तथा कार्यकारण संबंधी विशेषता सूचित करके अर्थ में स्पष्टता तथा निश्चितता लाने के लिए क्रियापद के पूर्व क्रियाविशेषण पद आता है । जैसे, लड़का आज धीरे-धीरे घर गया । (इस सरल वाक्य में 'आज' कालवाचक क्रियाविशेषण-पद है, 'धीरे-धीरे, रीतिवाचक क्रियाविशेषण-पद है और 'घर' स्थानवाचक क्रियाविशेषण-पद है ।) लड़की पानी के लिए पाँच मील चली । (इस सरल वाक्य में 'पानी के लिए' कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण-पद और 'पॉच मील' परिमाणवाचक क्रियाविशेषण-पद है ।)

स्पष्ट है कि आवश्यकता के अनुसार विशेषण-पद तथा क्रियाविशेषण-पद से सरल वाक्य के अर्थबोधक पद-संयोग का विशेष अर्थसूचक विस्तार हो जाता है। इससे वाक्यार्थ विशेष बन जाता है ।

यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि सरल वाक्य के अर्थबोधक पद-संयोग में कर्ता-पद, कर्म-पद, क्रिया-पद, विशेषण-पद और क्रियाविशेषण-पद अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं । इन्हीं के विशेष संयोग पर ही विशेष वाक्यार्थ टिका रहता है ।

सरल वाक्य के अर्थबोधक पद-सयोग मे कर्ता-पद, कर्म-पद, क्रिया-पद, विशेषण-पद और क्रियाविशेषण-पद के रूप में विभिन्न शब्द-भेदों का संयोजन होता है । जैसे,

(ट) कर्ता-पद के रूप में विभिन्न शब्दों का संयोजन

(१) संज्ञा-शब्द का संयोजन : लड़का/घोड़ा दौड़ा । राम चलता है । सीता बैठी है । खेल का खेत सूख गया ।

(२) सर्वनाम-शब्द का संयोजन : मैं/तू/ वह चला । मुझे चलना है । उसे दौड़ना होगा ।

(३) संज्ञा-शब्द के रूप में कृदंत का संयोजन :

(अ) क्रियार्थक संज्ञा के रूप में कृदंत का संयोजन : कहना आसान है। करना कठिन होता है । सच बोलना अच्छा है (वाक्यांश के रूप में संयोजन) । घोड़े का दौड़ना तेज है । पानी का बरसना शुरू होगा (विशेषणात्मक संबंधकारक के साथ संयोजन) । वहाँ खेलना अच्छा है । (वाक्यांश के रूप में संयोजन)।

(आ) धातु के अंत में 'ता' प्रत्यय के योग से बनने वाले वर्तमानकालिक कृदंत का संयोजन : मरता कुछ भी करता है । डूबते को तिनके का सहारा मिला। चलती बंद हो गयी । (वर्तमानकालिक कृदंत को 'अपूर्ण कृदंत' भी कहते है । कभी इसके साथ विकारसूचक क्रिया का 'हुआ, हुए या हुई' रूप आ सकता है, जैसे, मरता हुआ, डूबते हुए, चलती हुई)।

(इ) धातु के अंत मे 'आ' प्रत्यय के योग से बनने वाले भूतकालिक कृदंत का संयोजन : पढ़ा-लिखा ऐसा नही होता । (भूतकालिक कृदंत को 'पूर्ण कृदंत' भी कहते है। कभी इसके साथ विकारसूचक 'होना' क्रिया का' हुआ, हुए या हुई रूप आ सकता है, जैसे, पढ़ा-लिखा हुआ) ।

(ई) क्रियार्थक संज्ञा के एकारान्त रूप के अंत में 'वाला' प्रत्यय के योग से बनने वाले कर्तृवाचक कृदन्त का संयोजन : सुनने वाला आया । गाने वाले ने गाया।

(४) विशेषण-शब्द का संयोजन : दीन वहाँ खड़ा है । प्यासा पानी पीता है। भूखा रोटी खाता है ।

(५) क्रियाविशेषण-शब्द का संयोजन : उसका भीतर बाहर एक-सा है ।

(६) विस्मयादिबोधक-शब्द का संयोजन : उसकी 'वाह वाह' हुई । वहाँ 'हाय हाय' मची है ।

(७) संज्ञा के बदले आने वाले किसी भी शब्द का संयोजन : 'आ' पश्च स्वर है। 'क्' अल्पप्राण व्यंजन है । 'गाने वाला' शब्द कर्तृवाचक कृदंत है ।

(ख) कर्म-पद (मुख्य कर्म तथा गौण कर्म) के रूप में विभिन्न शब्दों का संयोजन

(१) संज्ञा-शब्द का संयोजन : मैं मित्र को पत्र लिखता हूँ । पशु खेत का खेत चर गये ।

(२) सर्वनाम-शब्द का संयोजन : मित्र मुझे बुलाता है । लड़का तुझे पत्र देगा ।

(३) कृदंत का संयोजन : **(अ) क्रियार्थक संज्ञा का संयोजन** : लड़की कपड़ा सीना सीखती है ।

मुझे तेरा बातें करना पसंद नही है । मैं उसके कहने को कुछ मान नहीं देता। (वाक्यांश अर्थात् पदबंध के रूप एवं कर्म-पद के लिए क्रियार्थक संज्ञा का संयोजन हुआ है।)

(आ) वर्तमानकालिक कृदंत का संयोजन : वह रोतों को हँसाता है । मैंने भागते को लाठी दी ।

(इ) भूतकालिक कृदंत का संयोजन : मैं हाथ का कमाया खाता हूँ । तू मरे को रोटी दो ।

(ई) कर्तृवाचक कृदंत का संयोजन: मैं नाचने वाली को देखता हूँ । तू सुनने वालों को भाषण सुना ।

(४) विशेषण-शब्द का संयोजन : मैंने दीन को देखा । तू भूखे को रोटी दे।

(५) क्रियाविशेषण-शब्द का संयोजन : वह पैसा देने मे 'आजकल' करने लगा है।

(६) विस्मयादिबोधक-शब्द का संयोजन : मैंने दीन की 'आह' सुनी !

(७) संज्ञा के बदले आने वाले किसी भी शब्द का संयोजन : वह 'अ, आ, इ, सीख रहा है । तू हाँ में हाँ मिलाना । मै 'ज्ञ' लिख सकता हूँ ।

(ङ) विशेषण-पद के रूप में विभिन्न शब्दों का संयोजन

(१) संज्ञा-शब्द का संयोजन : **विशेष्य-विशेषण के रूप में** : गायक सुनीत गाता है । लेखक ज्ञानराज लिखते हैं । **विधेय-विशेषण के रूप में** : सुनीत गायक है । ज्ञानराज लेखक हैं । लतिका सुगृहिणी है ।

(२) **सर्वनाम-शब्द का संयोजन : विशेष्य-विशेषण के रूप में :** वह लड़की आयी। ऐसा लड़का यहाँ है । **विधेय विशेषण के रूप में :** यहाँ लड़की ऐसी है । लड़का कैसा है ? तू तो अपना है ।

(३) **विशेषण-शब्द का संयोजन : विशेष्य-विशेषण के रूप में :** यह कोमल फूल है । वह सुंदर लड़की है । वहाँ काला घोड़ा है । अच्छी बात है । आज इतना काम हुआ। पांच हम है ।

विधेय विशेषण के रूप में : फूल कोमल है । लड़की सुंदर है । घोडा काला है। बात अच्छी है । आज काम इतना हुआ । वे सौ थे । हम पाँच हैं ।

(४) **कृदंत का संयोजन : (अ) विधेय-विशेषण के रूप में क्रियार्थक संज्ञा का संयोजन :**

(अ-१) विकारी विधेय-विशेषण के रूप में : मुझे काम करना है । तुझे कई काम करने हैं । उसे मदद करनी है ।

(अ-२) निश्चय के अर्थ में संबंधकारक के साथ : लड़की वहाँ जाने की नहीं। तू कुछ खाने का नहीं ।

(अ-३) तत्परता के अर्थ में संप्रदान कारक के साथ : वह आने को है । तू जाने को है । गाड़ी छूटने को है ।

(आ) भूतकालिक कृदंत का संयोजन : विशेष्य-विशेषण के रूप में : बीता समय फिर नहीं आता । वहाँ गिरी हुई दीवार है । वहाँ काम सीखा हुआ नौकर है। यहाँ दौड़े हुए लड़के बैठे हैं । यह तो सुनी हुई बात है । यह मेरा लिखा ग्रंथ है । वहाँ कपास का बना धागा है । किए का फल मिलता है । **विधेय-विशेषण के रूप में :** वहाँ एक फूल खिला हुआ है । वे मन में फूले नहीं समाते । वह लड़की घबरायी हुई थी । वह तो बहुत ही गया-बीता है ।

(इ) वर्तमानकालिक कृदंत का संयोजन : विशेष्य-विशेषण के रूप में : मैंने बहता हुआ पानी देखा । उसने चलती हुई गाड़ी पकडी । मैंने उद्यान में खिलते हुए फूल देखे।

विधेय-विशेषण के रूप में : वह दौडता हुआ आया । हाथी झूमते हुए चलता है। लड़की घूमती घूमती घर लौटी ।

(ई) कर्तृवाचक कृदंत का संयोजन : विशेष्य-विशेषण के रूप में : गाने वाला लड़का आ गया । **विधेय-विशेषण के रूप में :** गाड़ी आने वाली है । लड़का गाने वाला है । वे ग्रंथ लिखने वाले आये ।

(५) **संबंधकारक का संयोजन :** विशेष्य-विशेषण के रूप में : यह मकान का मालिक है । मेरी सोने की अँगूठी है । यह सौ रूपयों की पुस्तक है । वह रहने का मकान है । मेरी सोने की अँगूठी है । यह सौ रूपयों की पुस्तक है । वह रहने का मकान है । बीस साल पहले की बात है । तू तो मूर्ख का मूर्ख रहा । कुछ का कुछ हुआ । महीने के महीने वेतन मिलता है । **विधेय विशेषण के रूप में :** तुमने मुझे घर का बनाया । मैं तुम्हारा हूँ ।

(ढ) क्रियाविशेषण-पद के रूप में विभिन्न शब्दों का संयोजन

(१) **संज्ञा-शब्द या संज्ञा-पदबंध का संयोजन :** लड़की घर गयी । वह पूरा दिन चला । एक समय बात हुई ।

(२) **विधेय विशेषण-शब्द का संयोजन :** राहुल अच्छा खेलता है । लडकी उदास बैठी है । वह चुप खडा है ।

(३) **क्रियाविशेषण-शब्द या क्रियाविशेषणात्मक पदबंध का संयोजन :** वह आज आया । लड़की भीतर है । मैं धीरे-धीरे चलता हूँ । मेरे आने के बाद वह गया। वह कही न कही मिलेगी । आम हाथों हाथ बिक गये । सुंदरी सिर से पैर तक भीगी है ।

(४) कृदंत का संयोजन : (अ) **क्रियार्थक संज्ञा के एकारांत रूप का करणकारक, संप्रदानकारक, अपादान कारक और अधिकरणकारक के साथ संयोजन :** मुझे आपके आने से लाभ हुआ (करणकारक पदबंध) उसे पीने को पानी मिला (संप्रदान कारक) । पानी के न होने से घड़ा खाली है (अपादान कारक पदबंध) । अथवा काम जल्दी करने मे फायदा है । (अधिकरणकारक) वहाँ पहुँचने पर मै उसे मिलूँगा (अधिकरण कारक) । वह पैसा कमाने को काम करता है । (संप्रदान कारक)

(आ) **धातु के अंत में 'ते' प्रत्यय के योग से बनने वाले अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत का संयोजन :** दिन रहते तेरा काम हो जाएगा । वहाँ से लौटते रात हो गयी। दिन काम करते बीता । वह हँसते-हँसते आ गयी । मेरे रहते कुछ नहीं होगा। यह कहते मुझे आनंद होता है ।

(इ) **धातु के अंत में 'ते ही' प्रत्ययों के योग से बनने वाले तात्कालिक कृदंत का संयोजन :** तूने आते ही बात की । दस बजते ही गाड़ी आएगी । वह तो देखते ही देखते गायब हो गयी । उसके आते ही अपना काम बना । सूर्य डूबते ही अंधेरा छा गया ।

(ई) **भूतकालिक कृदंत के एकारांत रूप से बनने वाले पूर्ण क्रिया द्योतक कृदंत का संयोजन :** दस बजे गाड़ी आएगी । उसे घर छोड़े/यहाँ से गये एक वर्ष हुआ है । सोना जानिए कसे । आदमी जानिए बसे । उसके आए बिना काम नहीं होगा ।

(उ) **धातु के अंत में 'कर' अथवा 'के' प्रत्यय के योग से बनने वाले पूर्वकालिक कृदंत का संयोजन :** दस बजकर दो मिनट हुए हैं । लड़का उठकर भागा । वह खाना खाके संतुष्ट होगा । मैं प्रसन्न होकर भाषण देने लगा । इससे थकान मिटकर आराम मिलता है ।

(बहुधा अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत मुख्य क्रिया के कार्य की अपूर्णता का अर्थबोधक बना रहता है । इसका संयोजन कभी 'भी' के साथ विरोध के अर्थ मे होता है, जैसे, वह श्रम करते हुए भी गरीब ही रहा । झूठ बोलने वाला आदमी मरते-मरते भी सच नहीं बोला। कभी 'भी' के बिना विरोध के अर्थ में इसका संयोजन होता है, जैसे, भलाई करते बुराई न हो ।

पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत क्रिया के कार्य की पूर्णता का अर्थबोधक बना रहता है । तात्कालिक कृदंत मुख्य क्रिया के समय के साथ ही होने वाले कार्य का अर्थबोधक बना रहता है । पूर्वकालिक कृदन्त मुख्य क्रिया के पहले होने वाली कार्य - समाप्ति का अर्थबोधक बना रहता है । इसका संयोजन कभी विरोध के अर्थ में होता है; जैसे, पानी में रहकर मगर से बैर ठीक नहीं । कभी सामीप्य के अर्थ में संयोजन, जैसे, उसका घर सड़क से हटकर है । कभी अधिकता के अर्थ में संयोजन, जैसे, पुस्तक से बढ़कर लेखक की प्रशंसा करनी चाहिए । अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत, पूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत, तात्कालिक कृदंत और पूर्वकालिक कृदंत ये चारो सदा अविकारी बने रहते हैं)

(५) **चार कारकों का संयोजन :** (ए) करण कारक का संयोजन : मैंने चाबी से ताला खोला । इस कारण से धन मिला । हम कानो से सुनते हैं, आँखों से देखते हैं । इस हेतु से काम हुआ । मेरे दर्शन से उसे लाभ हुआ । मैं इस इच्छा से काम करता हूँ।

लड़के क्रम से बैठे हैं । वह क्या से क्या हुआ ! वह सिपाही से मंत्री बना। मैं स्वभाव से अच्छा हूँ । मैंने कपड़ा इस भाव से खरीदा ।

(ऐ) संप्रदान कारक का संयोजन : मैंने दस रूपयों को पुस्तक खरीदी है। चलने को तो मैं अभी चल सकता हूँ (अवधारण के अर्थ में) ।

(ओ) अपादान कारक का संयोजन : मैं पुणे से आया हूँ । वह कल से प्रसन्न है। दूध से दही बनता है । यह बात उस बात से अलग है । मुझसे बढ़कर कौन भला होगा? भारी से भारी काम हुआ । बच्चा बिल्ली से डरता है । उसने घड़े से जल लिया । मित्र ने मुझसे पैसे माँगे । मैंने उसे जाने से रोका ।

(औ) अधिकरण कारक का संयोजन : लड़की घर में बैठी है । दही में खटाई है । लड़की रूप में सुंदर है । लड़का काम पर गया है । मेरा तुझ पर विश्वास है । उसका घर सड़क पर है । मेरे कहने पर वह प्रसन्न हुआ । हम मजे में हैं । मैं समय पर आता हूँ । वह गाँव दस मील पर है । दिन पर दिन भाव बढ़ते हैं । उसने खाना खाने पर पानी पिया । छात्रों में से यही एक अच्छा है । वह घोड़े पर से गिर पड़ा ।

(ण) क्रिया-पद के रूप में विभिन्न शब्दों का संयोजन

(१) संज्ञा-शब्द से क्रिया-पद का संयोजन : अनुराग संज्ञा से अनुरागना क्रिया; त्याग संज्ञा से त्यागना क्रिया : खरीद संज्ञा से खरीदना क्रिया; बदल संज्ञा से बदलना क्रिया, स्वीकार संज्ञा से स्वीकारना क्रिया; लाज संज्ञा से लजाना क्रिया ; दुख संज्ञा से दुखाना क्रिया, आदि ।

(२) सर्वनाम-शब्द से क्रिया-पद का संयोजन :अपना सर्वनाम रूप से अपनाना क्रिया।

(३) विशेषण-शब्द से क्रिया-पद का संयोजन : चिकना विशेषण से चिकनाना क्रिया; अलग विशेषण से अलगाना क्रिया; साठ विशेषण से सठियाना क्रिया ।

(४) विभिन्न क्रिया-शब्दों से क्रिया-पद का संयोजन : चलना, बैठना, पढ़ना, बनाना, सुनाना आदि ।

(५) क्रियार्थक संज्ञा से क्रिया-पद का संयोजन : मुझे दौड़ना है (संयुक्त क्रिया-पद) । उसको चलना था । (संयुक्त क्रियापद) । तू जाना; तुम काम करना (परोक्ष विधिकाल में आज्ञार्थ स्वतंत्र क्रिया-पद)

सरल वाक्य के अर्थबोधक पद-संयोग में उपर्युक्त पाँच पदों के साथ-साथ आवश्यकता के अनुसार कर्तृपूर्ति-पद और कर्मपूर्ति-पद भी महत्व के होते हैं । बहुधा कर्तृपूर्ति-पद और कर्मपूर्ति-पद विधेय-विशेषण पर ही आधारित होते है । जैसे, सुनीत गायक है । राहुल खिलाड़ी है । वह उज्ज्वल को मित्र मानता है । फूल कोमल है । आशा ने मुझे सुंदर समझा । वह तो अपना है । उसने मुझे घर का बनाया । वह पुस्तक उषा की थी । लड़का दौड़ते हुए आया । सिपाही ने चोर को चोरी करते हुए पकड़ा ।

(१८-३) सरल वाक्य में अर्थबोधक पदबंध-संयोग

सरल वाक्य में विभिन्न शब्द-भेदों के अर्थ मे विभिन्न पदबंधों अर्थात् वाक्यांशो का भी सयोजन होता है । जैसे,

(१) संज्ञा-पदबंध : विशेषणात्मक या अन्य प्रकार के पूर्व विस्तार सहित संज्ञा-शब्द सज्ञा-पदबंध बना रहता है । जैसे, **कर्ता के रूप में :** गोली से घायल शेर भाग गया। सेवा

में रमा हुआ राम आ गया ! **कर्म के रूप में :** मैंने अपनी खोयी हुई पुस्तक पायी। उसने दौडते हुए चोर को पकडा । **कर्तृपूर्ति के रूप में:** वह बड़ा धनी आदमी आया है ।

विशेषणात्मक या अन्य प्रकार के पूर्व विस्तार सहित क्रियार्थक संज्ञा, कर्तृवाचक कृदंत या विशेषण भी संज्ञा-पदबंध बना रहता है । जैसे, समय का सदुपयोग करना अच्छा होता है । पैदल चलते हुए लौटना ठीक है । इधर-उधर भटकता हुआ गाने वाला आया था । मैंने भीख माँगता हुआ दीन देखा ।

(२) **सर्वनाम-पदबंध :** विशेषणात्मक या अन्य प्रकार के पूर्व विस्तार या पश्चात् विस्तार के साथ सर्वनाम सर्वनाम-पदबंध बना रहता है । जैसे, नसीब का मारा वह भटक रहा है । दिनरात मेहनत करने वाला तू कभी भूखा नहीं रहेगा । तुझ अभागे ने यह सब किया ! उस अभ्यास करने वाले को अवश्य यश मिलेगा ।

(३) **विशेषण-पदबंध :** विशेषणरूपी विस्तार के अंत में विशेष्य संज्ञा या विशेष सर्वनाम के आने पर विशेषण-पदबंध बना रहता है । जैसे, लगन के अभ्यास करता हुआ छात्र पास होगा ही । वहाँ पचास एक, छात्र पढ़ रहे हैं । लड़का किलोभर आटा, गज दो गज कपड़ा लाया । वह बहुत ही अच्छी लड़की है । हम खाने में स्वादिष्ट मिठाई पसंद करते हैं । फूल-सी सुन्दर वह खेल रही है । सबसे बलवान तू मेरा दोस्त है ।

(४) **क्रिया-पदबंध :** केन्द्रीय क्रिया के अन्य क्रियाओं सहित आने पर क्रिया-पदबंध बना रहता है । जैसे, हवा चल रही है । लड़का दौड़ा जा रहा है । तेरी बात मान ली जा सकती है । वह लौटकर बोली ।

(५) **क्रियाविशेषण-पदबंध :** विस्तार के साथ क्रियाविशेषण के आने पर क्रियाविशेषण पदबंध बना रहता है । जैसे, मित्र के घर के चारो ओर पेड़-पौधे हैं। वह गुस्से में दाँत पीसती हुई आ गयी । मैं तेरी ओर से होकर जाऊँगा । वह लड़की गिरते हुए चिल्लायी। हम अगले सप्ताह के अन्त तक लौटेंगे । वे खुले मैदान में खेलते हैं । मैं बड़ी सावधानी से लिखता हूँ । तू बहुत ही धीरे धीरे चलती है ।

(६) **संबंधबोधक पदबंध :** दूसरे संबंधबोधक के साथ किसी संबंधबोधक के आने पर संबंधबोधक पदबंध बना रहता है । जैसे , लड़का दौड़ता है, इसलिए कि वह दौड को जीतना चाहता है ।

(८) **विस्मयादिबोधक पदबंध :** विस्तारित विस्मयादिबोधक ही विस्मयादिबोधक पदबंध बना रहता है । जैसे, बाप रे बाप ! यह क्या हुआ ! अरे बाप रे ! भागो ! दइया रे दइया ! मैं मर गयी ! हाय री किस्मत ! कुछ रहम कर ! बहुत अफसोस!

(१८-४) मिश्र वाक्य का अर्थबोधक वाक्य-संयोग

'मिश्र वाक्य' एक ऐसा वाक्य होता है जिसमें एक मुख्य वाक्य के साथ एक या एक से अधिक आश्रित वाक्यो का अर्थबोधक संयोग बना रहता है । इस कारण से ही मिश्र वाक्य मे मुख्य वाक्य के साथ आश्रित संज्ञा उपवाक्य अथवा आश्रित विशेषण उपवाक्य या आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग बना रहता है ।

(क) संज्ञा उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग

मिश्र वाक्य में आश्रित संज्ञा उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के कर्ता-पद, कर्म-पद, कर्तृपूर्ति-पद या समानाधिकरण-पद के साथ उसी रूप में ही अर्थबोधक संयोग बना रखता है ।

(१) कर्ता-पद के साथ संज्ञा उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग

किसी मिश्र वाक्य में मुख्य उपवाक्य के कर्त्ता-पद के साथ या कर्ता-पदबंध के साथ कर्ता के रूप में ही आश्रित संज्ञा उपवाक्य का संयोग बना रहता है । जैसे, 'यह बात है कि हम किसी से नहीं डरते ।'

इस मिश्र वाक्य में मुख्य वाक्य के कर्ता-पद' बात' के स्पष्टीकरण के लिए ही 'कि' इस स्वरूपवाचक समुच्चयबोधक से आरंभ हुआ आश्रित संज्ञा उपवाक्य आया है, जो इस प्रकार है - 'कि हम किसी से नहीं डरते ।'

स्पष्ट है कि यहाँ जो आश्रित संज्ञा उपवाक्य है, वह 'बात' इस कर्ता रूपी संज्ञा के लिए आया है । इस कारण से ही 'कि हम किसी से नहीं डरते' यह आश्रित संज्ञा उपवाक्य मुख्य उपवाक्य का संज्ञा रूपी कर्ता ही है ।

(२) कर्म-पद के साथ संज्ञा उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग

किसी मिश्र वाक्य मे मुख्य उपवाक्य के कर्म-पद या कर्म-पदबंध के साथ कर्म के रूप में ही आश्रित संज्ञा उपवाक्य का संयोग बना रहता है । जैसे, 'लड़का बोला कि मैं घर जाऊँगा । मैं जानता हूँ कि वह विद्वान है ।'

पहले मिश्र वाक्य में 'लड़का' कर्ता-पद है और उसके विषय में विधान करने वाला क्रिया-पद 'बोला' यह सकर्मक/एक कर्मक क्रिया-पद है, इसलिए 'कि' स्वरूपवाचक समुच्चयबोधक से आरंभ हुआ आश्रित उपवाक्य 'कि मैं घर जाऊँगा 'मुख्य उपवाक्य के कर्म-पदबंध 'घर जाने की बात (बोला) के आरंभ का स्पष्टीकरण करने वाला संज्ञा उपवाक्य है । इस प्रकार पहले मिश्र वाक्य में आश्रित संज्ञा उपवाक्य' कि मैं घर जाऊँगा 'मुख्य उपवाक्य का संज्ञा-पदबंध रूपी कर्म-पद ही है ।

दूसरे मिश्र वाक्य में 'मैं' सर्वनाम-शब्द 'कर्ता-पद' है और उसके विषय में विधान करने वाला क्रिया-पद 'जानता हूँ' यह सकर्मक/एक कर्मक क्रिया-पद है, इसलिए 'कि' स्वरूपवाचक समुच्चयबोधक से आरंभ हुआ आश्रित उपवाक्य 'कि वह विद्वान है' मुख्य उपवाक्य के क्रियार्थक संज्ञा से युक्त कर्म-पदबंध 'उसका विद्वान होना' का स्पष्टीकरण करने वाला संज्ञा उपवाक्य है । इस प्रकार दूसरे मिश्र वाक्य मे आश्रित संज्ञा उपवाक्य 'कि वह विद्वान है' मुख्य उपवाक्य का' संज्ञा-पदबंध रूपी कर्म-पद ही है ।

(३) कर्तृपूर्ति-पद के साथ संज्ञा उपावक्य का अर्थबोधक संयोग

किसी मिश्र वाक्य में मुख्य उपवाक्य के कर्ता-पद या कर्ता-पदबंध के साथ कर्तृपूर्ति के रूप में आश्रित संज्ञा उपवाक्य का संयोग बना रहता है । जैसे, 'मेरा विचार है कि मै हिन्दी में व्याकरण की पुस्तक लिखूँ ।'

इस मिश्र वाक्य में 'मेरा विचार संज्ञारूपी कर्ता-पदबंध है और उसके विषय में विधान करने वाला क्रिया-पद 'है' यह अकर्मक अपूर्ण क्रिया-पद है, इसलिए यहाँ 'है' इस क्रिया-पद ने कर्ता-पदबंधविषयक विधान के आशय की पूर्ति के लिए 'मेरे द्वारा हिन्दी में व्याकरण की पुस्तक लिखने का' इस क्रियार्थक संज्ञा से संबंधित संबंधकारकीय विधेय-विशेषण का उपयोग 'कर्तृपूर्ति-पदबंध' के रूप मे किया है और उसके लिए 'कि' स्वरूपवाचक समुच्चयबोधक की सहायता से 'कि मैं हिन्दी में व्याकरण की पुस्तक लिखूँ' इस आश्रित संज्ञा उपवाक्य का संयोजन किया है । इस प्रकार यहाँ आश्रित संज्ञा उपवाक्य मुख्य

उपवाक्य का सज्ञा पद-बंध रूपी कर्तृपूर्ति-पद है ।

'उसकी इच्छा है कि बेटी को स्कूल जाने दे ।' इस मिश्र वाक्य मे भी 'उसकी इच्छा है यह मुख्य कर्तृपूरकीय उपवाक्य है और उस पर आश्रित संज्ञा-पदबंध रूपी कर्तृपूर्ति-पदबंधात्मक उपवाक्य है - 'कि बेटी को स्कूल जाने दे।' इसलिए यह मिश्र वाक्य कर्तृपूरकीय सरल वाक्य इस प्रकार बनता है - 'उसकी इच्छा बेटी को स्कूल जाने देने की है !' इस प्रकार यहां आश्रित उपवाक्य कर्तृपूर्ति-पदबंधात्मक संज्ञा उपवाक्य है ।

(४) समानाधिकरण- पद के साथ संज्ञा उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग

किसी मिश्र वाक्य में मुख्य उपवाक्य के निश्चयवाचक सर्वनाम रूपी पद के समानाधिकरण के रूप में आश्रित संज्ञा उपवाक्य का संयोग बना रहता है । वास्तव मे मुख्य उपवाक्य मे कर्ता-पद के रूप मे 'संज्ञा-पद' आता है और उसी के आगे तुरत निश्चयवाचक सर्वनाम 'यह' आता है, जो मुख्य उपवाक्य के संज्ञा-पद रूपी कर्ता-पद का समानाधिकरण पद बना रहता है । इसीलिए 'यह' समानाधिकरण-पद के रूप मे ही आश्रित संज्ञा उपवाक्य आता है । जैसे,

'मेरा विश्वास यह है कि राहुल अभियंता बनेगा ही ।'

इस मिश्र वाक्य में मेरा विश्वास यह है' मुख्य उपवाक्य है । उसमे 'मेरा विश्वास 'यह संज्ञा पदबंध कर्ता-पदबंध है, जिसके लिए समानाधिकरण-पद के रूप में 'यह' निश्चयवाचक सर्वनाम आया है । इसी निश्चयवाचक सर्वनाम 'यह' के रूप में आश्रित सज्ञा उपवाक्य आया है - 'कि राहुल अभियंता बनेगा ही ।' इस प्रकार यहाँ आश्रित सज्ञा उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग 'यह' के साथ समानाधिकरण-पद के रूप में है ।

'कि' इस स्वरूपवाचक समुचयबोधक की सहायता से बने मिश्र वाक्य में सज्ञा उपवाक्य का आरंभ 'कि' से ही होता है । संज्ञा उपवाक्य का आरंभ जिस कि से होता है कभी उसका अध्याहार इस प्रकार होता है- 'मैं जानता हूँ, वह विद्वान है ।' 'मेरा विश्वास यह है, राहुल अभियंता बनेगा ही ।' 'मेरी आशा है, आप स्वस्थ एवं सानंद हैं ।

कभी आश्रित संज्ञा उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के पहले आता है । उस समय कि इस स्वरूपवाचक समुच्चयबोधक का लोप होता है और मुख्य उपवाक्य के आरंभ में 'यह निश्चयवाचक सर्वनाम आश्रित संज्ञा उपवाक्य का समानाधिकरण-पद बनकर आता है । जैसे, 'वह विद्वान है यह मैं जानता हूँ ।' 'राहुल अभियंता बनेगा ही यह मेरा विश्वास है।' आप स्वस्थ एवं सानंद हैं यह मेरी आशा है ।

(ख) विशेषण उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग

'मिश्र वाक्य' में आश्रित विशेषण उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के विशेष्य कर्ता-पद के साथ, विशेष्य कर्म-पद के साथ या विशेष्य पूर्ति-पद के साथ किसी विशेषता का अर्थबोधक बना रहता है ।

(१) कर्ता-पद के साथ विशेषण उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग

किसी मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में ऐसा कर्ता-पद होता है, जिसकी किसी प्रकार की विशेषता का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित विशेषण उपवाक्य अपना संयोग बना रखता है । जैसे 'एक लडका यहाँ भी है जो बहुत होनहार है ।'

इस मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में 'एक लडका' ऐसा कर्ता-पदबंध है, जिसकी होनहार होने की विशेषता' का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित उपवाक्य 'जो बहुत होनहार है' विशेषण उपवाक्य बन गया है ।

(२) कर्म-पद के साथ विशेषण उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग

किसी मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में ऐसा कर्म-पद होता है जिसकी किसी प्रकार की विशेषता का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित विशेषण उपवाक्य अपना संयोग बना रखता है । जैसे, 'मैंने वह लड़की देखी है जो बहुत सुंदर है ।'

इस मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में 'वह लड़की' ऐसा कर्म-पदबंध है, जिसकी बहुत सुंदर होने' की विशेषता का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित उपवाक्य 'जो बहुत सुदर है' विशेषण उपवाक्य बन गया है ।

(३) पूर्ति-पद के साथ विशेषण उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग

किसी मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में ऐसा पूर्ति-पद होता है, जिसकी किसी प्रकार की विशेषता का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित विशेषण उपवाक्य अपना संयोग बना रखता है । जैसे, वह लड़का तो छात्र है, जो लगन से अध्ययन करता है ।'

इस मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य मे 'छात्र' ऐसा कर्तृपूर्ति-पद है जिसकी 'लगन से अध्ययन करने की विशेषता' का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित उपावक्य 'जो लगन से अध्ययन करता है' विशेषण उपवाक्य बन गया है ।

विशेषण उपवाक्य के संबंधवाचक सर्वनाम-पदों और नित्यसंबंधी सर्वनाम-पदों की अर्थबोधकता

(१) मिश्र वाक्य में 'जो' यह संबंधवाचक सर्वनाम आश्रित उपवाक्य के आरंभ मे आकर पूरे वाक्य को विशेषण उपवाक्य का अर्थबोधक बनाता है । 'वह' या 'सो' सर्वनाम नित्यसंबंधी सर्वनाम के रूप में विशेष्य से युक्त उपवाक्य का अर्थबोधक बना रहता है । जैसे, वह लड़का आया, जो परिश्रमी है । सो लड़की दौड़ी जो दौड़ना पसंद करती है ।

(२) कभी 'जो' संबंधवाचक सर्वनाम से बना हुआ सार्वनामिक विशेषण 'जैसा, जैसे जैसी, जितना, जितने, जितनी, जिसका, जिसके' अथवा 'जिसकी' आश्रित उपवाक्य के आरभ में आकर पूरे वाक्य को विशेषण उपवाक्य का अर्थबोधक बनाता है । ऐसी स्थिति मे 'वह' या 'सो' सर्वनाम से बना हुआ नित्यसंबधी सार्वनामिकं विशेषण 'वैसा, वैसे, वैसी उतना, उतने, उतनी, उसका, उसके, उसकी, तैसा, तैसे, तितना, तितने, तितनी, तिसका तिसके' अथवा 'तिसकी' विशेष्य युक्त उपवाक्य में आकर उसे मुख्य उपवाक्य का अर्थबोधक बनाता है । जैसे, लड़का जैसा काम करेगा, वैसा फल पायेगा । लड़की जैसी संगति करेगी, तैसा फल पायेगी । कोई जितना काम करता है, उतना दाम पाता है । जिसकी लाठी होती है, उसकी भैंस होती है।

(३) कभी 'जो' सर्वनाम से बना हुआ सार्वनामिक क्रियाविशेषण 'जब, जहाँ, जितने अथवा 'जैसे' आश्रित उपवाक्य के साथ आकर उसे विशेषण उपवाक्य का अर्थबोधक बनाता है । उस समय 'वह' या 'सो' सर्वनाम से बना हुआ नित्यसबंधी सार्वनामिक क्रियाविशेषण तब तहा वहा तैसे वैसे अथवा उतने' विशेष्य युक्त में आकर उसे मुख्य

उपवाक्य का अर्थबोधक बनाता है । जैसे, जहॉ पहले जंगल था, वहाँ अब मैदान है । लडका जैसे जैसे पढ़ेगा, वैसे वैसे वह विद्वान बनेगा।

(४) कभी विशेषण उपवाक्य में संबधवाचक सर्वनाम 'जो' के अर्थ मे प्रश्नवाचक सर्वनाम 'क्या' आता है और उसका संबंध केवल उसी शब्द के साथ रहता है जिसके साथ प्रश्नवाचक या संबंधवाचक सर्वनाम आता है । जैसे, 'नाटक' क्या (जो) है, सो मैं तुझे समझाता हूँ । 'फिर उसके बाद क्या (जो) हुआ, वह मुझे मालूम नहीं हुआ । (यहाँ 'क्या यह प्रश्नवाचक सर्वनाम प्रश्न के अर्थ में पूरे विशेषण उपवाक्य से संबंध नही रखता । केवल अपने से संबंधित शब्द के साथ ही संबंध रखता है । इसीलिए पहले वाक्य में 'क्या प्रश्नवाचक सर्वनाम ने 'नाटक' के साथ संबंध रखा है और 'नाटक' शब्द ने मुख्य उपवाक्य 'सो' नित्यसंबंधी सर्वनाम के साथ संबंध रखा है ।)

(ग) क्रियाविशेषण उपवाक्य का अर्थबोधक संयोग

'मिश्र वाक्य' मे आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य मुख्य वाक्य के क्रिया-पद की कालसंबंधी, स्थानसंबंधी, रीतिसंबंधी, परिमाणसंबंधी और कार्य-कारणसंबंधी विशेषता का अर्थबोधक बना रहता है । जैसे,

(१) कालसंबंधी विशेषता के साथ क्रियाविशेषण उपवाक्य का संयोग

मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में 'सो' नित्यसंबधी सर्वनाम से बने हुए 'तब, तब-तब, तब तक, तभी' अथवा 'त्योंही' कालवाचक क्रियाविशेषण के साथ ऐसा क्रिया-पद होता है, जिसकी कालसंबंधी विशेषता का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य 'जो' संबंधवाचक सर्वनाम से बने हुए 'जब, जब-जब, जब तक, जब कभी' अथवा 'ज्योंही' कालवाचक क्रियाविशेषण के साथ आता है । जैसे,

(१-अ) निश्चित काल के अर्थ में : जब/ज्योंही मैं पढ़ने को बैठा, तब त्योंही माँ ने बुलाया । जब वर्षा होने लगती है, तब किसानों को आनंद होने लगता है ।

(१-आ) काल-मर्यादा के अर्थ में : जब वर्षा हो रही थी, तब वह घर जाने लगा। उसे जब तक पढ़ना था, तब तक वह पढ़ता रहा ।

(१-इ) पुनः पुनः (फिर फिर/बार बार) के अर्थ में : जब जब वर्षा होती है, तब तब मुझे आनंद होता है । जब कभी तू संकट में रहता है, तब हम तेरी मदद करते हैं ।

(२) स्थान संबंधी विशेषता के साथ क्रियाविशेषण उपवाक्य का संयोग

मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में वह, सो' नित्यसंबंधी सर्वनाम से बने हुए 'वहाँ, वहाँ से, उधर' अथवा 'तहाँ' स्थानवाचक क्रियाविशेषण के साथ ऐसा क्रिया-पद होता है, जिसकी स्थान संबंधी विशेषता का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य जो' संबंधवाचक सर्वनाम से बने हुए 'जहाँ, जहाँ से' अथवा 'जिधर' स्थानवाचक क्रियाविशेषण के साथ आता है । जैसे,

(२-अ) स्थान की स्थिति के अर्थ में : जहाँ अभी महाविद्यालय दिखता है, वहाँ कभी खेत था ।

(२-आ) स्थान की दिशा के अर्थ में जिधर लडकी गयी है उधर मैं भी जाऊँगा

(२ इ) **स्थान की ओर गति के आरंभ के अर्थ में :** जहाँ से तू आया है, वहीं से मैं भी आया हूँ । जहाँ स्कूल है, वहाँ ये छात्र जा रहे हैं ।

(२-ई) **गति के अंत के अर्थ में :** जहाँ तू जाता है, वहाँ मैं भी आऊँगा । तुम जहाँ चाहो, तहाँ बैठो

(३) रीति संबंधी विशेषता के साथ क्रियाविशेषण उपवाक्य का संयोग

मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य मे 'यह/वह/क्या/सो' सर्वनाम से बने हुए 'ऐसे/वैसे/कैसे/किसतरह/किस प्रकार/त्यों/उस तरह/उस प्रकार 'रीतिवाचक क्रियाविशेषण के साथ ऐसा क्रिया-पद होता है, जिसकी रीतिसंबंधी विशेषता का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य 'जो' सबधवाचक सर्वनाम से बने हुए जैसे/ज्यों/जिस तरह/जिस प्रकार 'रीतिवाचक क्रियाविशेषण के साथ आता है । जैसे,

(३-अ) **समता के अर्थ में :** - जैसे सुनीत गाता है, वैसे हम भी गाते हैं । राहुल जैसे दौड़ता है, वैसे हम भी दौड़ते हैं । जिस तरह तू चली, उस तरह वह भी चली ।

(३-आ) **विषमता के अर्थ मे :** - लता जिस प्रकार सुगृहिणी है, उसी तरह और कोई नहीं । जैसे ज्ञानराज भाषण देते हैं, वैसे दूसरा भाषण नहीं दे सकता । जिस तरह उज्ज्वल पढ़ने बैठता है, उस तरह और कोई पढ़ने नहीं बैठता ।

(४) परिमाणसंबंधी विशेषता के साथ क्रियाविशेषण उपवाक्य का संयोग

मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में वह, यह नित्यसंबंधी सर्वनाम से बने हुए 'वैसे-वैसे/त्यों त्यों/वहाँ तक/उतना यहाँ तक परिमाणवाचक क्रियाविशेषण के साथ ऐसा क्रिया-पद होता है, जिसकी परिमाणसंबंधी विशेषता का अर्थबोधक बनने के लिए आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य 'जो' संबंधवाचक सर्वनाम से बने हुए 'जैसे-जैसे/ज्यो-ज्यों/जितना/जहाँ तक' परिमाणवाचक क्रियाविशेषण के साथ आता है । जैसे,

(४-अ) **अधिकता के अर्थ में :** जैसे जैसे पढ़ाई बढ़ती है, वैसे वैसे खर्च भी बढ़ता है ।

(४-आ) **न्यूनता के अर्थ में :** आमदनी जितनी कम होती है, उतना ही कम खर्च होता है ।

(४-इ) **तुल्यता के अर्थ में :** मैं जितना पढता हूँ, उतना तू नहीं पढता ।

(४-इ) **अनुपात के अर्थ मे :** तुम जितना काम करोगे, उतना ही फ़ायदा होगा। जहाँ तक हो सके, हमे जीत के लिए उतना प्रयत्न करना है ।

(५) कार्यकारण संबंधी विशेषता के साथ क्रियाविशेषण उपवाक्य का संयोग

मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में ऐसा क्रिया-पद आता है, जिसकी कार्यकारण संबधी विशेषता का अर्थबोध करने के लिए आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य बना रहता है । जैसे,

(५-अ) **हेतु या कारण के अर्थ में :** मै गाना गा नहीं सका, क्योंकि मेरा गला खराब था । वह नहीं पढेगा, कारण वह पढना नहीं चाहता । लडकी इसलिए दौडती है कि वह दौड़ मे जीत सके । मैं बहुत परिश्रमी हूँ, इसलिए कि मै कुछ बनना चाहता हूँ । (हेतु या कारण

के अर्थ में कार्यकारणवाचक आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य के साथ 'क्योंकि/कारण/इसलिए कि/इसलिए ....कि क्रियाविशेषण आता है ।)

(५-आ) कार्य या निमित्त (उद्देश्य) के अर्थ में :

मैं बहुत लिखना चाहता हूँ कि/जिससे मैं कीर्ति पा सकूँगा ।

तू ऐसाकामकर, जो/जिससे/जिसमें तू बड़ा आदमी बनेगा ।

वह अच्छा काम करता है, ताकि/इसलिए कि लोग उसका आदर करें ।

वह इसलिए सज्जन है कि लोग उसे भला मनुष्य माने ।

(कार्य या निमित्त (उद्देश्य) के अर्थ में कार्यकारणवाचक आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य के साथ 'कि/जिससे/जो/ जिसमें/ताकि/इसलिए कि/इसलिए ....कि क्रियाविशेषण आता है ।)

(५-इ) परिणाम या फल के अर्थ में : वह काम करता है, इसलिए दाम पाता है। मुझे लिखने की आदत है, इसलिए (/अतएव/अत:/सो) लिखते रहता हूँ। गायक गाता है, इसलिए/इससे/इस वास्ते/इस कारण हम सुनते हैं । मैंने इतना काम किया है कि मुझे अधिक से अधिक दाम मिलेगा ही । तू ऐसी दौड़ती है कि दौड़ में तेरा जीतना कठिन है। वह यहाँ तक पढ़ता है कि उसे परीक्षा में यश मिलेगा ही । (परिणाम या फल के अर्थ में कार्यकारण वाचक आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य के साथ 'इसलिए/अतएव/अत:/सो/ इससे/इस वास्ते/इस कारण' क्रियाविशेषण आता है । कभी परिणाम या फल के अर्थ में कार्यकारणवाचक मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में 'इसलिए/इतना/ऐसा/यहाँ तक' नित्यसंबंधी आता है और कार्यकारणवाचक आश्रित क्रियाविशेषण उपवाक्य में 'कि' आता है ।)

(५-ई) विरोध के अर्थ में : यद्यपि लड़की बीमार है, तो भी स्कूल आयी है। यद्यपि देशवासियों को देशभक्त बनना चाहिए, तथापि (/तो भी/परंतु/पर) कुछ लोग देशद्रोही बनते हैं । तू चाहे चाय पी ले, पर/परंतु तुझे दूध पीने का मजा नहीं मिलेगा। चाहे वह कैसा ही परिश्रमी क्यो न हो, परंतु/पर वह सारे काम कर नहीं पायेगा । तुम कितना भी क्यों न पढ़ो, तो भी तुम्हें परीक्षा में उत्तम यश नहीं मिलेगा। (विरोध के अर्थ में मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में 'तो भी/तथापि/पर/परन्तु/किंतु' क्रियाविशेषण आता है और आश्रित कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य में यद्यपि/चाहे/चाहे ....कैसा/कितना....क्यों क्रियाविशेषण आता है ।)

(५-उ) संकेत के अर्थ में : यदि (/अगर/कदाचित्/जो) तुम आते, तो हमारा काम बन जाता । जो तू अपने मन की बात बता देता, तो मैं तुझ पर विश्वास करता। (संकेत के अर्थ मे मिश्र वाक्य के मुख्य उपवाक्य में तो /तो भी क्रियाविशेषण आता है और आश्रित कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य में यदि/अगर/ कदाचित्/जो' क्रियाविशेषण आता है ।

(१८-५) संयुक्त वाक्य का अर्थबोधक वाक्य-संयोग

'संयुक्त वाक्य' एक ऐसा वाक्य होता है, जिसमे सरल वाक्य अर्थात् साधारण वाक्य मुख्य वाक्यों के रूप में जुडे रहते है । संयुक्त वाक्य मे जुडे हुए वाक्य समानाधिकरण उपवाक्य बने रहते है । इस प्रकार के समानाधिकरण उपवाक्य एक दूसरे के आश्रित नही रहते । कभी इनके आश्रित उपवाक्य इनके साथ जुड़े रहते है।

संयुक्त वाक्यों के समानाधिकरण उपवाक्य 'संयोजक संबंध' के आधार पर, 'विभाजक संबंध' के आधार पर, 'विरोधदर्शक संबंध' के आधार पर अथवा 'परिणाम बोधक संबंध' के आधार पर जुड़े रहते हैं । संयुक्त वाक्यों के समानाधिकरण उपवाक्यों का हर प्रकार का संबंध संबधित समानाधिकरण समुच्चयबोधकों पर आधारित होता है । इसलिए संयुक्त वाक्य के समानाधिकरण उपवाक्य चार प्रकार के बने रहते हैं ।

(१) संयोजक संबंध से जुड़े हुए समानाधिकरण उपवाक्य

सुनीत गाता है, उज्ज्वल पढ़ता है और राहुल खेलता है । तू आगे बढा और वह भाग गया । आशा आ गयी तथा उषा भी आ गयी । (और, तथा, एवं, व, भी 'संयोजक समुच्चयबोधक हैं ।)

(२) विभाजक संबंध से जुड़े हुए समानाधिकरण उपवाक्य

मैं गाना गाऊँगा अथवा चुप रहूँगा । न मैं जाऊँगा, न तू जाएगा । ('अथवा, या, वा, किंवा, कि,या...या, चाहे....चाहे, न ....न, न....कि, नहीं तो, क्या-क्या 'विभाजक समुच्चयबोधक है ।)

(३) विरोधदर्शक संबंध से जुडे हुए समानाधिकरण उपवाक्य

प्राण जाय पर वचन न जाय । मैं प्राध्यापक ही नहीं, किंतु (बल्कि) लेखक भी हूँ। बोलना आसाना होता है, लेकिन करना कठिन होता है । ('पर, परंतु, लेकिन मगर, किन्तु, बल्कि, अपितु, वरन्' ये विरोधदर्शक समुच्चयबोधक हैं ।)

(४) परिणामसूचक संबंध से जुड़े हुए समानाधिकरण उपवाक्य

वह भूखा था, इसलिए उसने रोटी खायी । मेरा उससे काम था, सो मै उसे मिलने गया । ('इसलिए, अतएव, अतः, सो, इस वास्ते, इससे, इस कारण' ये परिणामसूचक समुच्चयबोधक हैं ।)

यहाँ स्पष्ट होता है कि भाषा-व्यवहार में वाक्यार्थ अधिक महत्वपूर्ण होता है। वाक्यार्थबोधक के रूप में सरल वाक्य (साधारण वाक्य), मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य ये तीनों वाक्य महत्व के हैं ।

'सरल वाक्य' में जो अर्थबोधक भाषा-व्यवहार के लिए अपेक्षित 'पद-सयोग' बना रहता है, वही वाक्यार्थ का मूल आधार होता है । इसीलिए सरल वाक्य मे 'वाक्यार्थ' इस प्रकार बना रहता है -

(य) शब्द से मूल अर्थ बना रहता है ।

(र) शब्दों से मूल अर्थ बने रहते हैं ।

(ल) शब्द से बने पद से मूल अर्थ के साथ पदार्थ भी बना रहता है ।

(व) शब्दो से बने पदों से मूल अर्थों के साथ पदार्थ भी बने रहते है ।

(श) वाक्यरूपी 'अपेक्षित पद-संयोग' से शब्दो के मूल अर्थों के साथ पदार्थों पर भी आधारित वाक्यार्थ बना रहता है, जो मनुष्य के भाषा-व्यवहार मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है । मनुष्य अपने अर्थबोधक भाषा-व्यवहार से वाक्यार्थ ही दूसरो तक पहुँचाता रहता है । इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य अपने समाज के भीतर अपने अर्थबोधक भाषा-व्यवहार से 'वाक्यार्थ' का सम्प्रेषण' करता रहता है ।

सरल वाक्य मे जो अपेक्षित वाक्यार्थ होता है उसकी दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि वह वाक्यार्थ प्राय: अपने आप मे पूर्ण होता है । इस कारण से सरल वाक्य मे संयोजित वाक्यार्थ बहुत महत्त्वपूर्ण होता है । कभी एक सरल वाक्य की अपेक्षा एक से अधिक सरल वाक्य किसी एक ही वाक्यार्थ के बोधक बन जाते हैं। इससे मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य अस्तित्व में आ जाते है ।

'मिश्र वाक्य' मे वाक्यार्थ की दृष्टि से 'अर्थबोधक वाक्य-संयोग' महत्वपूर्ण होता है। इसीलिए एक मुख्य उपवाक्य के साथ एक आश्रित उपवाक्य या एक से अधिक आश्रित उपवाक्यों का बोध हो जाता है ।

'संयुक्त वाक्य' में भी विशिष्ट वाक्यार्थ की दृष्टि से ऐसा महत्वपूर्ण अर्थबोधक वाक्य संयोग होता है जो दो या दो से अधिक मुख्य समानाधिकरण उपवाक्यों पर आधारित होता है । जैसे, (१) ज्ञानराज गृहस्वामी है और लतिका गृहस्वामिनी है । (२) सुनीत गीत गाता है, उज्ज्वल पुस्तक पढ़ता है और राहुल खेल खेलता है । (पहले संयुक्त वाक्य मे दो तथा दूसरे संयुक्त वाक्य में तीन समानाधिकरण उपवाक्यों का संयोग है) । कभी संयुक्त वाक्य में मुख्य समानाधिकरण उपवाक्यों के साथ मिश्र वाक्य का भी संयोग बना रहता है । जैसे, मैं बोला कि वह मुझे पानी दे, परंतु उसने मुझे पानी नहीं दिया ।

(मुख्य उपवाक्य) (आश्रित उपवाक्य) (मुख्य उपवाक्य)

इस प्रकार मनुष्य के भाषा-व्यवहार में वाक्य की व्याकरणिक अर्थ- बोधकता विशेष महत्व की होती है ।

१९. वाक्य की योग्यतायुक्त अर्थबोधकता

जब भाषा-प्रयोजक के अनुसार वाक्य मे अपेक्षित अर्थाभिव्यक्ति के अनुकूल अर्थपूर्ण शब्दों पर आधारित पदो का मेल हो जाता है, तब वाक्य की योग्यतायुक्त अर्थबोधकता बनी रहती है । जैसे,

'चिड़ियां आकाश मे उड़ रही हैं ।'

इस वाक्य में 'चिड़ियाँ' यह आकाश में उडने की योग्यता रखने वाले पक्षी-विशेष का अर्थबोधक मूल शब्द से बना स्त्रीलिंग तथा बहुवचनबोधक पद है, जो इस वाक्य का अप्रत्यय कर्त्ता एवं प्रधान उद्देश्य है ।

इस वाक्य में 'उड़ रही है' यह साधारण विधेय रूपी समापिका सयुक्त क्रिया-पद चिड़ियों की उडने की क्रिया का अर्थबोधक विधान कर रहा है । इसलिए 'उड़ रही है' इस संयुक्त क्रिया-पद मे अपेक्षित अर्थाभिव्यक्ति की योग्यता है ।

'आकाश मे' यह अधिकरण कारक के विभक्ति-पर प्रत्यय से युक्त संज्ञा-पद स्थानवाचक क्रियाविशेषण के रूप में उस स्थान-विशेष का अर्थबोधक है जो रिक्त ही रिक्त है । तभी तो उस स्थान मे चिड़ियो की उडने की क्रिया हो रही है।

स्पष्ट है कि एक व्यापक वाक्यार्थ की दृष्टि से इस वाक्य में तीनो पदो की योग्यता तथा पारस्परिक अन्विति बिल्कुल सुसगत है । इसीलिए यह वाक्य अपने विशिष्ट व्यापक अर्थ (वाक्यार्थ) का बोधक बनने मे इस प्रकार सफल हुआ है -

(क) उडने की क्रिया चिड़ियो से ही हो रही है ।

(ख) चिड़ियो से उडने की क्रिया आकाश में ही हो रही है ।

(ग) चिड़ियो से उड़ने की क्रिया ही हो रही है ।

यदि उपर्युक्त वाक्य के तीन पदों में से एक पद या दो पदो की अपेक्षित अर्थ की दृष्टि से अयोग्यता होती, तो वाक्यार्थ मे असंगत बाधा उत्पन्न हो जाती । जैसे,

(१) **मछलियाँ** आकाश में उड़ रही हैं । (अपेक्षित वाक्यार्थ के लिए योग्यताहीन पद)

(२) **मछलियाँ तालाब में** उड रही हैं । (अपेक्षित वाक्यार्थ के लिए योग्यताहीन पद)

(३) चिड़ियाँ **तालाब में** उड़ रही है । (अपेक्षित वाक्यार्थ के लिए योग्यताहीन पद)

(४) चिड़ियाँ **तालाब में तैर रही है** । (अपेक्षित वाक्यार्थ के लिए योग्यताहीन पद)

(५) चिडियाँ आकाश मे **तैर रही हैं** । (अपेक्षित वाक्यार्थ के लिए योग्यताहीन पद)

यहाँ अपेक्षित वाक्यार्थ के लिए पहले वाक्य में 'मछलियाँ' यह योग्यताहीन पद है, क्योंकि मछली जीव-विशेष आकाश मे उड़ने की योग्यता नही रखता ।

दूसरे वाक्य में 'मछलियाँ' और तालाब में 'दोनो पद योग्यताहीन हैं, क्योंकि ये दोनों पद उड़ने की योग्यता के साथ संबंध नहीं रखते ।

तीसरे वाक्य मे 'तालाब में' योग्यताहीन पद है, क्योंकि तालाब रिक्त नही होता, वह तो पानी से भरा होता है, इसलिए वह उड़ने की योग्यता के साथ संबंध नहीं रखता ।

चौथे वाक्य में 'तालाब में' और 'तैर रही हैं' दोनो पद योग्यताहीन हैं, क्योंकि कर्तारूपी पद 'चिड़ियाँ' रिक्त आकाश और उड़ने की क्रिया के साथ ही संबंध रखता है ।

पाँचवें वाक्य में 'तैर रही हैं' यह क्रिया-पद योग्यताहीन पद है, क्योंकि कर्तारूपी चिड़ियाँ पद आकाश में उड़ने की क्रिया के साथ ही संबंध रखता है ।

स्पष्ट है कि वाक्य की योग्यतायुक्त अर्थबोधकता अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, जो निम्नलिखित वाक्यो में है -

(अ) चिड़ियाँ आकाश में उड़ रही है ।

(आ) मछलियाँ तालाब मे तैर रही हैं ।

इस प्रकार अपेक्षित अर्थाभिव्यक्ति के लिए वाक्य में योग्यतायुक्त सार्थकता का होना अत्यावश्यक है । भाषा का प्रयोग करने वाला विशिष्ट अर्थाभिव्यक्ति की अपनी आकांक्षा (अपेक्षा) की पूर्ति के लिए ही वाक्य में योग्यतायुक्त सार्थ पदों का संयोजन करता है, जिससे अपने आप वाक्य की योग्यतायुक्त अर्थबोधकता बनी रहती है ।

२०. वाक्य की उद्‌देश्य एवं विधेयाश्रित अर्थबोधकता

'सरल वाक्य' अर्थात् 'साधारण वाक्य' की अर्थबोधकता वाक्य के उद्‌देश्य और विधेयाश्रित पदो पर आधारित होती है ।

वाक्य मे जिसके विषय में विधान होता है, उसे सूचित करने वाले पद या पद-बंध को 'उद्‌देश्य' माना जाता है और जिसके द्वारा विधान होता है, उसे सूचित करने वाले पद या पद-समुदाय को 'विधेय' माना जाता है ।

साधारण वाक्य का उद्‌देश्यसूचक पद 'साधारण उद्‌देश्य' का अर्थबोधक होता है। कभी साधारण उद्‌देश्य का गुणवाचक विस्तार करने के लिए एक या एक से अधिक विशेष्य-विशेषण पद आकर 'उद्‌देश्यवर्धक' या 'उद्‌देश्यविस्तारक' का अर्थबोधक बने रहते है ।

साधारण वाक्य का विधेयसूचक पद 'साधारण विधेय' का अर्थबोधक होता है। साधारण वाक्य का जो अकर्मक या सकर्मक क्रिया-पद होता है, वही वाक्य की समापिका

क्रिया के रूप में 'साधारण विधेय' का अर्थबोधक होता है ।

एक कर्मसूचक पद या सप्रत्यय गौण कर्म और अप्रत्यय मुख्य कर्म के रूप मे द्विकर्मसूचक पद सकर्मक 'साधारण विधेय' के 'पूरक' का अर्थबोधक बने रहते हैं। इसीलिए उन्हे 'साधारण विधेय' के पूर्व 'विधेयकपूरक' के रूप मे जोड़ दिया जाता है। 'विधेयपूरक' में पहला स्थान सप्रत्यय गौण कर्म को दिया जाता है और दूसरा स्थान अप्रत्यय मुख्य कर्म को दिया जाता है ।

'उद्‌देश्यपूर्ति पद' (कर्तृपूर्ति पद ही) अपूर्ण अकर्मक साधारण विधेय के 'पूरक' का अर्थबोधक बना रहता है और 'कर्मपूर्ति पद' भी अपूर्ण सकर्मक साधारण विधेय के 'पूरक' का अर्थबोधक बना रहता है । इसीलिए साधारण विधेय के पूर्व उद्‌देश्य-पद के बाद उद्‌देश्यपूर्ति पद को और मुख्य कर्म-पद के बाद कर्मपूर्ति पद को भी 'विधेयपूरक' के रूप में जोड़ दिया जाता है ।

इस प्रकार 'कर्म-पद' और 'पूर्ति-पद' साधारण विधेय के 'विधेयपूरक' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'पूर्ति-पद' विधेय-विशेषण का भी अर्थबोधक बने रहते हैं।

साधारण विधेय अर्थात् समापिका क्रिया का विस्तार करने वाले क्रिया विशेषण-पद 'विधेयविस्तारक' का अर्थबोधक बने रहते हैं, जिन्हें साधारण वाक्य में समापिका क्रिया के पूर्व कहीं भी जोड़ दिया जाता है ।

स्पष्ट है कि साधारण वाक्य की अर्थबोधकता वाक्य के उद्‌देश्य एवं विधेयाश्रित पदो पर आधारित होती है, जिसे कुछ वाक्यों की सहायता से 'तालिका' के रूप में भी निम्नांकित रीति से देखा जा सकता है ।

(अ) कर्तृवाच्य वाक्य :

१- अकर्मक वाक्य : चतुर राहुल आज मैदान में तेज दौड़ा ।
२- अपूर्ण अकर्मक वाक्य : अब सलोना सुनीत वकील बन गया ।
३- अपूर्ण अकर्मक वाक्य : वहाँ एक फूल बहुत सुन्दर है ।
४- एक कर्मक वाक्य : होनहार उज्ज्वल उपयोगी पुस्तक ध्यान से पढ रहा है।
५- एक कर्मक वाक्य : लड़की ने एक गीत गाया ।
६- अपूर्ण एक कर्मक वाक्य : मुझे एक लड़की अति सुन्दर लगी ।
७- द्विकर्मक वाक्य : मैंने अपने मित्र को एक पत्र डाक से भेजा ।
८- द्विकर्मक वाक्य : हमे गरीब छात्रों को ये पुस्तकें देनी है ।

(आ) कर्मवाच्य वाक्य :

९- एक कर्मक वाक्य : वह पुस्तक आज भी पढ़ी गयी ।
१०- एक कर्मक वाक्य . लडकियो को घर बुलाया गया ।
११- अपूर्ण एक कर्मक वाक्य : मुझे सुन्दर बनाया गया ।
१२- द्विकर्मक वाक्य : छात्रो को व्याकरण सिखाया गया ।

(इ) भाववाच्य वाक्य :

१३. बीमारी के कारण दौड़ा नही जाता ।

वाक्य क्रम	उद्देश्य		विधेय			
			विधेयक पूरक			
	साधारण उद्देश्य	उद्देश्य वर्धक	साधारण विधेय	कर्म	पूर्ति	विधेयविस्तारक
१-	राहुल	चतुर	दौड़ा	-	-	आज (काल), मैदान में (स्थान) तेज (रीति)
२-	सुनीत	सलोना	बन गया	-	वकील	अब (कालवाचक)
३-	फूल	एक	है	-	बहुत सुन्दर	वहाँ (स्थान वाचक)
४-	उज्वल	होनहार	पढ़ रहा है	उपयोगी पुस्तक	-	ध्यान से (रीतिवाचक)
५ -	लड़की ने	-	गाया	एक गीत	-	-
६-	मुझे	-	लगी	एक लड़की		अति सुन्दर -
७-	मैंने	-	भेजा	अपने मित्र को एक पत्र		डाक से (साधनवाचक)
८-	हमें,	-	देनी हैं	गरीब छात्रों को, ये पुस्तकें		- -
९-	पुस्तक	वह	पढ़ी गयी	-	-	आज भी (कालवाचक)
१०-	लड़कियों को	-	बुलाया गया	-		घर (स्थानवाचक)
११-	मुझे	-	बनाया गया	-	सुन्दर	-
१२-	छात्रों को	-	सिखाया गया	व्याकरण		- -
१३-	(लुप्त)	-	दौड़ा नहीं जाता		-	बीमारी के कारण (कारण वाचक)

'मिश्र वाक्य की भी अर्थबोधकता' मुख्य उपवाक्य और आश्रित उपवाक्य के उद्देश्य एवं विधेयाश्रित पदों पर ही आधारित होती है । जैसे, 'वह लड़का छात्र निकला, जो वहाँ पुस्तक पढ़ रहा है ।' इस मिश्र वाक्य में 'वह लड़का छात्र निकला' यह मुख्य उपवाक्य है, जिसमें 'लड़का' साधारण उद्देश्य है, 'वह' उद्देश्यवर्धक है, 'छात्र' (उद्देश्य) पूर्ति है और 'निकला' साधारण विधेय अर्थात् समापिका क्रिया है ।

'जो वहाँ पुस्तक पढ़ रहा है' यह आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के 'लड़का' इस साधारण उद्देश्य का विशेषणात्मक अर्थबोधक है । इसीलिए इस विशेषण उपवाक्य में संबंधवाचक सर्वनाम 'जो' ('लड़का' इस पद से संबंधित साधारण उद्देश्य का) उद्देश्यवर्धक है, 'वहाँ' स्थानवाचक विधेयविस्तारक है, 'पुस्तक' कर्म है और 'पढ़ रहा है' साधारण विधेय है ।

'जब वर्षा होती है, तब हम हर्षित होते हैं ।' इस मिश्र वाक्य में 'तब हम हर्षित होते है' यह मुख्य उपवाक्य है, जिसमें 'तब' कालवाचक विधेयविस्तारक है, 'हम' साधारण उद्देश्य है, 'हर्षित' (उद्देश्य) पूर्ति है और 'होते हैं' साधारण विधेयहै।

'जब वर्षा होती है' यह आश्रित कालवाचक क्रिया विशेषण उपवाक्य है, जिसमें 'जब' कालवाचक विधेयविस्तारक है 'वर्षा' साधारण उद्देश्य है और 'होती है' साधारण विधेय है ।

यथार्थता के कारण 'मूर्ति' बनाने की क्रिया करने की क्षमता के आधार पर मनुष्य 'मूर्तिकार' का अर्थबोधक बना रहता है । 'चित्र' बनाने की क्रिया करने की क्षमता के आधार पर मनुष्य' चित्रकार' का अर्थबोधक बना रहता है । 'संगीत' की साधना करने की क्षमता के आधार पर मनुष्य 'संगीतकार' का अर्थबोधक बना रहता है । गाने की क्रिया करने की क्षमता के आधार पर मनुष्य 'गायक' का अर्थबोधक बना रहता है । नृत्य करने की क्रिया-क्षमता के आधार पर मनुष्य 'नर्तक' का अर्थबोधक बना रहता है । 'कलाकृति' की रचना करने की क्रिया-क्षमता के आधार पर मनुष्य 'कलाकार' या 'कलावंत' का अर्थबोधक बना रहता है । 'कविता' या 'काव्य' की रचना करने की क्रिया-क्षमता के आधार पर मनुष्य 'कवि' का अर्थबोधक बना रहता है । 'साहित्य' का सृजन करने की क्रिया-क्षमता अर्थात् सृजनात्मक क्रिया-क्षमता के आधार पर मनुष्य 'साहित्यकार' का अर्थबोधक बना रहता है।

यहाँ पर स्पष्ट होता है कि मनुष्य अपनी अलग-अलग क्षमताओं के आधार पर जितनी क्रियाएं करता रहता है, उतने ही उसके रूप बने रहते है । इसका अर्थ यह हुआ कि एक ही मनुष्य अलग-अलग क्रियाएं करने की क्षमताओं के आधार पर अपनी अलग-अलग 'पहचान' बना रखता है ।

(२) दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मनुष्य को अलग-अलग रूप में अलग-अलग क्रियाएं कर सकने की विशिष्ट-विशिष्ट क्षमताएं जन्म के साथ ही 'प्रकृति की देन' के रूप में या 'ईश्वर की देन' के रूप में मिली रहती हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य की अलग-अलग क्रियाएं कर सकने की विशिष्ट-विशिष्ट क्षमताएं प्रायः अपने मूल रूप में 'प्रकृतिप्रदत्त' या 'ईश्वरप्रदत्त' होती हैं । फिर मनुष्य अपने जीवन में उत्तमोत्तम संस्कारों के बल पर 'प्रकृतिप्रदत्त' या 'ईश्वरप्रदत्त' अपनी क्रिया-क्षमताओं का 'आकर्षक', 'रमणीय' अर्थात् 'सुन्दर' विकास करने मे सफल हो जाता है । इसीलिए मनुष्य ही समाज, सभ्यता और संस्कृति को अपने जीवन में बनाए रखता है ।

(३) तीसरा अत्यधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जब मनुष्य को कलाकार या 'कलावंत' कहा जाता है, तब मनुष्य की ऐसी क्षमता का अर्थबोध होता है, जिसके आधार पर मनुष्य 'कलाकृति' की रचना करने की क्रिया करता है । इसका अर्थ यह है कि प्रकृति या ईश्वर 'कलाकार' या 'कलावंत' कहलाने वाले मनुष्य को जन्म के साथ ही 'एक विशेष देन' के रूप में, 'एक असाधारण देन' के रूप में, 'एक रमणीय देन' के रूप में अर्थात् 'एक सुन्दर देन' के रूप मे 'कलाकृति की रचना करने की क्षमता' प्रदान कर देता है ।

(४) चौथा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मनुष्य को 'प्रकृति द्वारा' या 'ईश्वरद्वारा' साधारण क्रियाएं करने की क्षमताओंके साथ-साथ 'कुछ विशेष' अर्थात् 'असाधारण क्रियाएं{ करने की क्षमताए भी मिली रहती हैं ।

(५) पाँचवां तथ्य यह है कि विभिन्न क्रिया-क्षमताओं की 'प्रकृतिप्रदत्त' या 'ईश्वरप्रदत्त देन' के बल पर 'मनुष्य तीन प्रकारों की क्रियाएं' करता रहता है ।

(अ) मनुष्य की पहले प्रकार की क्रियाए 'सहज-स्वाभाविक क्रियाएं' होती है, जिनके मूल मे मनुष्य की 'सहज-स्वाभाविक क्षमताएं' कार्यरत होती है । जैसे, खाना, पीना, सोना उठना, बैठना, बोलना, चलना, दौड़ना, हँसना, रोना, प्रेम करना, उत्साही होना, विस्मित होना, क्रोध करना, घृणा करना, भयभीत होना, भक्ति करना, विरक्त होना आदि मनुष्य की सहज-स्वाभाविक क्रियाएं हैं, जिनके मूल में मनुष्य के हृदयस्थ भाव कार्यरत रहते हैं ।

(आ) मनुष्य की दूसरे प्रकार की क्रियाओं के होने के मूल में मनुष्य की 'प्रकृतिप्रदत्त या 'ईश्वरप्रदत्त' बुद्धि (प्रज्ञा) सक्रिय बनी रहती है । इसीलिए दूसरे प्रकार की क्रियाएं मनुष्य की 'बुद्धि' अर्थात् 'विचार करने की क्रिया की शक्ति (क्षमता)' के आधार पर ज्ञान-विज्ञान अर्थात् तर्क की क्रियाएं बनी रहती है ।

(इ) मनुष्य की तीसरे प्रकार की क्रियाओं के होने के मूल में मनुष्य की 'प्रकृतिप्रदत्त या 'ईश्वरप्रदत्त' कल्पना सक्रिय बनी रहती है । इसीलिए तीसरे प्रकार की क्रियाएँ मनुष्य की 'कल्पना' अर्थात् 'नयी नयी बातें सोचने की क्रिया करने वाली शक्ति (क्षमता) के आधार पर कला की क्रियाएँ बनी रहती हैं ।

(६) छठा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि कला की क्रियाओं के मूल मे हृदय (भाव), बुद्धि और कल्पना इन तीनों की भी सक्रियता ब‌ुत महत्वपूर्ण बनी रहती है । कला की क्रियाओं के मूल में सर्वप्रथम मनुष्यरूपी कलाकार के हृदयस्थ भावो की तीव्रता सक्रिय बन जाती है और आवश्यकता के अनुसार उस कलाकार की विचारशील बुद्धि समुचित संगति से तथा उस कलाकार की रचनात्मक अर्थात् सर्जनात्मक कल्पना नयी नयी बातो की उद्भावनाओं से अवश्यंभावी सहयोग देती रहती है । केवल कलाकार रूपी मनुष्य की कलात्मक क्रियाओं मे ही भाव, बुद्धि और कल्पना इन तीनों की एकत्रित रीति से अर्थात् समन्वित रीति से सक्रियता बनी रहती है, जिसके फलस्वरूप विशेष, असाधारण, रुचिर, चित्ताकर्षक, रमणीय अर्थात् सुन्दर कलाकृतियो का सृजन हो जाता है । इसका अर्थ यह हुआ कि साधारण क्रियाएँ करने की साधारण क्रिया-क्षमता के अतिरिक्त केवल कलाकार रूपी मनुष्य को भाव, बुद्धि और कल्पना की अवश्यंभावी 'समन्वित क्रिया-क्षमता' की असाधारण देन अर्थात् विशेष देन अर्थात् चित्ताकर्षक देन अर्थात् रमणीय देन अर्थात सुन्दर देन अर्थात् आनन्दप्रद देन 'प्रकृति द्वारा' या 'ईश्वर द्वारा' मिली रहती है ।

(७) सातवाँ विशेष तथ्य यह है कि 'प्रकृति प्रदत्त'या 'ईश्वरप्रदत्त' भाव, बुद्धि और कल्पना की 'अवश्यंभावी समन्वित क्रिया-क्षमता' की असाधारण, विशेष, रमणीय, सुन्दर और आनन्दप्रद देन के बल पर ही 'कलाकार रूपी मनुष्य' अपनी सुन्दर अर्थात् कलात्मक क्रियाओं के रूप मे सुन्दर कलाकृतियो का स्रष्टा अर्थात् रचयिता अर्थात् निर्माता बना रहता है । एक यथार्थता यह भी है कि 'भाव, बुद्धि और कल्पना की अवश्यंभावी समन्वित क्रिया-क्षमता' की मात्रा कम-ज्यादा बनी रहती है । इसीलिए इस प्रकार की अर्थात् 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' की कम मात्रा से कोई 'छोटा कलाकार' बना रहता है, मध्यम मात्रा से कोई मध्यम कलाकार बना रहता है और अधिक मात्रा से कोई 'उत्कृष्ट' तथा 'महान कलाकार' बना रहता है ।

(८) आठवाँ तथ्य यह है कि 'छोटे' अर्थात् 'साधारण श्रेणी' के कलाकार की 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' साधारण ही होती है । इसका अर्थ यह हुआ कि साधारण कलाकार की 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' साधारण भाव-स्थिति, साधारण बुद्धि-स्थिति और साधारण कल्पना -स्थिति पर आधारित होती है ।

मध्यम कलाकार की 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' मध्यम भाव-स्थिति, मध्यम बुद्धि-स्थिति और मध्यम कल्पना-स्थिति पर आधारित होती है । उत्कृष्ट तथा महान कलाकार की 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' उत्कृष्ट भाव-स्थिति उत्कृष्ट बुद्धि-स्थिति और उत्कृष्ट कल्पना-स्थिति पर आधारित होती है । इसमे तीव्र भाव-स्थिति, विचारप्रवृत्त बुद्धि-स्थिति और

उद्‌भावनाप्रवण कल्पना-स्थिति का सुंदर समन्वय बना रहता है ।

(९) नौवाँ तथ्य यह है कि 'प्रकृतिप्रदत्त' या 'ईश्वरप्रदत्त' असाधारण अर्थात् सुन्दर 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' के बल पर कोई मनुष्य मूर्तिकार के रूप में सुन्दर मूर्तियों का स्रष्टा बन पाता है, कोई मनुष्य चित्रकार के रूप मे सुंदर चित्रो का स्रष्टा बन पाता है; कोई मनुष्य संगीलकार के रूप में सुंदर सगीत का सृजक बन पाता है; कोई मनुष्य कवि के रूप में सुन्दर काव्य (कविताओं) का रचयिता बन पाता है और कोई मनुष्य साहित्यकार के रूप में सुन्दर साहित्य का रचनाकार बन पाता है । मूर्तिकार, चित्रकार, संगीलकार, कवि और साहित्यकार ये सभी अपनी असाधारण अर्थात् सुनदर 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' के आधार पर 'कलाकार' बने रहते हैं । इसीलिए मूर्तिकार पत्थर आदि को असाधारण अर्थात् सुन्दर मूर्ति का रूप प्रदान करता है ; चित्रकार रिक्त स्थान को रग-रेखाओं की सहायता से असाधारण अर्थात् सुन्दर चित्र का रूप प्रदान कता है ; संगीतकार (या गायक) अपनी आवाज को असाधारण सुरीली बना देता है , कवि अपने भाषा-प्रयोग को असाधारण अर्थात् सुन्दर काव्य (कविता) का रूप प्रदान करता है और साहित्यकार भी अपने भाषा-प्रयोग को असाधारण अर्थात् सुन्दर साहित्य का रूप प्रदान करता है ।

(१०) दसवाँ तथ्य यह है कि अपनी 'प्रकृतिप्रदत्त' या 'ईश्वरप्रदत्त' असाधारण अर्थात् सुन्दर 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' के बल पर ही कोई मनुष्य कलाकार के रूप में दूसरे साधारण लोगो से अलग, निराला, विशेष और असाधारण बना रहता है । कलाकार का साधारण लोगों से अलग, निराला, विशेष और असाधारण बने रहना ही उसमें सुन्दर 'कलात्मक क्रिया-क्षमता के होने का परिचायक होता है । इस प्रकार कलाकार ही अपनी असाधारण अर्थात् सुन्दर 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' के बल पर सुन्दर अर्थात् आनंदप्रद कलाकृति का सृजन करके 'सौन्दर्य का स्रष्टा' बना रहता है। तात्पर्य यह है कि 'सौन्दर्य का स्रष्टा' बने रहना, यह कलाकार की बहुत बड़ी विशेषता होती है ।

(११) ग्यारहवाँ तथ्य यह है कि मनुष्य रूपी 'कलाकार' अपनी 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' अर्थात् 'विशिष्ट भाव-स्थिति, 'विशिष्ट बुद्धि-स्थिति' तथा 'विशिष्ट कल्पना-स्थिति' की 'समन्वित' एवं 'समुचित सक्रियता' के बल पर ऐसी 'कलाकृति' का सृजन करता है, जो सुन्दर अर्थात् आनन्दप्रद तो होती ही है, साथ-साथ वह विशिष्ट अर्थ का बोधक भी होती है ।

वास्तव में अपनी प्रयोजनपूर्ति (उद्‌देश्यपूर्ति) के लिए कलाकृति को विशिष्ट अर्थ का बोधक बनकर रहना अत्यावश्यक होता है । क्योंकि कलाकार अपनी कलाकृति को किसी न किसी प्रयोजनरूपी (उद्‌देश्यरूपी) अर्थ का बोधक बनाने के लिए ही अपनी 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' के बल पर सक्रिय हो जाता है । कलाकार अपनी विशिष्ट भाव-स्थिति, विशिष्ट बुद्धि-स्थिति तथा विशिष्ट कल्पना-स्थिति के बल पर कलाकृति को समन्वित रूप से अर्थबोधक, सुन्दर और आनन्दप्रद बनाता है । इसका अर्थ यह हुआ कि कलाकार की इच्छा के अनुसार विशिष्ट प्रयोजन की पूर्ति के अनुकूल 'कलाकृति का विशिष्ट अर्थबोधक होना' ही उसका 'सुन्दर होना है' और 'आनन्दप्रद होना भी है ।

कलाकार अपनी इच्छा के अनुसार विशिष्ट प्रयोजन की पूर्ति के लिए कलाकृति को जिस 'विशिष्ट अर्थ का बोधक बनाता है, वह विशिष्ट अर्थ इसलिए सुन्दर अर्थात् आनन्दप्रद

होता है कि वह विशिष्ट अर्थ समन्वित रूप से भावभीना,बुद्धिजन्य संगत विचारयुक्त और कल्पना की उडान संग समुज्ज्वल एवं सभाव्य होता है । यही 'विशिष्ट अर्थ' कलाकृति के सृजन के प्रयोजन अर्थात् उद्देश्य अर्थात् आशय अर्थात् कथ्य अर्थात् प्रतिपाद्य के रूप मे कलाकृति के अंग-अग में व्याप्त रहता है ।

(१२) बारहवाँ तथ्य यह है कि जो 'विशिष्ट अर्थ' कलाकृति के सृजन के प्रयोजन के रूप मे कलाकृति के अग-अंग मे व्याप्त रहता है वह सर्वप्रथम कलाकार के हृदय मे उद्दीप्त किसी भाव मे सराबोर हुआ रहता है । इसका अर्थ यह है कि कलाकृति के सृजन के लिए सर्वप्रथम कलाकार के हृदय में किसी भाव का उद्दीप्त होना आवश्यक होता है । यह तभी हो सकता है जब कलाकार का हृदय बहुत प्रभावित हो जाता है । कलाकार अपने जीवन में किसी विशिष्ट अनुभूति से इस तरह प्रभावित हो जाता है कि उसके हृदय मे विशिष्ट भाव जाग उठता ही है और वही भाव धीरे-धीरे तीव्र होने लगता है । यही भाव कलाकार की दृष्टि मे विशिष्ट अर्थ का रूप धारण करने लगता है और कलाकृति केसृजन के प्रयोजन का प्रभावशाली 'भावात्मक अंग' बन जाता है । इसीलिए कलाकृति के प्रयोजनरूपी विशिष्ट अर्थ का भावभीना होना नितान्त स्वाभाविक है ।

कलाकृति के प्रयोजन रूपी विशिष्ट अर्थ को भावभीना होकर रहने की दृष्टि से ही भारतीय काव्यशास्त्र के रस-सिद्धांत में मनुष्य के हृदयस्थ जिन-जिन भावों को स्वीकार किया गया है, वे सभी भाव महत्वपूर्ण है । उन भावों में से कुछ भावो को और उन भावो से (विभाजन व्यापार के फलस्वरूप) जिनकी निष्पत्ति होती है उन रसों को इस प्रकार स्वीकार किया गया है -

(१२-१) 'प्रेम' (रति)	स्थायी भाव	श्रृंगार रस
(१२-२) 'उत्साह'	स्थायी भाव	वीर रस
(१२-३) 'हास'	स्थायी भाव	हास्य रस
(१२-४) 'विस्मय'	स्थायी भाव	अद्भुत रस
(१२-५) 'शोक'	स्थायी भाव	करुण रस
(१२-६) 'क्रोध'	स्थायी भाव	रौद्र रस
(१२-७) 'भय'	स्थायी भाव	भयानक रस
(१२-८) 'जुगुप्सा' (घृणा)	स्थायी भाव	वीभत्स रस
(१२-९) 'शम (निर्वेद)	स्थायी भाव	शान्त रस
(१२-१०)'अपत्यप्रेम (वत्सल)	स्थायी भाव	वात्सल्य रस
(१२-११) 'भगवत्प्रेम'	स्थायी भाव	भक्ति रस

जीवन की स्वानुभूति के प्रभाव के फलस्वरूप हृदय में उद्दीप्त स्थायीभाव परिपुष्ट होकर रस मे परिणत हो जाए इसलिए अनुकूल-अनुकूल स्थायीभाव का साथ देने वाले व्यभिचारी भावों अर्थात् संचारी भावो को भी इस प्रकार स्वीकार किया गया है -

हर्ष (आनन्द, आल्हाद, उल्लास,प्रसन्नता), लज्जा (व्रीडा, संकोच, नम्रता), चपलता (चापल्य) उत्सुकता (औत्सुक्य) आवेग (आवेश),धैर्य (धृति), निरक्ति (वैराग्य, विराग निर्वेद), मति, वितर्क, विबोध (प्रबोध), स्मृति (स्मरण), दैन्य (दीनता, विनय) , व्याधि (पीडा), त्रास, विषाद (उदासी नैराश्य), शंका (संशय), चिन्ता, मोह, स्वप्न गर्व (घमण्ड)

असूया (ईर्ष्या), उग्रता, मद (नशा का भाव), ग्लानि (शिथिलता, अनुत्साह), उन्माद (पागलपन); आलस्य (सुस्ती), निद्रा, श्रम, जड़ता, अमर्ष (असहिष्णुता), मरण (निश्चेष्टता) आदि ।

इस प्रकार भावभीना होना कलाकृति (यहाँ विशेषकर काव्यकृति) के प्रयोजन रूपी विशिष्ट अर्थ की स्वाभाविकता ही होती है । इसी तथ्य के महत्व को स्वीकार करके ही सुप्रसिद्ध कवि 'हरिवंशराय बच्चन' ने कहा है -

जड़ जगत में वास कर भी, जड़ नहीं व्यापार कवि का
भावनाओं से विनिर्मित और ही संसार कवि का ।

यहाँ भावनाओ का सम्बन्ध कवि के हृदयस्थ भावों से ही है,जिनके कारण काव्यकृति रूपी कलाकृति का प्रयोजन रूपी विशिष्ट अर्थ भावभीना बनकर रहता है। यहाँ 'हरिवंशराय बच्चन ने पहली काव्य-पंक्ति में कवि के 'चेतन व्यापार' अर्थात् 'विशेष व्यापार' का महत्वपूर्ण समर्थन किया है और दूसरी काव्य-पंक्ति में 'भेदकातिशयोक्ति अलकार' का समुचित प्रयोग कर 'कवि के काव्यरूपी संसार को भावनाओं से विनिर्मित (रचित) माना है' और व्यजित किया है कि काव्यकृति रूपी कलाकृति के सृजन के लिए सर्वप्रथम कवि के हृदय में भाव या भावों का उद्दीप्त होना अनिवार्य है । वह उद्दीप्त भाव ही कवि रूपी कलाकार की दृष्टि से 'विशिष्ट अर्थ' का रूप धारण करता रहता है और काव्यकृति रूपी कलाकृति के सृजन के प्रयोजन का प्रभावशाली तथा अत्यावश्यक 'भावात्मक अंग' बना रहता है ।

अत्यधिक महत्त्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि कलाकृति के सृजन की प्रक्रिया 'कलाकार की विशिष्ट भाव-स्थिति' से ही आरम्भ होती है और 'सम्पूर्ण कलाकृति मे वही विशिष्ट भाव-स्थिति व्याप्त रहती है ।

(१३) तेरहवॉं तथ्य यह है कि जो 'विशिष्ट अर्थ' कलाकृति के सृजन का प्रयोजन बनकर रहता है, वह सर्वप्रथम कलाकार के हृदय में उद्दीप्त भाव में भीगा रहता है और तत्पश्चात् कलाकार की 'विशिष्ट बुद्धि-स्थिति से उत्पन्न 'संगत विचार' के साथ जुड़ जाता है । इसी के परिणाम स्वरूप कलाकृति सुसंगतियुक्त, विश्वसनीय और महत्त्वपूर्ण बन जातीहै । इसी वास्तविकता को ध्यान में रखकर ही संत तुलसीदास ने कविता (काव्य) रूपी कलाकृति के महत्व की दृष्टि से हृदय (भाव) और मति (बुद्धि) के समीचीन संयोग को स्वीकार करते हुए कहा है -

'हृदय सिन्धु मति सीप समाना, स्वाती सारद कहहिं सुजाना ।
जो बरसहि वर वारि विचारू, होहि कवित मुक्तामणि चारू ।।'

यहाँ सन्त कवि तुलसीदास ने 'रूपक' अलंकार अत्यन्त समुचित प्रयोग कर कविता रूपी सुन्दर मोती'(मुक्तामणि) के सृजन में हृदय (भाव) रूपी सागर को और उसी सागर में अपने महत्वपूर्ण अस्तित्व को बनाए रखने वाली उस मति (बुद्धि) रूपी सीप को स्वीकार किया है, जिसमे स्वाति नक्षत्र के श्रेष्ठ जल रूपी विचार के परिणामस्वरूप सुन्दर कविता (काव्य) रूपी कलाकृति का सृजन हो जाता है । इसका अर्थ यह है कि कलाकृति के सृजन के प्रयोजन रूपी 'विशिष्ट अर्थ' से संबंधित भावरूपी सागर का महत्व बढ़ाने के लिए बुद्धि से विचार रूपी श्रेष्ठ जल का बरसना आवश्यक है ही।

(१४) चौदहवां तथ्य यह है कि जो 'विशिष्ट अर्थ' कलाकृति के सृजन का प्रयोजन बनकर रहता है, वह सर्वप्रथम कलाकार की विशिष्ट भाव-स्थिति के फलस्वरूप 'भावभीना' बना रहता है, तत्पश्चात् वह कलाकार की विशिष्ट बुद्धि-स्थिति के फलस्वरूप 'संगत विचार से युक्त होकर रहता है और फिर वही कलाकार की विशिष्ट कल्पना-स्थिति की उड़ान के साथ सम्पृक्त हो जाता है । इसी वास्तविकता का कुछ निर्देश कवि 'हरिवंशराय बच्चन' की काव्य-पंक्तियों में इस प्रकार हुआ है -

'भावुकता अंगूर लता से, खींच कल्पना की हाला,
कवि साकी बनकर आया है, भरकर कविता का प्याला ।'

इन काव्य-पंक्तियों में 'रूपक' अलंकार का सुन्दर प्रयोग कर कवि 'बच्चन' ने कविता रूपी कलाकृति के सृजन के लिए कवि की विशिष्ट भाव-स्थिति और विशिष्ट कल्पना-स्थिति के अनिवार्य संयोग को ही व्यंजित किया है ।

वास्तव में कलाकृति के सृजन के लिए पहले पहल कलाकार को 'भावुक बनाने वाली 'विशिष्ट भाव-स्थिति' आवश्यक होती है; फिर कलाकार को 'विचारशील बनाने वाली 'विशिष्ट बुद्धि-स्थिति (प्रज्ञा-स्थिति) आवश्यक होती है और साथ ही कलाकार को अनुरूप नयी नयी बाते दिखाने वाली विशिष्ट कल्पना-स्थिति भी अत्यावश्यक होती है ।

(१५) पन्द्रहवां तथ्य यह है कि विशिष्ट भाव-स्थिति, विशिष्ट बुद्धि-स्थिति और विशिष्ट कल्पना-स्थिति के स्वाभाविक तथा समन्वित परिणाम के रूप में कलाकार के मन में एक ऐसा 'विशिष्ट अर्थ' उभरता है, जो कलाकृति के सृजन का प्रयोजन बन जाता है और फिर वही कलाकार के द्वारा सृजित पूरी कलाकृति में व्याप्त रह जाता है ।

(१६) सोलहवां अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कलाकार के द्वारा कलाकृति के सृजन के रूप में जो 'विशिष्ट अर्थ' पूरी कलाकृति में व्याप्त रहता है, वह अपने मूल रूप में असाधारण, विशेष,चित्ताकर्षक, मनोहर, रमणीय, सुन्दर अर्थात् आनन्दप्रद होता है । इसीलिए मनुष्यरूपी 'कलाकार की कलात्मक क्रिया रूपी कलाकृति' अपने आप 'सुन्दर' बनकर रहती है । अपने में व्याप्त प्रयोजन रूपी 'विशिष्ट अर्थ' से सुन्दर अर्थात् आनन्दप्रद बनकर रहने में कलाकृति की समीचीन सार्थकता है ।

पूर्व निर्देशित कुछ मूलभूत तथ्यों में से छठे क्रम के तथ्य से लेकर सोलहवें क्रम के तथ्य तक जो कुछ विवेचन हुआ है उससे यही स्पष्ट हुआ है कि मनुष्य अपनी ईश्वरप्रदत्त या प्रकृतिप्रदत्त 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' के बल पर ऐसी कृति अर्थात् क्रिया करता है, जो कला (अर्थात् कलाकृति अर्थात कलात्मक क्रिया) के रूप मे अस्तित्व में आ जाती है । इसका अर्थ यह है कि मनुष्यरूपी कलाकार से अपनी 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' के फलस्वरूप जो 'कला' अस्तित्व मे आ जाती है, वह सबसे पहले 'अभिव्यक्ति' होती है ।

२. कला : अपने मूल रूप में अभिव्यक्ति

वास्तव मे मनुष्य अपने जन्म से ही 'अभिव्यक्ति की क्रिया' करता रहता है। मनुष्य से कुछ न कुछ अभिव्यक्त किये बिना रहा नही जाता । भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का प्रभाव, भिन्न-भिन्न बातों का प्रभाव और भिन्न-भिन्न अनुभूतियों का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय पर पडता रहता है । मनुष्य अपने पर पड़े प्रभाव की ज्यो की त्यो रूप मे अथवा

अपनी ओर से कुछ हटाकर अथवा कुछ नया जोड़कर अभिव्यक्ति करता है । इसी प्रकार मनुष्य जन्म भर अभिव्यक्ति की क्रिया करता रहता है ।

मनुष्य की अभिव्यक्ति की क्रिया को 'अभिव्यंजना' भी कहा जाता है । यहाँ पर स्पष्ट होता है कि 'अभिव्यक्ति की क्रिया 'अर्थात्' अभिव्यजना की क्रिया करना तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही है । इसीलिए 'मनुष्य की कला भी अपने मूल रूप में अभिव्यक्ति ही है ।'

३. कला : अपने मूल रूप में कुशल अभिव्यक्ति

यह ठीक है कि कला, अपने मूल रूप मे अभिव्यक्ति है । लेकिन यहाँ पर एक प्रश्न उठता है - क्या कला, अपने मूल रूप मे केवल एक साधारण अभिव्यक्ति है ?

इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर यह है कि कला, अपने मूल रूप मे 'एक कुशल अभिव्यक्ति' है, इसीलिए कला 'एक असाधारण अभिव्यक्ति' है । इसका अर्थ यह है कि कला के रूप में जो 'अभिव्यक्ति की क्रिया' की जाती है, वह कौशल अर्थात् निपुणता के साथ की जाती है । अतः 'कुशल अभिव्यक्ति' होना कला की पहली महत्वपूर्ण विशेषता है।

४. कला : भावपूर्ण कुशल अभिव्यक्ति

यह भी ठीक है कि कला, अपने मूल रूप में कुशल अभिव्यक्ति है । परन्तु यहाँ पर एक प्रश्न उठता है - क्या कला, सभी प्रकार की बातों की कुशल अभिव्यक्ति होती है?

इस प्रश्न के उत्तर का एक हिस्सा यह है कि कला कुछ बातों की कुशल अभिव्यक्ति नही होती । उत्तर का दूसरा हिस्सा यह है कि कला कुछ बातो की कुशल अभिव्यक्ति होती है ।

जीवन से सम्बन्धित किसी भी बात की अभिव्यक्ति कौशल के साथ की जा सकती है,जैसे, ज्ञान-विज्ञान, इतिहास आदि से सम्बन्धित बातो की भी अभिव्यक्ति कौशल के साथ की जा सकती है । लेकिन इस प्रकार की कुशल अभिव्यक्ति 'कला' नही हो सकती । क्योकि ज्ञान-विज्ञान, इतिहास आदि से सम्बन्धित भावरहति बातों की कुशल अभिव्यक्ति कला नही हो सकती ।

जीवन की जो बातें भाव से युक्त होती हैं, उनकी कुशल अभिव्यक्ति 'कला' होती है । वास्तव मे कला रूपी कुशल अभिव्यक्ति का मुख्य आधार मनुष्य के हृदय के भिन्न-भिन्न भाव होते हैं । इसी वस्तुस्थिति के कारण वैज्ञानिक विवेचन या शास्त्रीय विश्लेषण या केवल ज्ञानसबधी मीमासा कला रूपी अभिव्यक्ति नही हो सकती ।

मनुष्य जब अपने हृदय के किसी भाव को (अर्थात् भावपूर्ण बात को) कुशल अभिव्यक्ति के रूप मे व्यक्त करता है, तब उसकी अभिव्यक्ति 'कला' बन जाती है। इसीलिए 'कला, भावपूर्ण कुशल अभिव्यक्ति है ।

५. कला : व्यक्तिगत भाव की कुशल अभिव्यक्ति

महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि 'कला स्वयं कलाकार के व्यक्तिगत भाव की कुशल अभिव्यक्ति होती है। इसीलिए कला रूपी भावपूर्ण कुशल अभिव्यक्ति विषयनिष्ठ नही बल्कि आत्मनिष्ठ होती है। इसी विशषता के कारण 'कला' अन्य ज्ञान विज्ञान से अलग

होकर मनुष्य-जीवन में अपना स्वतंत्र एवं महत्व का स्थान बनाकर रखती है ।

मनुष्य रूपी कलाकार का हृदय बहुत संवेदनशील होता है । इसीलिए जीवन की किसी अनुभूति से कलाकार का हृदय प्रभावित होता रहता है । जीवन में जो कुछ होता रहता है, उसका अनुभव करते समय किसी प्रसंग, घटना या बात से कलाकार का हृदय आंदोलित हो जाता है । कलाकार के आन्दोलित हृदय में विशिष्ट भाव जाग उठता है और धीरे-धीरे तीव्र होने लगता है । कलाकार का मन तीव्र हो रहे भाव पर केन्द्रित हो जाता है । तब कलाकार का मन उस तीव्र हो रहे भाव को अर्थात् उस विशिष्ट भाव-स्थिति को एक ऐसे 'विशिष्ट अर्थ' के रूप में अनुभव करने लगता है, जो कुशल अभिव्यक्ति के लिए सक्रिय होकर किसी प्रकार की कलात्मक क्रिया अर्थात् कलाकृति अर्थात् कला के सृजन के प्रयोजन का प्रभावशाली 'भावात्मक अंग' बन जाता है ।

कलाकार अपने व्यक्तिगत भाव (अर्थात् यहाँ विशिष्ट भाव-स्थिति) की कुशल अभिव्यक्ति करने के रूप में किसी प्रकार की कला का सृजन करने की मन की इच्छा से प्रेरित होकर ऐसी कला का सृजन करता है, जिसमे प्रयोजन रूपी 'विशिष्ट अर्थ' भावभीनी स्थिति में व्याप्त रह जाता है । स्वाभाविक परिणाम के रूप में कला में व्याप्त प्रयोजनरूपी भावभीने 'विशिष्ट अर्थ' से सहृदय का हृदय प्रभावित हो जाता है । उस समय सहृदय के हृदय की भी भाव-स्थिति कलाकार के हृदय की भाव-स्थिति के अनुरूप बन जाती है । समान अर्थात् एक जैसी भाव-स्थिति के फलस्वरूप कलाकार और सहृदय में 'भावतादात्म्य' बना रहता है । अपने में 'भावतादात्म्य की क्षमता' को बनाए रखना तो कला की सबसे पहली और बहुत महत्वपूर्ण कसौटी है । इसी कसौटी पर खरी उतरने वाली 'कला' अपने आप अन्य ज्ञान-विज्ञान से अलग तथा स्वतंत्र हो जाती है ।

कलाकार और सहृदय में 'भावतादात्म्य' के बने रहने के लिए 'कला' में प्रयोजन रूपी भावभीने 'विशिष्ट अर्थ' के रूप मे कलाकार की विशिष्ट भाव-स्थिति का व्याप्त रहना, अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है । परन्तु प्रयोजन रूपी भावभीने 'विशिष्ट अर्थ' के रूप मे कलाकार की विशिष्ट भाव-स्थिति अलग-अलग कला में कम-अधिक मात्रा में व्याप्त रहती है ।

प्रयोजन रूपी भावभीने विशिष्ट अर्थका रूप धारण करने वाली कलाकार की विशिष्ट भाव-स्थिति वास्तुकला में सबसे कम मात्रा मे व्याप्त रहती है; मूर्तिकला में थोड़ी अधिक मात्रा मे व्याप्त रहती है ; चित्रकला मे अधिक मात्रा मे व्याप्त रहती है, संगीत कला में बहुत अधिक मात्रा में व्याप्त रहती है और काव्यकला मे सर्वाधिक मात्रा मे व्याप्त रहती है । इसी विशेषता के आधार पर काव्यकला को सर्वश्रेष्ठ कला तथा सर्वाधिक प्रभावशाली कला मानना समीचीन लगता है । तभी तो कलाकार और सहृदय में 'भावतादात्म्य' का बनाए रखने की क्षमता 'काव्यकला' में सबसे अधिक होती है, उससे कम 'संगीतकला' में होती है, उससे कम 'चित्रकला' में होती है ; उससे कम 'मूर्तिकला' मे होती है और सबसे कम 'वास्तुकला' मे होती है ।

कलाकार और सहृदय मे 'भावतादात्म्य' को बनाए रखने की क्षमता के आधार पर ही मनुष्य-जीवन की संस्कृति मे क्रमानुसार काव्यकला, संगीतकला, चित्रकला और मूर्तिकला का विशेष महत्त्व है । इसीलिए मनुष्य-जीवन मे उत्कृष्ट काव्यकला, उत्कृष्ट संगीतकला, उत्कृष्ट चित्रकला और उत्कृष्ट मूर्तिकला को सुरक्षित रखा जाता है । इस दृष्टि से ही मनुष्य

अपने जीवन में प्राचीन से प्राचीन उत्कृष्ट काव्यकला, संगीतकला, चित्रकला और मूर्तिकला को प्रयत्नपूर्वक सुरक्षित रखता है। इसी कारण से ही महात्मा कबीर, सन्तकवि तुलसीदास सूरदास, मीरॉबाई, बिहारी, नामदेव, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि की काव्यकला, भिन्न-भिन्न संगीतकारों की विविध रागों से युक्त संगीतकला, अजन्ता की चित्रकला, एलोरा तथा अजन्ता की मूर्तिकला को आदरपूर्वक सुरक्षित रखा जा रहा है ।

कला में जो कलाकार और सहृदय मे 'भावतादात्म्य' को बनाए रखने की क्षमता होती है, उसके मूल में महत्वपूर्ण आधार के रूप मे 'कला का व्यक्तिगत भाव की कुशल अभिव्यक्ति होना' महत्वपूर्ण होता है ।

६. कला:भावाश्रित विचार की भी कुशल अभिव्यक्ति

यह यथार्थ है कि जो 'विशिष्ट अर्थ' कला के सृजन का प्रयोजन बन जाता है, वह सर्वप्रथम 'कलाकार की विशिष्ट भाव-स्थिति' के फलस्वरूप भाव-भीना बना रहता है और तदुपरान्त वह कलाकार की विशिष्ट बुद्धि-स्थिति के फलस्वरूप 'संगत विचार' से युक्त हो जाता है । वह 'संगत विचार' विशिष्ट प्रसंग या विशिष्ट घटना या विशिष्ट बात से संबंधित कलाकार की अपनी विशिष्ट जीवनानुभूति पर आधारति होता है । इसी कारण से वह 'संगत विचार' उस विशिष्ट जीवनानुभूति से कलाकार के हृदय में उद्दीप्त भाव पर आश्रित होता है ।

जिस समय अपनी विशिष्ट जीवनाभूति के रूप मे किसी प्रसंग या घटना या बात से कलाकार के हृदय में विशिष्ट भाव उद्दीप्त होकर तीव्र होने लगता है उस समय कलाकार की बुद्धि (प्रज्ञा) भी कुछ प्रभावित हो जाती है । इसीलिए उस स्थिति में कलाकार का मन एक ओर हृदय में तीव्र हो रहे विशिष्ट भाव पर केन्द्रित हो जाता है, तो दूसरी ओर कलाकार का मन विचारप्रवण बुद्धि की सहायता लेने लगता है । कलाकार का मन जिस क्षण हृदय के भाव से दबा रहता है, उसी क्षण वह बुद्धि से सोचने-विचारने मे व्यस्त रहता है । कलाकार का मन भाव के दबाव मे ही बुद्धि से सोच-विचार कर 'जीवन की दृष्टि से किसी महत्वपूर्ण विचार' पर पहुँच जाता है । परिणामस्वरूप वह 'विचार' भावाश्रित होकर रहता है ।

कलाकार अपने मन की इच्छा से प्रेरित होकर अपने 'भावाश्रित विचार' की कुशल अभिव्यक्ति करने के रूप में ऐसी 'कला' (अर्थात् कलाकृति) का सृजन करता है, जिसमे 'प्रयोजन रूपी 'विशिष्ट अर्थ' भावात्मक तथा विचारात्मक स्थिति में व्याप्त रह जाता है । इसी महत्वपूर्ण विशेषता के कारण भी कला, अन्य ज्ञान-विज्ञान से अलग होकर स्वतंत्र रूप से मनुष्य के जीवन मे अपने महत्वपूर्ण अस्तित्व को बनाए रखती है ।

स्वाभाविक परिणाम के रूप में कला मे व्याप्त रहने वाला प्रयोजन रूपी भावात्मक तथा विचारात्मक 'विशिष्ट अर्थ' सहृदय के हृदय को और सहृदय की बुद्धि को भी प्रभावित करता है । उस समय कलाकार और सहृदय दोनो की भी 'भाव-स्थिति' और 'विचार-स्थिति' एक जैसी हो जाती है । इसी विशेषता के कारण भी 'कला' अन्य ज्ञान-विज्ञान से अपना अलग और स्वतंत्र महत्त्व रखती है ।

'कला' अपने विशेष प्रभाव के रूप मे कलाकार और सहृदय में [illegible] के साथ 'विचारतादात्म्य' को भी बनाए रखने की क्षमता रखती है लेकिन इस

प्रकार की क्षमता जितनी अधिक मात्रा मे काव्यकला में होती है, उतनी मात्रा में न संगीतकला में होती है, न चित्रकला में, न मूर्तिकाला में और न वास्तुकला में । इसी वास्तविकता के कारण ही मनुष्य के जीवन मे एक 'उत्तम मार्गदर्शक' के रूप मे, 'जीवन पथ प्रदर्शक' के रूप मे तथा 'सुसंस्कारक' के रूप में 'काव्यकला' (साहित्य कला) को अत्यन्त आदर का स्थान प्राप्त हुआ है । इससे स्पष्ट होता है कि 'कला का भावाश्रित विचार की भी कुशल अभिव्यक्ति होना' कितना महत्वपूर्ण है ।

७. कला : भाव, विचार तथा कल्पना की कुशल अभिव्यक्ति है

वास्तव मे जो 'विशिष्ट अर्थ' कला (कलाकृति) के सृजन का प्रयोजन बन जाता है, वह सर्वप्रथम कलाकार की विशिष्ट भाव-स्थिति के फलस्वरूप भावभीना बना रहता है और तत्पश्चात् वह कलाकार की विशिष्ट बुद्धि-स्थिति के फलस्वरूप 'संगत विचार' से युक्त होता है और फिर वह कलाकार की विशिष्ट कल्पना-स्थिति की उड़ान के सात सम्पृक्त हो जाता है ।

'कला के सृजन का प्रयोजन' बनकर रहने वाला भावभीना तथा विचारयुक्त 'विशिष्ट अर्थ' जिस क्षण विशिष्ट कल्पना-स्थिति की उड़ान से सम्पृक्त हो जाता है, उस क्षण से वह 'विशिष्ट अर्थ' भाव, विचार और कल्पना की समन्वित तथा एकात्म कुशल अभिव्यक्ति के रूप में कला के सृजन के लिए सक्रिय हो जाता है और फिर पूरी कला (कलाकृति) में व्याप्त रह जाता है ।

जब कलाकार का मन, हृदय में तीव्र हो रहे भाव से दबा रहकर और बुद्धि से सोच-विचार कर जीवन की दृष्टि से किसी महत्वपूर्ण विचार' पर पहुँच जाता है तब कलाकार का मन भावभीने तथा विचारयुक्त 'विशिष्ट अर्थ' को कल्पना के द्वारा विश्वात्मक, सार्वजनीन तथा सार्वकालिक नवीनता (मौलिकता) के साथ सलग्न करने मे सफल हो जाता है । परिणामस्वरूप कला के सृजन के लिए प्रयोजन का रूप धारण करने वाला 'विशिष्ट अर्थ' एक विलक्षण, असाधारण, रमणीय, सुन्दर अर्थात् आनन्दप्रद अर्थ बन जाता है । इसी प्रकार के अर्थ से व्याप्त होने के कारण 'कला' अपने आप विचित्र, विलक्षण, असाधारण, रमणीय, सुन्दर, ललित, विदग्ध अर्थात् आनन्दप्रद बनी रह जाती है ! इसी विशेषता के आधार पर कला अन्य ज्ञान-विज्ञान से अलग और स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रखने में सफल हो जाती है। अपने अलग और स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रखने की दृष्टि से 'कला का भाव विचार तथा कल्पना की कुशल अभिव्यक्ति होना' अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है ।

८. विशिष्ट अर्थ : कला-सृजक प्रयोजन

वास्तव मे मनुष्य 'कलाकार' के रूप मे 'असाधारण अर्थात् विशेष कर्ता' बनकर रहता है । कलाकार रूपी असाधारण अर्थात् विशेष कर्त्ता कला का सृजन करने की क्रिया करता रहता है । 'ईश्वरप्रदत्त' या 'प्रकृतिप्रदत्त देन' के बल पर स्वयं 'कलाकार' असाधारण अर्थात विशेष होता है । कलाकार के रूप मे उसका कर्ता होना भी असाधारण और विशेष होता है और उसके द्वारा जिसका सृजन करने की क्रिया की जाती है, वह कला भी अपने मूल रूप में असाधारण अर्थात विशेष होती है ।

कलाकार के 'असाधारण' अर्थात् 'विशेष' होने का मूल अर्थ है, उसका समन्वित रूप से भावुक, विचारक तथा कल्पक होना । 'कलाकार रूपी कर्ता' के भी 'असाधारण अर्थात् 'विशेष' होने का अर्थ है उसका भी समन्वित रूप से भावुक, विचारक तथा कल्पक होना । कलाकार रूपी कर्ता की सृजनात्मक क्रिया के रूप में कला के असाधारण अर्थात विशेष होने का अर्थ है उस कला का भावुकता (भावात्मकता), विचारात्मकता तथा कल्पकता (कल्पनात्मकता) से समन्वित रूप में संयुक्त होना ।

अपने जीवन की मर्मस्पर्शी अनुभूति से प्रभावित हुआ कलाकार का मन हृदय की विशिष्ट स्थिति से भावात्मकता में, बुद्धि की विशिष्ट स्थिति से विचारात्मकता में और कल्पना की विशिष्ट स्थिति से कल्पकता में डूबा रहता है । तब कलाकार का मन धीरे-धीरे ऐसे 'विशिष्ट अर्थ' का अनुभव करने लगता है जिसमे भावात्मकता, विचारात्मकता तथा कल्पनात्मकता एक रूप हुई रहती हैं । कलाकार का मन इस प्रकार के 'विशिष्ट अर्थ' को अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोजन के रूप मे अनुभव करता है और अपनी इच्छा के अनुसार उसी प्रयोजन को कुशल अभिव्यक्ति का रूप प्रदान करने की क्रिया करते हुए कला (कलाकृति) का सृजन कर देता है । परिणामस्वरूप पूरी कला (कलाकृति) उस 'विशिष्ट अर्थ' से व्याप्त रहती है, जो पहले से ही कला-सृजक प्रयोजन' बना हुआ रहता है । जिस प्रकार लावण्यवती के अंग-अग में से मनोहर लावण्य झलकता रहता है, उसी प्रकार कला के अंग-अंग में से 'विशिष्ट अर्थ' रूपी चित्ताकर्षक प्रयोजन व्यंजित होता रहता है ।

९. विशिष्ट अर्थ : त्रिविध अर्थों का समन्वित रूप

जो विशिष्ट अर्थ 'कला-सृजक प्रयोजन' बना हुआ रहता है, वह वास्तव में त्रिविध अर्थों का समन्वित रूप होता है । त्रिविध अर्थों में से एक 'भावात्मक अर्थ' है, दूसरा 'विचारात्मक अर्थ' है और तीसरा 'कल्पनात्मक अर्थ' है ।

पहला क्रम 'भावात्मक अर्थ' का है, जो कलाकार की भावात्मकता अर्थात् विशिष्ट भाव-स्थिति पर आधारित हता है ।

दूसरा क्रम 'विचारात्मक अर्थ' का है, जो कलाकार की विचारात्मकता अर्थात विशिष्ट बुद्धि-स्थिति पर आधारित होता है ।

तीसरा क्रम 'कल्पनात्मक अर्थ' का है, जो कलाकार की कल्पनात्मकता अर्थात् विशिष्ट कल्पना-स्थिति पर आधारित होता है ।

कलाकार के हृदय में सबसे पहले 'भावात्मक अर्थ' उभर आता है । तत्पश्चात् कलाकार की बुद्धि में 'विचारात्मक अर्थ' उभर आता है । उसके बाद कलाकार की कल्पना में 'कल्पनात्मक अर्थ' उभर आता है ।

कलाकार अपने मन की इच्छा के अनुसार भावात्मक अर्थ के साथ विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का इस प्रकार संयोजन करता है, जिससे ये त्रिविध अर्थ एकीकृत होकर 'समन्वित रूप' धारण करते है । उस समय कलाकार त्रिविध अर्थों के समन्वित रूप को ऐसे 'विशिष्ट अर्थ' के रूप में अनुभव करता है, जो कला (कलाकृति) का सृजन करने के लिए 'प्रयोजन' (उद्देश्य) बन जाता है और फिर सृजित कला (कलाकृति) के अंग-प्रत्यंग में व्याप्त रह जाता है ।

इस प्रकार कला की दृष्टि से वह 'विशिष्ट अर्थ' महत्त्वपूर्ण होता है, जो अपने स्वाभाविक रूप में 'त्रिविध अर्थों का समन्वित रूप' बना रहता है ।

१०. विशिष्ट अर्थ : त्रिविध कलार्थ

जो विशिष्ट अर्थ 'कला-सृजक प्रयोजन' और त्रिविध अर्थों का समन्वित रूप' बना रहता है वही विशिष्ट अर्थ' बहुत महत्वपूर्ण 'त्रिविध कलार्थ' बन जाता है।

जो 'विशिष्ट अर्थ' कलाकार के भीतर 'त्रिविध अर्थों का समन्वित रूप' बना रहता है, वही कलाकार के मन की इच्छा के अनुसार 'कला-सृजक प्रयोजन' बन जाता है । इसका अर्थ यह है कि जिस समय कलाकार के मन की इच्छा के अनुसार 'त्रिविध अर्थों का समन्वित रूप' अपने आप 'कला-सृजक प्रयोजन' बन जाता है, उसी समय वह 'विशिष्ट अर्थ' कलाकार का अपना अर्थ बन जाता है, जिसे 'कलाकारार्थ' कहा जा सकता है । इस प्रकार के 'कलाकारार्थ' का मूल और पहला अस्तित्व कलाकार के 'मानस' में होता है ।

जब कलाकार का अपना अर्थ अर्थात् 'कलाकारार्थ' उसके द्वारा सृजित कला (कलाकृति) के अंग-प्रत्यंग में व्याप्त रहता है, तब वह कला का अपना अर्थ अर्थात् 'कलार्थ' बन जाता है ।

वास्तव में कलाकार के अपने अर्थ का अर्थात् 'कलाकारार्थ' का 'कलार्थ' बन जाना ही 'कला' (कलाकृति) का सृजन है । इसका अर्थ यह है कि सपूर्ण कला 'कलार्थ' से ही व्याप्त रहती है ।

'विशिष्ट अर्थ' का अस्तित्व सर्वप्रथम कलाकार के 'मानस' मे 'कलाकारार्थ' (कलाकार का अपना अर्थो) के रूप में होता है और तत्पश्चात् उसका अस्तित्व कला के अन्तर्गत 'कलार्थ' (कला में व्याप्त अर्थ) के रूप में होता है ।

कलाकार के 'मानस' में उभरा 'कलाकारार्थ' भीतर ही भीतर होने वाली संयोजन की प्रक्रिया के फलस्वरूप 'त्रिविध अर्थों का समन्वित रूप' बना रहता है, जिसमें भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का एकीकृत मिलाप हुआ रहता है । इसका अर्थ यह है कि कलाकार के 'मानस' में उभरा हुआ 'त्रिविध कलाकारार्थ' ही अपने मूल रूप में 'विशिष्ट अर्थ' होता है ।

जब यही 'विशिष्ट अर्थ' अर्थात् 'कलाकारार्थ' कला-सृजक प्रयोजन के रूप में कलाकार को कुशल अभिव्यक्ति के रूप में कला का सृजन करने के लिए प्रेरित करता है और फिर कलाकार से सृजित कला मे अभिव्यक्त होकर व्याप्त रह जाता है, तब वह 'त्रिविध कलार्थ' बना रहता है, जिसमे भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का एकीकृत मिलाप हुआ रहता है ।

इस प्रकार 'त्रिविध कलाकारार्थ' ही 'त्रिविध कलार्थ' बना रहता है । चाहे वास्तुकला हो, मूर्तिकला हो, चित्रकला हो, संगीतकला हो या काव्यकला हो उसमें 'त्रिविध कलार्थ' व्याप्त रहता ही है ।

लेकिन वास्तविकता यह भी है कि कला के अलग-अलग प्रकार मे 'त्रिविध कलार्थ' का संतुलन अलग-अलग ढंग का होता है ।

'वास्तुकला' मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' मे कल्पनात्मक अर्थ' की प्रधानता होती है, इसलिए श्रेष्ठता की दृष्टि से कलाओं में वास्तुकला को निचला स्थान दिया जाता है ।

'मूर्तिकला' मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' में 'भावात्मक अर्थ' और 'कल्पनात्मक अर्थ की प्रधानता होती है, इसलिए श्रेष्ठता की दृष्टि से कलाओं में मूर्तिकला को वास्तुकला की अपेक्षा ऊपर का स्थान दिया जाता है ।

'चित्रकला' में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' में 'भावात्मक अर्थ' तथा 'कल्पनात्मक अर्थ की तो प्रधानता होती ही है, साथ में 'विचारात्मक अर्थ' भी कुछ महत्व का बना रहता है। इसलिए श्रेष्ठता की दृष्टि से कलाओं में चित्रकला को मूर्तिकला की अपेक्षा ऊपर का स्थान दिया जाता है ।

'संगीतकला' में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' मे 'भावात्मक अर्थ' और 'कल्पनात्मक अर्थ की अधिक प्रधानता होती है, इसलिए श्रेष्ठता की दृष्टि से कलाओं में संगीतकला को चित्रकला की अपेक्षा ऊपर का स्थान दिया जाता है ।

'काव्यकला' में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' में प्रायः 'भावात्मक अर्थ', 'विचारात्मक अर्थ' और 'कल्पनात्मक अर्थ' इन तीनों अर्थों की भी महत्वपूर्ण प्रधानता होती है । वास्तव में काव्यकला की उत्कृष्टता तो इन तीनों अर्थों की सन्तुलित प्रधानता पर ही आधारित होती है । तभी तो श्रेष्ठता की दृष्टि से काव्यकला को सभी कलाओं में सर्वोपरि तथा सर्वोत्तम स्थान दिया जाता है ।

लेकिन जब 'काव्यकला' में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' मे तीन अर्थों मे से किसी एक ही अर्थ की अथवा किन्ही दो ही अर्थों की प्रधानता बनी रहती है, तब काव्यकला की उत्कृष्टता तथा श्रेष्ठता में कुछ कमी आ जाती है । इस प्रकार की कमी अर्थात् त्रुटि से बचकर रहने के लिए और अपनी उत्कृष्टता तथा श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए काव्यकला में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' मे तीनों अर्थों की सन्तुलित प्रधानता का होना अनिवार्य है ।

इस प्रकार 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' प्रथम 'त्रिविध कलाकारार्थ' होता है और बाद में 'त्रिविध कलार्थ' होता है ।

११. त्रिविध कलार्थ : त्रिविध सहृदयार्थ

जो 'त्रिविध कलार्थ' कला में व्याप्त रहता है, वही कलार्थ कला का आस्वादन करने वाले सहृदय का भी अर्थ बन जाता है । सहृदय का अर्थ अर्थात् 'सहृदयार्थ' सहृदय के मानस' में व्याप्त रहता है ।

स्वयं 'सहृदय' (रसिक) भी मनुष्य होने के कारण भावुक, विचारक तथा कल्पक होता है । सहृदय अपने हृदय से 'भावुक' होता है, अपनी बुद्धि से 'विचारक' होता है और अपनी कल्पना से 'कल्पक' होता है ।

जिस समय सहृदय (अर्थात् रसिक) अपनी सहृदयता (अर्थात् रसिकता) के बल पर कला का आस्वादन कर लेता है, उस समय स्वाभाविक प्रभाव (परिणाम) के रूप मे त्रिविध कलार्थ' अपने भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ के समन्वित रूप के साथ सहृदय मे पहुंच जाता है । दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि त्रिविध कलार्थ का ही भावात्मक अर्थ सहृदय के हृदय को प्रभावित कर देता है, विचारात्मक अर्थ सहृदय की बुद्धि को प्रभावित कर देता है और कल्पनात्मक अर्थ सहृदय की कल्पना को प्रभावित कर देता है । इससे सहृदय के हृदय में वही भावात्मक अर्थ उभरता है, जो त्रिविध कलार्थ मे होता है ; सहृदय की बुद्धि मे वही विचारात्मक अर्थ उभरता है जो त्रिविध कलार्थ

मे होता है और सह्रदय की कल्पना मे वही कल्पनात्मक अथ उभरता है, जो त्रिविध कलार्थ मे होता है ।

सह्रदय में ये तीनों अर्थ एकीकृत होकर ऐसा समन्वित रूप धारण करत हैं, जिसे सह्रदय का मन 'त्रिविध सह्रदयार्थ' के रूप मे अनुभव करने लगता है । इसका अर्थ यह है कि सह्रदय के 'मानस' में वही 'त्रिविध सह्रदयार्थ' बना रहता है, जो मूल रूप में 'त्रिविध कलार्थ' होता है ।

इस प्रकार 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' सर्वप्रथम 'त्रिविध कलाकारार्थ होता है, तदुपरान्त 'त्रिविध कलार्थ' होता है और इसके बाद 'त्रिविध सह्रदयार्थ' होता है । इससे स्पष्ट होता है कि एक ही 'विशिष्ट अर्थ' कलाकार के लिए 'त्रिविध कलाकार्थ' होता है उसी कलाकार से सृजित कला के लिए 'त्रिविध कलार्थ' होता है और उसी कला का आस्वादन करने वाले सह्रदय (रसिक) के लिए त्रिविध सह्रदयार्थ' (रसिकार्थ) होता है । इस प्रकार 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' के साथ जुड़कर कलाकार, कला और सह्रदय एक ही अधिष्ठान पर अधिष्ठित हुए रहते हैं । इस प्रकार की अत्यन्त महत्वपूर्ण 'विशिष्ट अर्थ तादात्म्य' की स्थिति 'काव्यकला' के सन्दर्भ में सबसे अधिक बनी रहती है । इसका कारण यह है कि 'काव्यकला' में 'विशिष्ट अर्थ' की सर्वाधिक प्रभावशाली स्थिति बनी रहती है।

१२. त्रिविध कलार्थ : विश्वात्मक अर्थ

जो 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' 'त्रिविध कलाकारार्थ' होता है, वही जब कलाकार से सृजित कला (कलाकृति) मे 'त्रिविध कलार्थ' बनकर रहता है, तब वह 'विश्वात्मक अर्थ' बना रहता है ।

'विश्वात्माक अर्थ' बने रहने का अभिप्राय है, सार्वजनीन अर्थ, सार्वत्रिक अर्थ तथा सार्वकालिक अर्थ बना रहना है । अतएव जो 'त्रिविध कलार्थ' 'विश्वात्मक अर्थ' बना रहता है, वही सार्वजनीन अर्थ, सार्वत्रिक अर्थ तथा सार्वकालिक अर्थ बना रहता है ।

वास्तव मे 'त्रिविध कलाकारार्थ' कलाकार से सृजित कला में 'त्रिविध कलार्थ' के रूप में तब तक व्याप्त रहता है, जब तक वह कला (कलाकृति) अविनाशी बनकर रहती है।

स्रष्टा की 'कृति' के रूप मे 'कला' का सम्बन्ध 'कलाकार' के साथ अभिन्न बना रहता है और 'आस्वाद्यकृति' के रूप में 'कला' का सम्बन्ध आस्वादन करने वाले 'सह्रदय' के साथ कायम बना रहता है ।

स्रष्टा रूपी कलाकार काल, स्थल और व्यक्ति (व्यष्टि) की सीमा में बँधा रहता है । कलाकार जब तक जीवित रहता है, तब तक वह काल की गति के साथ चलता रहता है, किसी स्थल मे रहता है और एक व्यक्ति के रूप मे ही जीता रहता है । जिस क्षण कलाकार की मृत्यु हो जाती है, उस क्षण से तो कलाकार विशिष्ट काल, विशिष्ट स्थल और विशिष्ट व्यक्ति की सीमा मे बँधा रह जाता है । ऐसी स्थिति में अत्यंत महत्वपूर्ण वास्तविकता यह होती है कि कलाकार अपनी उस कला (कलाकृति) के साथ कायम सम्बन्धित रहता है, जिस कला (कलाकृति) में उसका अपना 'त्रिविध कलाकारार्थ' 'त्रिविध कलार्थ' के रूप मे कायम व्याप्त रहता है ।

दूसरी अत्यत महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि कलाकार की कला काल की गति

के साथ अधिकाधिक अविनाशी बनकर काल, स्थल और व्यक्ति की सीमा से मुक्त हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उस कला (कलाकृति) के रूप में 'त्रिविध कलार्थ' किसी भी काल के और विश्व मे किसी भी स्थल के तथा किसी भी सहृदय के 'मानस' में उभरकर त्रिविध सहृदयार्थ' बना रह सकता है। इस प्रकार की 'संभाव्यता' रूपी विशेषता से ही 'त्रिविध कलार्थ' काल, स्थल और व्यक्ति की सीमा से मुक्त होकर सभी सहृदयों के लिए 'विश्वात्मक अर्थ' अर्थात् सार्वकालिक अर्थ, सार्वत्रिक अर्थ तथा सार्वजनीन अर्थ बन जाता है।

'ताजमहल' इस 'वास्तुकला' में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपनी 'संभाव्यता' रूपी विशेषता के आधार पर विश्वात्मक अर्थ' बन गया है, इसलिए तो दुनिया के कोने-कोने से सहृदय (दर्शक) उसके दर्शन के लिए कभी भी आते हैं और उसके दर्शन कर अपने मानस में उभरे 'त्रिविध सहृदयार्थ' का अनुभव करते हुए प्रसन्न हो जाते है।

'एलोरा' और 'अजन्ता' की 'मूर्तिकला' में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपनी 'संभाव्यता रूपी विशेषता के आधार पर 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है, इसलिए ही दूर-दूर से सहृदय (दर्शक) उसके दर्शन के लिए सदैव आते हैं और उसके दर्शन कर अपने मानस में उभरे 'त्रिविध सहृदयार्थ' का अनुभव करते हुए हर्षित हो जाते हैं।

'अजन्ता' की 'चित्रकला' में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपनी 'संभाव्यता' रूपी विशेषता के आधार पर 'विश्वात्मक अर्थ' बना हुआ है, इसीलिए कभी भी और कहीं के भी सहृदय (दर्शक) उसके दर्शन के लिए आते हैं और उसके दर्शन कर अपने मानस में उभरे 'त्रिविध सहृदयार्थ' का अनुभव करत' हुए आनंदित हो जाते है।

किसी भी संगीतसाधक की 'संगीकला' में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपनी 'संभाव्यता' रूपी विशेषता के आधार पर 'विश्वात्मक अर्थ' बना रहता है, तभी तो कहीं का भी सहृदय (श्रोता) उसे सुनकर अपने मानस मे उभरे 'त्रिविध सहृदयार्थ' का अनुभव करते हुए आनन्दनिमग्न हो जाता है।

कालिदास, कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीराँबाई, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि सुप्रसिद्ध कवियों की 'काव्यकला' मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपनी 'संभाव्यता' रूपी विशेषता के आधार पर 'विश्वात्मक अर्थ' बना रहता है, इसलिए ही कही का भी और किसी भी काल का सहृदय (काव्यमर्मज्ञ) सुनकर या पढ़कर काव्यकला का आस्वादन करता है और अपने मानस में उभरे 'त्रिविध सहृदयार्थ' का अनुभव करते हुए आनन्दविभोर हो जाता है।

इस प्रकार किसी भी कला मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' का अपनी 'संभाव्यता' रूपी विशेषता के आधार पर 'विश्वात्मक अर्थ' बनकर रहना अत्यन्त स्वाभाविक है।

'त्रिविध कलार्थ' में जो 'विश्वात्मक अर्थ' बनने की क्षमता होती है, उसी के स्वाभाविक परिणाम के रूप में 'कला' सदैव, किसी भी और कहीं के भी सहृदय के लिए आस्वाद्य (ग्राह्यगृहणीय, बोध्य) बनी रहती है। वास्तव में अपनी इस प्रकार की विशेषता के आधार पर किसी भी और कहीं के भी सहृदय के लिए आस्वाद्य (ग्राह्य-गृहणीय, बोध्य) बनकर रहना ही 'कला' की स्वाभाविकता है और इसी स्वाभाविकता मे ही 'कला की सार्थकता' है।

'त्रिविध कलार्थ' में जो 'विश्वात्मक अर्थ' बनने की क्षमता होती है, उसका स्वाभाविक परिणाम यह भी हो जाता है कि वह 'त्रिविध कलार्थ' 'निर्वैयक्तिक अर्थ' बन

जाता है । मूल में जो 'त्रिविध कलाकारार्थ' होता है, वह वैयक्तिक, व्यष्टिगत तथा एकल होता है । परन्तु जब 'त्रिविध कलाकारार्थ' कलाकार से सृजित 'कला' (कलाकृति) मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' बन जाता है, तब वह कभी भी कला का आस्वादन करने वाले किसी भी और कहीं के भी सहृदय के 'मानस' में 'त्रिविध सहृदयार्थ' बन जाता है । इस प्रकार 'त्रिविध कलार्थ' ही 'त्रिविध सहृदयार्थ' बनकर निर्वैयक्तिक, समष्टिगत तथा विश्वात्मक अर्थ बन जाता है ।

स्पष्ट है कि कला के लिए अपने 'त्रिविध कलार्थ' का 'विश्वात्मक अर्थ' बनक' रहना प्रकृतिसिद्ध ही है ।

१३. त्रिविध कलार्थ : बिम्बात्मक अर्थ

जो 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' 'त्रिविध कलाकारार्थ' होता है, वह कलाकार के 'मानस' में अपने मूल रूप मे 'बिम्बात्मक अर्थ' ही होता है ।

'बिम्बात्मक अर्थ' की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह पॉच प्रकार की ज्ञानेंद्रियो के जीवनानुभवो पर आधारित होता है । मनुष्य रूपी कलाकार के पास जो प्रकृतिप्रदत्त पॉच ज्ञानेद्रिय होती हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं - नयन, कान, नाक, जीभ और त्वचा ।

कलाकार अपने नयनों से देखने की क्रिया करने के रूप मे दृश्यानुभव करता है और उसके प्रभाव के रूप में कलाकार के मानस में 'दृश्य बिम्ब' उभर आता है ।

कलाकार अपने कानों से सुनने की क्रिया करने के रूप में श्रव्यानुभव करता है और उसके प्रभाव के रूप मे कलाकार के मानस में 'श्रव्य बिम्ब' उभर आता है।

कलाकार अपनी नाक से सूँघने की क्रिया करने के रूप मे गंधानुभव करता है और उसके प्रभाव के रूप में कलाकार के मानस में 'घ्राण्य बिम्ब' उभर आता है।

कलाकार अपनी जीभ से स्वाद लेने (खाने) की क्रिया करने के रूप मे स्वादानुभाव करता है और उसके प्रभाव के रूप में कलाकार के मानस में 'स्वाद्य बिम्ब' उभर आता है।

कलाकार अपनी त्वचा से स्पर्श करने (छूने) की क्रिया करने के रूप में स्पर्शानुभव करता है और उसके प्रभाव के रूप मे कलाकार के मानस में 'स्पर्श्य बिम्ब' उभर आता है।

पॉच प्रकार के ज्ञान का अर्थबोध कर लेने में सहायक होने वाली पॉच इन्द्रियों के बल पर कलाकार के 'मानस' में अलग से कोई एक बिम्ब उभर सकता है अथवा दो या दो से अधिक बिम्बो का सयोगात्मक रूप उभर सकता है अथवा कभी इन पाँचो बिम्बों का एकीकरणात्मक रूप उभर सकता है । इसका अर्थ यह है कि कलाकार के 'मानस' मे बिम्ब के उभरने की तीन रीतियॉ हैं । अतएव कलाकार के 'मानस' मे एक रीति के अनुसार किसी एक ही प्रकार के जीवनानुभव से एक ही प्रकार का बिम्ब उभरता है , दूसरी रीति के अनुसार अलग-अलग प्रकार के जीवनानुभवों से एक से अधिक बिम्बों का सयोगात्मक रूप उभरता है और तीसरी रीति के अनुसार पॉचो प्रकार के जीवनानुभवो से पॉचो बिम्बो का एकीकरणात्मक रूप उभरता है ।

तीन रीतियो में से किसी भी प्रकार की रीति से कलाकार के 'मानस{ में उभरने वाला बिम्ब, केवल बिम्ब नही रहता, वह तो तत्काल कलाकार के हृदय में उद्दीप्त भावात्मक अर्थ के साथ जुड जाता है, फिर बुद्धि (प्रज्ञा) मे जागरित विचारात्मक अर्थ के

साथ जुड़ जाता है और फिर कल्पना में साकार हुए कल्पनात्मक अर्थ के साथ जुड़ जाता है। इस प्रकार कलाकार के 'मानस' में उभरा बिम्ब या कुछ बिम्बों का संयोग या पाँचो बिम्बो का एकीकरण 'त्रिविध कलाकारार्थ' के साथ जुडकर तथा एक रूप होकर विशेष 'बिम्बात्मक अर्थ' बन जाता है।

जो 'त्रिविध कलाकारार्थ' कलाकार के 'मानस' में 'बिम्बात्मक अर्थ' बन जाता है वह कुछ अस्पष्ट रूप में तथा अपूर्ण रूप में होता है। इससे कुछ अस्पष्ट तथा अपूर्ण 'बिम्बात्मक अर्थ' स्पष्टता सापेक्ष तथा पूर्णता सापेक्ष बनकर कलाकार को अभिव्यक्ति (अभिव्यंजना) की क्रिया करने के लिए अर्थात् कला का सृजन करने की क्रिया करने के लिए प्रेरित कर देता है। तब कलाकार अपने 'त्रिविध कलाकारार्थ' को 'त्रिविध कलार्थ' और 'त्रिविध सहृदयार्थ' बनाने के प्रयोजन (उद्देश्य) से अपने 'मानस' में उभरे अस्पष्ट तथा अपूर्ण 'बिम्बात्मक अर्थ' को स्पष्ट रूप तथा कुछ पूर्ण रूप प्रदान करने को 'बाह्य सामग्री' का आधार लेता रहता है।

कलाकार अपने 'मानस' मे उभरे अस्पष्ट तथा अपूर्ण 'बिम्बात्मक अर्थ' को स्पष्ट रूप तथा कुछ पूर्ण रूप प्रदान करने के लिए 'अभिव्यक्ति (अभिव्यंजना) की क्रिया' करने को तत्पर हो जाता है और कभी पत्थर, ईंट, मिट्टी, जल, चूना आदि सामग्री के संयोग से 'वास्तु कला रूपी दृश्य बिम्ब' का सृजन कर देता है, कभी पत्थर, छेनी, हथौड़ा आदि सामग्री से 'मूर्तिकला रूपी दृश्य बिम्ब' का सृजन कर देता है ; कभी फलक, रेखा, रंग, बुरुश आदि सामग्री के संयोग से 'चित्र कला रूपी दृश्य बिम्ब' का सृजन कर देता है, कभी सुर (स्वर-आवाज) रूपी सामग्री से 'संगीत कला रूपी श्रव्य बिम्ब' का सृजन कर देता है और कभी भाषा रूपी (ध्वन्यात्मक, शब्दात्मक, पदात्मक, वाक्यात्मक तथा अर्थात्मक सामग्री में काव्यकला रूपी ऐसे श्रव्य बिम्ब' का सृजन कर देता है, जिसमें अलग-अलग से दृश्य बिम्ब, श्रव्य बिम्ब, घ्राण्य बिम्ब, स्वाद्य बिम्ब या स्पर्श्य बिम्ब बनकर रहने की क्षमता होती है और साथ ही 'इन बिम्बों का संयोगात्मक रूप' भी बनकर रहने की क्षमता होती है।

इस प्रकार सर्वप्रथम कलाकार के 'मानस' में 'त्रिविध सहृदयार्थ' 'बिम्बात्मक अर्थ' बना रहता है और फिर वही कलाकार से सृजित कला में 'त्रिविध कलार्थ' के रूप में भी 'बिम्बात्मक अर्थ' बना रहता है। इसी कारण से जो 'त्रिविध कलार्थ' सहृदय के 'मानस' में 'त्रिविध सहृदयार्थ' बना रहता है, वह भी 'बिम्बात्मक अर्थ' ही होता है।

यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि केवल 'काव्यकला' इसीलिए 'विशेष कला' या 'सर्वश्रेष्ठ कला' बनी रहती है कि उसमें जो 'बिम्बात्मक अर्थ' होता है, वह या तो किसी एक प्रकार के बिम्ब पर आधारित होता है या एक से अधिक अथवा पाँचो प्रकार के बिम्बों के संयोगात्मक रूप पर आधारित होता है। इस प्रकार की विशेषता अन्य किसी भी कला की नहीं होती। क्योंकि वास्तु कला या मूर्ति कला या चित्रकला केवल 'दृश्य बिम्ब' होती है और संगीत कला केवल 'श्रव्य बिम्ब' होती है। इसके विरुद्ध 'काव्य कला कुछ बिम्बो या पाँचों प्रकार के बिम्बों का संयोगात्मक रूप हो सकती है।'

स्पष्ट है कि जो 'त्रिविध कलार्थ' होता है, वह 'बिम्बात्मक अर्थ' होता ही है।

१४. त्रिविध कलार्थ : रूपात्मक अर्थ

जो 'त्रिविध कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे 'बिम्बात्मक अर्थ' बना रहता है, वह वास्तव मे 'रूपात्मक अर्थ' ही बना रहता है।

जो दृश्य बिम्बात्मक अर्थ होता है, वह वास्तु कला या मूर्ति कला या चित्र कला के रूप में 'रूपात्मक अर्थ' बना रहता है ।

जो 'श्रव्य बिम्बात्मक अर्थ' होता है, वह संगीत कला के रूप में 'रूपात्मक अर्थ बना रहता है । संगीत कला मे 'राग-रचना' के रूप मे 'रूपात्मक अर्थ' बना रहता है ।

'श्रव्य बिम्बात्मक अर्थ' काव्य कला के रूप मे तो ऐसा 'रूपात्मक अर्थ' बना रहता है, जिसमे दृश्य बिम्बात्मक अर्थ, श्रव्य बिम्बात्मक अर्थ, घ्राण्य बिम्बात्मक अर्थ, स्वाद्य बिम्बात्मक अर्थ तथा स्पर्श्य बिम्बात्मक अर्थ का संयोग बना रहता है । इस प्रकार की विशेषता के बल पर ही काव्य कला 'विशेष कला' या 'सर्वश्रेष्ठ कला' बनी रहती है । काव्य कला मे 'काव्यकृति' तथा 'वाक्य-रचना' के रूप मे 'रूपात्मक अर्थ' बना रहता है ।

इस प्रकार 'त्रिविध कलार्थ' का 'बिम्बात्मक अर्थ' तथा 'रूपात्मक अर्थ' बना रहना महत्वपूर्ण होता है ।

१५. त्रिविध कलार्थ : एकरूप अर्थ

'त्रिविध कलार्थ' का 'रूपात्मक अर्थ' बना रहना जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही 'रूपात्मक अर्थ' का 'एकरूप अर्थ' बना रहना महत्त्वपूर्ण है । इसका अर्थ यह है कि 'अर्थ और कला (कलाकृति) मे अभेदता के रूप में एकरूपता बनी रहती है ।'

स्वाभाविकता यह है कि 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' यानी 'त्रिविध कलाकारार्थ' अपने मूल रूप में साकार्य, मूर्त्य, चित्र्य, गेय तथा अभिव्यक्त्य होता है ।

कलाकार अपने 'साकार्य त्रिविध कलाकारार्थ' का साकारीकरण 'वास्तुकला' के रूप में कर देता है । इससे 'वास्तु कला' के रूप मे अर्थात् 'साकार' के रूप में साकार्य और साकारीकरण में अभेदता तथा एकरूपता के आधार पर 'त्रिविध कलार्थ' ही 'एकरूप अर्थ' बना रहता है । कभी कलाकार अपने 'मूर्त्य त्रिविध कलाकारार्थ' का मूर्तीकरण 'मूर्तिकला के रूप मे कर देता है । इससे 'मूर्ति कला' के रूप में अर्थात् 'मूर्ति' के रूप मे मूर्त्य और मूर्तीकरण मे अभेदता तथा एकरूपता के आधार पर 'त्रिविध कलार्थ' ही 'एकरूप अर्थ' बना रहता है ।

कभी कलाकार अपने 'चित्र्य त्रिविध कलाकारार्थ' का चित्रीकरण 'चित्रकला' के रूप में कर देता है । इससे 'चित्र कला' के रूप मे अर्थात् 'चित्र' के रूप मे चित्र्य और चित्रीकरण में अभेदता तथा एकरूपता के आधार पर 'त्रिविध कलार्थ' ही एक रूप अर्थ' बना रहता है ।

कभी कलाकार अपने 'गेय त्रिविध कलाकारार्थ' का गायन 'राग कला' अर्थात सगीतकला के रूप में कर देता है । इससे संगीत कला के रूप मे अर्थात् 'राग' यानी 'सगीत' के रूप मे गेय और गायन मे अभेदता तथा एकरूपता के आधार पर 'त्रिविध कलार्थ' ही 'एकरूप अर्थ' बना रहता है ।

कभी कलाकार अपने 'अभिव्यक्त्य त्रिविध कलाकारार्थ' का अभिव्यक्तिकरण 'काव्य कला' के रूप में कर देता है । इससे 'काव्य कला' के रूप मे अर्थात् 'काव्य' यानी 'अभिव्यक्ति' के रूप में अभिव्यक्त्य और अभिव्यक्तीकरण मे अभेदता तथा एकरूपता के आधार पर 'त्रिविध कलार्थ' ही 'एकरूप अर्थ' बना रहता है ।

इस प्रकार 'साकार हुआ,' 'मूर्त हुआ', चित्र बना हुआ,' 'संगीत (राग) बना हुआ और काव्य बना रूप यानी अभिव्यक्त हुआ 'त्रिविध कलार्थ' ही 'वास्तु', 'मूर्ति' 'चित्र 'संगीत' और 'काव्य' यानी 'अभिव्यक्ति (अभिव्यंजना) के रूप में 'एक रूप अर्थ' बना रहता है । तभी तो 'त्रिविध कलार्थ' और वास्तु या मूर्ति या चित्र या संगीत या काव्य यानी अभिव्यक्ति को अलग-अलग से समझा नहीं जा सकता, उनको तो 'एकरूप अर्थ' ही समझा जा सकता है ।

१६. त्रिविध कलार्थ: मौलिक अर्थ

मूलतः जो 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' यानी 'त्रिविध कलाकारार्थ होता है, वह 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' ही होता है । फलस्वरूप कलाकार से सृजित कला (कलाकृति) मे व्याप्त रहने वाला 'त्रिविध कलार्थ भी 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ ही होता है । इसी विशेषता से ही कला का आस्वादन करने वाले सहृदय के 'मानस' मे उभरने वाला 'त्रिविध सहृदयार्थ' भी 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' होता है ।

'त्रिविध कलाकारार्थ', 'त्रिविध कलार्थ' और 'त्रिविध सहृदयार्थ' इन तीनों के 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' बने रहने का पहला महत्वपूर्ण कारण यह है कि ये तीनों भी भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का 'समन्वयात्मक रूप' बने रहते हैं । तभी तो 'समन्वयात्मक रूप' में ही इनका अस्तित्व बना रहता है, अलग-अलग से नहीं ।

दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि इन तीन अर्थों में से सबसे पहले 'भावात्मक अर्थ' अस्तित्व में आ जाता है । फिर 'विचारात्मक अर्थ' अस्तित्व में आ जाता है और उसके साथ अपने आप 'भावात्मक अर्थ' का समन्वय हो जाता है । इस प्रकार 'विचारात्मक अर्थ' के साथ 'भावात्मक अर्थ' का समन्वय होने से ही 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' के बने रहने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है । बाद मे 'कल्पनात्मक अर्थ' के साथ 'भावात्मक अर्थ' और 'विचारात्मक अर्थ' का सहज समन्वय हो जाता है, जिससे इन तीनो अर्थों की 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' बने रहने की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है । इसका अर्थ यह है कि केवल कलाकार, कला और सहृदय इन तीनों के सन्दर्भ में ही भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वयात्मक रूप 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' के रूप मे अस्तित्व में आ सकता है, अन्य किसी के भी सन्दर्भ में नहीं ।

तीसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि 'कल्पनात्मक अर्थ' उस ईश्वर प्रदत्त या प्रकृतिप्रदत्त 'कल्पना' पर आधारित होता है, जो (कल्पना) उन नये नये अनुरूप बिम्बों या रूपों का अनुभव करती है, जिनके सृजन मे आवश्यक वियोगात्मकता के साथ-साथ अत्यंत महत्वपूर्ण और अत्यावश्यक संयोगात्मकता का प्रयोग किया हुआ रहता है । इसी कारण से कल्पनात्मक अर्थ' अपने आप 'कल्पनात्मक चित्र' बनकर अपने में 'मौलिकता यानी नवीनता' को प्रतिष्ठित कर लेता है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह हो जाता है कि जिस क्षण 'भावात्मक अर्थ' और 'विचारात्मक अर्थ' के समन्वय के साथ 'कल्पनात्मक अर्थ' का सयोग हो जाता है, उसी क्षण इन तीनों अर्थों का समन्वय 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' बन जाता है । यह 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' ही 'त्रिविध कलार्थ' बना रहता है ।

इस प्रकार 'त्रिविध कलार्थ' रूपी मौलिक अर्थ 'यानी' नवीन अर्थ से व्याप्त होकर ही 'कला' (कलाकृति) अस्तित्व में आ जाती है । इसी कारण से ही सहृदय कला में व्याप्त

'मौलिक अर्थ' यानी नवीन अर्थ' को ग्रहण करते हुए कला का आस्वादन करता रहता है।

सहृदय कला (कलाकृति) मे व्याप्त 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ को ग्रहण करते हुए ही वास्तु कला को सभी ओर से निहारने में दंग हो जाता है, मूर्ति कला को बारीकी से निरखने में तन्मय हो जाता है ; चित्र कला को सूक्ष्मता से देखने में मग्न हो जाता है संगीत कला को एकाग्रता से सुनने मे तल्लीन हो जाता है और काव्य कला को ध्यानपूर्वक सुनने मे अथवा पढने में आत्मविभोर हो जाता है ।

वास्तव में 'त्रिविध कलार्थ अपने स्वाभाविक रूप में ही 'मौलिक अर्थ' 'यानी' नवीन अर्थ' बना रहता है, इसलिए ही तो सहृदय निहारते हुए अथवा निरखते हुए अथवा देखते हुए अथवा सुनते हुए अथवा पठन करते हुए निरंतर कला का आस्वादन करता रहता है और 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' को ग्रहण करता रहता है ।

स्पष्ट है कि 'त्रिविध कलार्थ' का 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' होना बहुत महत्वपूर्ण होता है । इसी के फलस्वरूप ही सहृदय के 'मानस' में 'त्रिविध सहृदयार्थ' भी 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' बना रहता है ।

१७. त्रिविध कलार्थ : श्रृंखलित सघन अर्थ

कलाकार से सृजित कला (कलाकृति) में जो व्याप्त होता है वह 'त्रिविध कलार्थ' यथार्थ में 'शृंखलित सघन अर्थ' होता है । इसका अर्थ यह है कि 'त्रिविध कलार्थ' शृंखला रूप' तथा 'सघन रूप' होता है ।

दो रीतियों से 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'शृंखला रूप अर्थ' यानी 'शृंखलित अर्थ' बना रहता है ।

एक रीति के अनुसार जब कलाकार के 'मानस' मे 'भावात्मक अर्थ' रूपी कडी 'विचारात्मक अर्थ' रूपी कडी के साथ जुड जाती है और जब ये दोनो कडियॉ 'कल्पनात्मक अर्थ' रूपी कड़ी के साथ जुड जाती हैं, तब अपने आप 'शृंखलित अर्थ' के रूप में 'त्रिविध कलाकारार्थ' अस्तित्व मे आ जाता है । यह 'शृंखलित अर्थ' रूपी 'त्रिविध कलाकारार्थ' ही कलाकार से सृजित कला (कलाकृति) में 'शृखलित अर्थ' के रूप में 'त्रिविध कलार्थ' बना रहता है । इस प्रकार पहली रीति के अनुसार 'कला (कलाकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'शृंखलित अर्थ' बना रहता है ।

दूसरी रीति के अनुसार 'त्रिविध कलार्थ' अपने में समाहित 'कल्पनात्मक अर्थ' के सहयोग से अधिक से अधिक 'शृंखलित अर्थ' बना रहता है । इसका कारण यह है कि कलाकार की कल्पना ने 'कल्पनात्मक अर्थ' के मूल मे अधिक से अधिक नये नये बिम्बो को यानी कल्पनाचित्रो को संश्लिष्ट किया हुआ रहता है । इसीलिए 'त्रिविध कलार्थ' सभाव्यता' क आधार पर अधिक से अधिक 'शृखलित अर्थ बना रहता है ।

'शृखलित अर्थ' के रूप में 'त्रिविध कलार्थ' मे से सर्वप्रथम हृदयस्पर्शी 'भावात्मक अर्थ' रूपी कडी उभर आती है, फिर बुद्धि (प्रज्ञा) को विचार प्रवृत्त कराने वाली 'विचारात्मक अर्थ' रूपी कडी उभर जाती है और साथ ही संभाव्य कल्पनाचित्रो को यानी बिम्बो को दिखाने के लिए कल्पना को प्रेरित कराने वाली 'कल्पनात्मक अर्थ' रूपी कडी भी उभर आती है । जब 'कल्पनात्मक अर्थ' रूपी कडी उभर आती है तब 'विविध सभाव्य अर्थों की लडी ही उभरने लगती है । इससे 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'शृंखलित अर्थ अपने आप सघन

अर्थ' बन जाता है, अधिक से अधिक 'गहरा अर्थ' बन जाता है और ज्यादा से ज्यादा 'नवीन अर्थ' भी बन जाता है ।

इस प्रकार 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'शृंखलित सघन अर्थ' को ग्रहण करते हुए सहृदय सहज ही वास्तु कला को निहारने मे दग हो जाता है; मूर्ति कला को निरखने मे तन्मय हो जाता है; चित्र कला को देखने मे मग्न हो जाता है; सगीत कला को सुनने मे तल्लीन हो जाता है और काव्य कला को सुनने में या पढ़ने में आत्मविभोर हो जाता है ।

स्पष्ट है कि 'त्रिविध कलार्थ' का 'शृंखलित सघन अर्थ' होना भी बहुत महत्वपूर्ण होता है । इसी के कारण ही सहृदय के 'मानस' मे 'विविध संभाव्य अर्थो की लड़ी 'उभरती रहती है ; इससे सहृदय के 'मानस' में एक ऐसी प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है, जिससे एक अर्थ से दूसरा संभाव्य अर्थ निकलता है, दूसरे अर्थ से तीसरा समाव्य अर्थ निकलता है तीसरे अर्थ से चौथा संभाव्य अर्थ निकलता है और चौथे अर्थ से पाँचवाँ संभाव्य अर्थ निकलता है । इस प्रकार यह संभाव्य अर्थ-निष्पत्ति का सिलसिला चला ही रहता है, जो 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'शृंखलित सघन अर्थ' का स्वाभाविक परिणाम होता है ।

१८. त्रिविध कलार्थ : प्रभावात्मक अर्थ

जो 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' यानी 'त्रिविध कलाकारार्थ' होता है, वह अपने मूल रूप मे 'प्रभावात्मक अर्थ' भी होता है । इसी कारण से कलाकार 'त्रिविध कलाकारार्थ' रूपी 'प्रभावात्मक अर्थ' से प्रभावित हो जाता है और उसे 'कला-सृजक प्रयोजन' के रूप मे स्वीकार कर लेता है ।

'प्रभावात्मक अर्थ' कलाकार को चैन से नहीं बैठने देता । वह तो कलाकार को बार बार प्रेरित करता है कि कलाकार अपने 'त्रिविध कलाकारार्थ' की अभिव्यक्ति करे, जिससे कला (कलाकृति) का सृजन या तो वास्तु के रूप में हो जाय या मूर्ति के रूप में या चित्र के रूप में या संगीत के रूप में या काव्य के रूप में । तब परिणाम यह हो जाता है कि कलाकार अपने 'त्रिविध कलाकारार्थ' यानी 'प्रभावत्मक अर्थ' की अभिव्यक्ति करते हुए या तो वास्तु कला या मूर्तिकला या चित्रकला या संगीत कला या काव्य कला का सृजन कर देता है और उसमे अपने 'प्रभावात्मक अर्थ' को 'त्रिविध कलार्थ' बना देता है । इस प्रकार एक स्वाभाविक क्रिया के रूप में 'त्रिविध कलार्थ' भी प्रभावात्मक अर्थ' बना हुआ रहता है, जिससे कला सहज ही प्रभावशाली बनी रहती है ।

कलाकार से सृजित कला इसलिए प्रभावशाली बनी रहती है कि उसमे 'त्रिविध कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे 'प्रभावात्मक अर्थ' बना रहता है । अपने भीतर व्याप्त प्रभावात्मक अर्थ' के बल पर ही 'कला' सहृदय को अपना आस्वादन करने के लिए उत्सुक बना देती है । परिणामस्वरूप सहृदय उत्सुक 'दर्शक' के रूप मे वास्तु कला या मूर्तिकला या चित्र कला का आस्वादन करने लगता है अथवा उत्सुक 'श्रोता के रूप मे संगीत कला का आस्वादन करने लगता है अथवा उत्सुक 'श्रोता' या उत्सुक 'पाठक' के रूप में काव्य कला का आस्वादन करने लगता है, जिससे उसके 'मानस' मे 'त्रिविध सहृदयार्थ के रूप मे 'प्रभावात्मक अर्थ' की ही अभिव्यक्ति हो जाती है

यदि सहृदय अपने में 'आलोचक' अर्थात 'समीक्षक' बनने की क्षमता रखता है तो कला के आस्वादन के फलस्वरूप उसके 'मानस' मे जो 'त्रिविध सहृदयार्थ' के रूप मे

प्रभावात्मक अर्थ' की अभिव्यक्ति हुई रहती है, उससे प्रभावित होकर सहृदय उस कला की आलोचना अर्थात् समीक्षा करने को प्रवृत्त हो जाता है और आलोचना अर्थात् समीक्षा के रूप में अपने 'मानस' के भीतर अभिव्यक्त हुए अर्थात् उभरे हुए 'प्रभावात्मक अर्थ' की अभिव्यक्ति कर देता है ।

स्पष्ट है कि कलाकार, कला, सहृदय और आलोचक इन सभी की दृष्टि से 'त्रिविध कलार्थ' का 'प्रभावात्मक अर्थ' बना रहना अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है ।

१९. त्रिविध कलार्थ : सौन्दर्य रूपी अर्थ

जो 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' यानी 'त्रिविध कलाकारार्थ' होता है वही अपने मे निहित 'आकर्षण शक्ति' के बल पर 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है । 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही 'चित्ताकर्षक अर्थ,' 'मनोहर अर्थ' या 'रमणीय अर्थ' होता है ।

'आकर्षक' होने से ही अर्थात् 'रमणीय' होने से ही अर्थात् 'सुन्दर' होने से ही 'त्रिविध कलाकारार्थ' अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है । वास्तव मे अर्थ की 'आकर्षकता' अर्थात् 'रमणीयता' अर्थात् 'सुन्दरता' ही 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' का मूलभूत आधार है । यह मूल भूत आधार ही 'त्रिविध कलाकारार्थ' को स्वाभाविक रूप मे 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना देता है ।

अपने 'त्रिविध कलाकारार्थ' रूपी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' से ही कलाकार सहज प्रभावित हो जाता है और 'सौन्दर्य रूपी अर्थ को 'अभिव्यक्त' करने की क्रिया के रूप में 'कला का सृजन' करके उसमे 'त्रिविध कलार्थ' के रूप में 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' की ही प्रतिष्ठापना कर देता है ।

चाहे 'त्रिविध कलाकारार्थ' हो, चाहे 'त्रिविध कलार्थ' हो वह 'तीनो अर्थों का समन्वयात्मक रूप' होने के कारण अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है ।

वास्तव मे साधारण अर्थ किसी एक ही अर्थ पर आधारित होता है । लेकिन 'कलाकारार्थ' या 'कलार्थ' तो 'तीन अर्थों के समन्वयात्मक रूप' पर ही आधारित होता है । इसी विशेषता से 'कलाकारार्थ' या 'कलार्थ' 'असाधारण अर्थ' बना रहता है । भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ के 'समन्वयात्मक रूप' के आधार पर ही 'असाधारण अर्थ' बना रहता है । इसीलिए 'त्रिविध कलाकारार्थ' अथवा 'त्रिविध कलार्थ' ही 'असाधारण अर्थ' के रूप मे 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है ।

महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' मे 'भावात्मक अर्थ' 'विचारात्मक अर्थ' और ''कल्पनात्मक अर्थ' एकत्रित रूप से सुन्दर बने रहते हैं । इस प्रकार यहाँ भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप मे सुन्दर बना रहना ही असाधारणत्व अर्थात् आकर्षकत्व अर्थात् रमणीयत्व अर्थात् सुन्दरत्व का परिचायक है । इसीलिए 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है ।

जो 'त्रिविधि कलार्थ' अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है, वही 'त्रिविध कलार्थ' कला का आस्वादन करने वाले सहृदय के 'मानस' में स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप मे 'त्रिविध सहृदयार्थ' के रूप मे भी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही बना रहता है

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि 'त्रिविध कलाकारार्थ', 'त्रिविध कलार्थ' तथा 'त्रिविध सहृदयार्थ' को लेकर जो 'असाधारण अर्थ' अर्थात् 'आकर्षक अर्थ' अर्थात् 'रमणीय अर्थ' अर्थात् 'सुन्दर अर्थ' की विशेष स्थिति बनी रहती है, उससे कलाकार, कला और सहृदय मे सौन्दर्यात्मक अर्थ-तादात्म्य की स्थिति' बनी रहती है ।

'त्रिविध कलार्थ' इसलिए भी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है कि अपनी 'संभाव्यता' रूपी विशेषता से 'त्रिविध कलार्थ' काल और स्थल की सीमा से मुक्त होकर सभी सहृदयो के लिए 'विश्वात्मक अर्थ' अर्थात् सार्वकालिक अर्थ, सार्वत्रिक अर्थ तथा सार्वजनीन अर्थ बना हुआ रहता है । इस रूप मे 'त्रिविध कलार्थ' वैयक्तिकता से मुक्त होकर 'निर्वैयक्तिक अर्थ' के रूप मे भी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है ।

'त्रिविध कलार्थ' इसलिए भी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है कि अपनी 'बिम्बात्मकता रूपी विशेषता से 'त्रिविध कलार्थ' सहज ही 'बिम्बात्मक अर्थ' बना हुआ रहता है । सहृदय के मानस' मे भी जो 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'त्रिविध सहृदयार्थ' के रूप में 'बिम्बात्मक अर्थ' बन जाता है, वह भी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ ही बनकर रहता है ।

'रूपात्मक अर्थ' बने रहने की अपनी विशेषता के आधार पर भी 'त्रिविध कलार्थ अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है । जब सहृदय के 'मानस' में 'त्रिविध कलार्थ अपने आप 'त्रिविध सहृदयार्थ' के रूप में 'रूपात्मक अर्थ' बन जाता है, तब वह भी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही बनकर रहता है ।

'एक रूप अर्थ' बने रहने की अपनी विशेषता के कारण भी 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है । इससे सहृदय के 'मानस' में 'त्रिविध कलार्थ' स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में 'त्रिविध सहृदयार्थ' के रूप में 'एक रूप अर्थ'बन कर 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है ।

'मौलिक अर्थ' अर्थात् 'नवीन अर्थ' बने रहने की अपनी विशेषता से भी 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है । इससे सहृदय के 'मानस मे त्रिविध कलार्थ' सहज ही 'त्रिविध सहृदयार्थ' के रूप में 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ बनकर 'सौन्दर्य रूपी अर्थ बना रहता है ।

'शृंखलित सघन अर्थ' बने रहने की अपनी विशेषता के कारण भी 'त्रिविध कलार्थ की स्वाभाविकता यह होती है कि वह कला के अन्तर्गत भी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है और सहृदय के 'मानस' में भी 'त्रिविध सहृदयार्थ के रूप मे 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है ।

'प्रभावात्मक अर्थ' बने रहने की भी अपनी विशेषता को लेकर 'त्रिविध कलार्थ अपने आप कला के भीतर भी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है और कला का आस्वादन करने वाले सहृदय के 'मानस' मे भी 'त्रिविध सहृदयार्थ'के रूप मे सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है ।

अत्यंत महत्त्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि 'त्रिविध कलार्थ' को 'विश्वात्मक अर्थ बनाने वाली 'संभाव्यता', 'बिम्बात्मक अर्थ' बनाने वाली 'बिम्बात्मकता', 'रूपात्मक अर्थ बनाने वाली 'रूपात्मकता', 'एक रूप अर्थ' बनाने वाली 'एक रूपता', 'शृंखलित सघन अर्थ बनाने वाली 'शृंखलित सघनता' और 'प्रभावात्मकं अर्थ' बनाने वाली 'प्रभावात्मकता' अलग-अलग से भी और सभी एक साथ मिलकर समन्वि‍ा रूप से भी आकर्षकता

रमणीयता अर्थात् सुन्दरता का अत्यधिक महत्वपूर्ण 'लक्षण' बन जाती है और 'त्रिविध कलार्थ' को स्वाभाविक रूप मे 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना देती हैं ।

'संभाव्यता' से 'त्रिविध कलार्थ' का 'विश्वात्मक अर्थ' बनना ही उसका असाधारण आकर्षक, रमणीय यानी सुन्दर होना है और ऐसा होना ही उसका 'सौन्दर्य रूपी अर्थ बनकर रहना है । 'संभाव्यता' के बल पर 'विश्वात्मक अर्थ' के रूप मे 'सौन्दर्य रूपी अर्थ बनकर रहने की क्षमता केवल, 'त्रिविध कलार्थ' में ही होती है ।

'बिम्बात्मकता' से 'त्रिविध कलार्थ' का 'बिम्बात्मक अर्थ' बनना भी उसका असाधारण आकर्षक, रमणीय यानी सुन्दर होना है और ऐसा होना भी उसका 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहना ही है । इस प्रकार की क्षमता भी केवल 'त्रिविध कलार्थ' में ही होती है ।

'रूपात्मकता' से 'त्रिविध कलार्थ' का 'रूपात्मक अर्थ' बनना भी उसका असाधारण आकर्षक, रमणीय यानी सुन्दर होना है और ऐसा होना भी उसका 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहना ही है । इस प्रकार की क्षमता भी केवल 'त्रिविध कलार्थ' में ही होती है ।

'एक रूपता' से 'त्रिविध कलार्थ' का 'एक रूप अर्थ' बनना भी उसका असाधारण, आकर्षक, रमणीय यानी सुन्दर होना है और ऐसा होना भी उसका 'सौन्दर्य रूपी अर्थ बनकर रहना ही है । इस प्रकार की क्षमता भी केवल 'त्रिविध कलार्थ' मे ही होती है ।

'मौलिकता' अर्थात् 'नवीनता' से 'त्रिविध कलार्थ' का 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' बनना भी उसका असाधारण, आकर्षक, रमणीय यानी सुन्दर होना है और ऐसा होना भी उसका 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहना ही है । इस प्रकार की क्षमता भी केवल त्रिविध कलार्थ' मे ही होती है ।

'शृंखलित सघनता' से 'त्रिविध कलार्थ' का 'शृंखलित सघन अर्थ' बनना भी उसका असाधारण, आकर्षक, रमणीय यानी सुन्दर होना है और ऐसा होना भी उसका 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहना ही है । इस प्रकार की क्षमता भी केवल 'त्रिविध कलार्थ' मे ही होती है ।

'प्रभावात्मकता' से 'त्रिविध कलार्थ' का 'प्रभावात्मक अर्थ' बनना भी उसका असाधारण आकर्षक, रमणीय यानी सुन्दर होना है और ऐसा होना भी उसका 'सौन्दर्य रूपी अर्थ बनकर रहनी ही है । इस प्रकार की क्षमता भी केवल 'त्रिविध कलार्थ' मे ही होती है ।

यह वास्तव है कि अपनी कुछ विशेषताओं के आधार पर जो साधारण से निराला यानी असाधारण बना रहता है, वह अपने आप आकर्षक बना रहता है । वह असाधारण ध्यानाकर्षण का केन्द्र बना रहता है । उसका असाधारणत्व अर्थात् उसका विशेषत्व ध्यान का बार बार आकर्षित करा लेता है । तब मन उस असाधारणत्व अर्थात् विशेषत्व के आकर्षण में रमने लगता है और उस असाधारण के रमणीयत्व अर्थात् सुंदरत्व में लीन हो जाता है । इस प्रक्रिया से स्पष्ट होता है कि जो असाधारण होता है,वह स्वाभाविकता से ही आकर्षक, रमणीय तथा सुन्दर होता है । दूसरे शब्दों मे कहा जा सकता है कि जो असाधारण होता है वह अपने आप 'सौन्दर्यात्मक' होता ही है । इस प्रकार की महत्वपूर्ण वास्तविकता 'त्रिविध कलार्थ' पर पूर्णतया लागू हो जाती है ।

'त्रिविध कलार्थ' में अर्थ की 'त्रिविधता', त्रिविध अर्थो की 'समन्वयात्मकता',त्रिविध अर्थों की विश्वात्मकता (संभाव्यता), बिम्बात्मकता, 'रूपात्मकता,' 'एकरूपता' 'मौलिकता यानी 'नवीनता' 'शृंखलित सघनता' और 'प्रभावात्मकता' इन सभी विशेषताओं का एकीकृत

संयोग होकर रहता है और उसी एकीकृत संयोग के आधार पर 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'असाधारण अर्थ बना रहता है । इतनी सारी विशेषताओं के एकीकृत संयोग से युक्त होना ही 'त्रिविध कलार्थ' का 'असाधारण अर्थ' बन जाना है।

'असाधारण अर्थ' बन जाने के कारण 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप आकर्षक बना रहता है ।वह सहृदय के ध्यानाकर्षण का केन्द्र बना रहता है । उस 'त्रिविध कलार्थ' का असाधारणत्व अर्थात् उसका विशेषत्व सहृदय के ध्यान को बार बार आकर्षित करा लेता है। तबसहृदय का मन 'त्रिविध कलार्थ' के असाधारणत्व अर्थात् विशेषत्व के आकर्षण में रमने लगता है और उस 'त्रिविध कलार्थ{ के रमणीयत्व अर्थात् सुन्दरत्व में लीन हो जाता है । इस प्रक्रिया से सिद्धहोता है,कि जो 'असाधारण अर्थ' रूपी 'त्रिविध कलार्थ' होता है, वह अपने स्वभाव से ही 'आकर्षक अर्थ', रमणीय अर्थ' तथात 'सुन्दर अर्थ' होता है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो 'असाधारण अर्थ' रूपी 'त्रिविध कलार्थ' होता है वह अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर आकर्षण का और रमने का केन्द्र बना रहता है । इस प्रकार होना ही 'त्रिविध कलार्थ' के 'सुन्दर अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' होने का लक्षण है ।

'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है, इसलिए ही सहृदय वास्तुकला को सभी ओर से निहारने में दंग हो जाता है,मूर्तिकला को बारीकी से निरखनें मे तन्मय हो जाता है; चित्रकला को सूक्ष्मता से देखने में मग्न हो जाता है, संगीतकला को एकाग्रता से सुनने में तल्लीन हो जाता है और काव्यकला को ध्यानपूर्वक सुनने मे या पढ़ने मे आत्मविभोर हो जाता है ।

इस प्रकार 'कला का आस्वादन करने में रमने की दृष्टि से 'त्रिविध कलार्थ' का 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहना' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।यहॉ यह भी महत्वपूर्ण है कि अपने मूल रूप में 'त्रिविध कलाकारार्थ, तथा स्वाभाविक फल के रूप में 'त्रिविध सहृदयार्थ' भी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही बने रहते हैं । क्योकि वे दोनों भी उपर्युक्त सभी विशेषताओं के एकीकृत संयोग से युक्त होकर 'असाधारण अर्थ' के रूप में 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बने रहते है।

२०. त्रिविध कलार्थ : आनन्दप्रद अर्थ

अत्यधिक महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि 'त्रिविध कलाकारार्थ', 'त्रिविध कलार्थ' और 'त्रिविध सहृदयार्थ' अपने अपने स्थान पर 'आनन्दप्रद अर्थ' ही होते है।

सर्वप्रथम 'त्रिविध कलाकारार्थ' कलाकार के 'मानस' में स्वयं कलाकार के लिए आनन्दप्रद अर्थ' बना रहता है ।

फिर वही 'त्रिविध कलाकारार्थ' कलाकार से सृजित कला मे 'त्रिविध कलार्थ' के रूप में व्याप्त होकर 'आनन्दप्रद अर्थ' ही बना रहता है । इसका अर्थ यह हुआ कि 'कला' के भीतर निहित 'त्रिविध कलार्थ' भी स्वाभाविक रूप से 'आनन्दप्रद अर्थ' ही होता है ।

जब सहृदय कला का आस्वादन करने लगता है, तब 'त्रिविध कलार्थ' एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप मे सहृदय के 'मानस' में 'त्रिविध सहृदयार्थ' बना रहता है। कला का आस्वादन करने से सहृदय के 'मानस' में उभरा हुआ 'त्रिविध सहृदयार्थ' सहृदय के लिए 'आनन्दप्रद अर्थ' ही बना रह जाता है । इसका अर्थ यह हुआ कि सहृदय के 'मानस' मे त्रिविध सहृदयार्थ' भी अपने आप 'आनन्दप्रद अर्थ' ही होता है।

अपने विशेष रूप मे अर्थात् 'त्रिविध कलार्थः सौन्दर्य रूपी अर्थ' इस विषय के विवेचन मे निर्देशित की गयी सभी विशेषताओं के एकीभूत संयोग के रूप में 'त्रिविध कलार्थ' का 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहना ही दूसरे शब्दो मे उस 'त्रिविध कलार्थ' का 'आनन्दप्रद अर्थ' बनकर रहना ही है ।

वास्तविकता यही है कि कि 'त्रिविध कलार्थ' का 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहने के कारण ही सहृदय वास्तुकला को सभी ओर से निहारने मे दंग होकर भीतर ही भीतर आनन्द का अनुभव करता है , मूर्तिकला को बारीकी से निरखने मे तन्मय होकर भीतर ही भीतर आनन्द का अनुभव करता है ; चित्रकला को सूक्ष्मता से देखने मे मग्न होकर भीतर ही भीतर आनन्द का अनुभव करता है ; संगीत कला को एकाग्रता से सुनने में तल्लीन होकर भीतर ही भीतर आनन्द का अनुभव करता है और काव्यकला को ध्यानपूर्वक सुनने में अथवा पढ़ने मे आत्मविभोर होकर भीतर ही भीतर आनन्द का अनुभव करता है । इससे सिद्ध होता है कि 'त्रिविध कलार्थ' का 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहना ही उस 'त्रिविध कलार्थ' का 'आनन्दप्रद अर्थ' बनकर रहना है ।

वास्तव मे 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' मे जो असाधारणत्व, आकर्षकत्व (आकर्षण), रमणीयत्व (रम्यत्व) यानी सुन्दरत्व (सौन्दर्य) होता है, वही तो सहृदय को वास्तुकला का आस्वादन कर लेने में दंग कराता है;मूर्तिकला का आस्वादनकर लेने में तन्मय कराता है ; चित्रकला का आस्वादन कर लेने में मग्न कराता है , संगीतकला का आस्वादन कर लेने में तल्लीन कराता है और काव्यकला का आस्वादन कर लेने में आत्मविभोर कराता है।

इस प्रकार 'त्रिविध कलार्थ' मे जो 'मूल तत्त्व' के रूप में असाधारणत्व, आकर्षकत्व (आकर्षण) रमणीयत्व (रम्यत्व) यानी सुन्दरत्व (सौन्दर्य) होता है, वही 'त्रिविध कलार्थ' को 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' यानी 'आनन्दप्रद अर्थ' बना देता है । इसी कारण से ही सहृदय कला का आस्वादन कर लेने के रूप में जब 'त्रिविध कलार्थ' का आस्वादन कर लेता है तब सहृदय 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' यानी 'आनन्दप्रद अर्थ' का ही आस्वादन कर लेता है और उसके स्वाभाविक परिणाम के रूप मे सहृदय अपने में आनन्द का अनुभव करने लगता है ।

'कला' की यथार्थ 'सार्थकता' सहृदय को 'आनन्द' का अनुभव कराने में ही होती है । इस दृष्टि से कला में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' को असाधारणत्व, आकर्षकत्व (आकर्षण), रमणीयत्व (रम्यत्व) यानी सुन्दरत्व (सौन्दर्य) इस 'मूल तत्व' के संयोग से 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' यानी 'आनन्दप्रद अर्थ' बनकर रहना अनिवार्य ही होता है ।

वास्तव मे 'कला' का 'कला-सृजक प्रयोजन' सहृदय को आनन्द का अनुभव कराना ही होता है और यह प्रयोजन (उद्देश्य) तभी सफल (सार्थक) होता है, जब 'कला' अपने 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्यरूपी अर्थ' यानी 'आनन्दप्रद अर्थ' से सहृदय को आनन्द का अनुभव करा देती है ।

'कला' के प्रयोजन की सफलता के रूप मे 'सहृदय' के 'मानस' मे 'त्रिविध कलार्थ' मे से प्रथम 'भावात्मक अर्थ' का उभरना, फिर 'विचारात्मक अर्थ' तथा 'कल्पनात्मक अर्थ' का उभरना और स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप मे उन तीनों अर्थों का समन्वित रूप मे 'त्रिविध सहृदयार्थ' बन जाना और 'सहृदय' को आनन्द का अनुभव करा देना अत्यावश्यक होता

है। इस दृष्टि से ही विशेष 'त्रिविध कलार्थ' का 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ यानी 'आनन्दप्रद अर्थ' बनकर रहना अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है ।

यह भी एक महत्वपूर्ण बात है कि 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'आनन्दप्रद अर्थ' के रूप में सहृदय को आनन्द देने में अर्थात् सहृदय को आनन्द का अनुभव कराने में सफल हो जाता है । इस प्रकार कला का आस्वादन करने वाले 'सहृदय' को जो 'आनन्द अनुभवने को मिलता है, वह 'कलानन्द' (अर्थात् कला के आस्वादन से मिलने वाला आनन्द) कहलाए जाने योग्य होता है ।

वह 'कलानन्द' अपने स्वभाव से ही अन्य प्रकार के आनन्द से (अर्थात् अन्य प्रकार की बातों से मिलने वाले आनन्द से) निराला होता है । क्योंकि 'कलानन्द' अपने मूल रूप में 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'असाधारण अर्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' यानी 'आनन्दप्रद अर्थ की स्वाभाविक फलनिष्पत्ति होता है । अतएव 'कलानन्द' का महत्त्व कुछ निराला तथा कुछ विशेष ही होता है । इससे 'कलानन्द' स्वाभाविक रूप में 'कला मूल्य' ही बनकर रहता है।

'कलानन्द' का 'कलामूल्य' बनकर रहने का अर्थ यह है कि 'स्वयं कला ही 'आनन्दप्रद' बनी रहती है, तभी तो कला अपने आप 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'आनन्दप्रद अर्थ' से व्याप्त रहती ही है । ऐसा होना 'कला' के लिए अनिवार्य होता है । इसी कारण से चाहे वास्तुकला हो, चाहे मूर्तिकला हो, चाहे चित्रकला हो, चाहे संगीतकला हो, चाहे काव्यकला हो, वह 'आनन्दप्रद अर्थ' से व्याप्त रहती ही है और सहृदय को अपने 'कलामूल्य' के रूप में 'कलानन्द' का अनुभव कराती ही है ।

वास्तव में 'आनन्दप्रद अर्थ' से व्याप्त रहने से ही कला में वह 'क्षमता' आती है, जिससे कला सहृदय को अपने 'कलामूल्य' के रूप में 'कलानन्द' का अनुभव कराने में सफल हो जाती है । कला की इस प्रकार की सफलता में ही उसके प्रयोजन की सफलता है । अपने 'कलामूल्य' के रूप मे सहृदय को 'कलानन्द' का अनुभव कराना ही कला का प्रयोजन होता है । इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए कला को 'अपने आप 'आनन्दप्रद अर्थ' से व्याप्त रहना आवश्यक होता है ।

सच तो यह है कि अपनी पूर्ण स्थिति में कला स्वयं कलाकार को भी अपने 'कलामूल्य' के रूप में 'कलानन्द' का अनुभव कराती है । इसका कारण यह है कि कला की पूर्ण स्थिति में उसका सृजक स्वयं कलाकार भी 'एक सहृदय' ही बनकर रहता है । अपने ही द्वारा सृजित कला का आस्वादन करने के लिए कलाकार का 'एक सहृदय' बनकर रहना एकदम स्वाभाविक है । जब कभी स्वयं कलाकार अपनी ही कला का आस्वादन करने लगता है, तब वह 'एक सहृदय' के रूप में 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव करने लगता है ।

यहाँ यह स्पष्ट होता है कि 'सहृदय' चाहे स्वयं कलाकार हो, चाहे कोई अन्य व्यक्ति हो उसे कला का आस्वादन करने से 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव हो ही जाता है । इसीलिए वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला के दर्शन से; संगीतकला के श्रवण से और काव्यकला के श्रवण से या पठन से सहृदय को 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव हो ही जाता है । इससे 'कला' अपने आप 'सार्थक' बन जाती है ।

इस प्रकार 'त्रिविध कलार्थ' का अपने आप 'आनन्दप्रद अर्थ' बनकर रहना बहुत महत्वपूर्ण होता है । तभी तो कला सहृदय को अपने अत्यन्त महत्वपूर्ण 'कलामूल्य' के रूप

में 'कलानद' का अनुभव कराने मे सफल हो जाती है ।

सहृदय को जिस 'कलानन्द' का अनुभव होता है, वह अपने मूल रूप में 'त्रिविध कलार्थ' यानी 'आनन्दप्रद अर्थ' होता है, जो भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप होता है । फलतः कला का आस्वादन करने से सहृदय को 'कलामूल्य' के रूप में जिस 'कलानन्द' का अनुभव होता है, वह 'कलानन्द' भी अपने आप भावात्मक आनन्द, विचारात्मक आनन्द और कल्पनात्मक आनन्द का समन्वित रूप बना रहता है ।

'कला' का आस्वादन करने वाले 'सहृदय' को एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप मे ही 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव होता रहता है । उस स्वाभाविक प्रक्रिया के फलस्वरूप 'सहृदय' को सर्वप्रथम भावात्मक आनन्द का अनुभव होने लगता है, फिर विचारात्मक आनन्द और कल्पनात्मक आनन्द का अनुभव होने लगता है ।'सहृदय' धीरे धीरे एक साथ भावुक, विचारक तथा कल्पक बन जाता है। तब 'सहृदय' अपनी भावात्मक दशा, विचारात्मक दशा तथा कल्पनात्मक दशा मे भावात्मक आनन्द, विचारात्मक आनन्द तथा कल्पनात्मक आनन्द के समन्वित रूप में 'कलानन्द' का अनुभव करता रहता है । इसीलिए 'सहृदय' कला का आस्वादन करते समय भी और उस कला का आस्वादन करने की क्रिया पूर्ण होने पर भी 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव करता रहता है ।

केवल भावात्मक आनन्द 'कलानन्द' नहीं हो सकता, केवल विचारात्मक आनन्द 'कलानन्द' नहीं हो सकता और केवल कल्पनात्मक आनन्द भी 'कलानन्द' नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह है कि 'कलानन्द' एकांगी नहीं होता । 'कलानंद' तो सहृदय के 'मानस' में भावात्मक आनन्द, विचारात्मक आनन्द तथा कल्पनात्मक आनन्द का विशेष संयोग' बना रहता है । इसीलिए 'कलानन्द' का अनुभव करते समय सहृदय का हृदय भी आनन्द का अनुभव करता है, सहृदय की बुद्धि (प्रज्ञा) भी आनन्द का अनुभव करती और सहृदय की कल्पना भी आनन्द का अनुभव करती है। इससे 'कलानन्द' अपने आप 'असाधारण आनन्द' अर्थात् 'अलौकिक आनन्द' बना रहता है और उसका अनुभव करने में सहृदय का 'मानस' पूर्णतया रमा रहता है ।

जो आनन्द 'साधारण' या 'लौकिक' होता है वह केवल भावात्मक आनन्द होता है या केवल विचारात्मक आनन्द होता है या केवल कल्पनात्मक आनन्द होता है । इसके विरुद्ध केवल 'कलानन्द' ही ऐसा 'आनन्द' होता है, जिसमें भावात्मक आनन्द, विचारात्मक आनन्द तथा कल्पनात्मक आनन्द का 'विशेष संयोग' बना रहता है , इसीलिए कलानन्द असाधारण आनन्द' या 'अलौकिक आनन्द' होता है। इसी कारण से ही 'कलानन्द' कला का 'कलामूल्य' बनकर रह जाता है ।

स्पष्ट है कि 'त्रिविध कलार्थ' का आनन्दप्रद अर्थ' बनकर रहना और उससे सहृदय को 'कलामूल्य' के रूप में 'कलानन्द' का अनुभव होना बहुत ही महत्वपूर्ण है । वास्तुकला, मूर्तिकला चित्रकला, संगीतकला तथा काव्यकला में 'कलामूल्य' के रूप में सहृदय को कलानन्द' का अनुभव कराने की क्षमता बनी रहती है । तभी तो मनुष्य के जीवन मे ललित कला' अर्थात् 'रमणीय कला' अर्थात 'सुन्दर कला' अर्थात् 'असाधारण कला' अर्थात् 'विशेष कला' के रूप मे वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला तथा काव्यकला का आदरणीय अस्तित्व बना रहता है ।

२१. त्रिविध कलार्थ : कलामूल्यात्मक अर्थ

जो 'कला-सृजक प्रयोजन' रूपी 'त्रिविध कलाकारार्थ 'यानी 'विशिष्ट अर्थ' होता है, वही 'त्रिविध कलार्थ' के रूप मे अर्थात् 'आनन्दप्रद अर्थ' के रूप में 'सहृदय' को 'कलानन्द का अनुभव कराता है । 'त्रिविध कलार्थ' की सार्थकता इसी में है कि वह 'आनन्दप्रद अर्थ के रूपमें 'सहृदय' को 'कलानन्द' का अनुभव करा दे ।

'सहृदय को कलानन्द का अनुभव कराना' यह तो 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'आनन्दप्रद अर्थ' की 'विशेष क्षमता' है । इसी 'विशेष क्षमता' के कारण ही 'त्रिविध कलार्थ' स्वाभाविक रूप से 'आनन्दप्रद अर्थ' के रूप में 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है ।

'सहृदय' कला का आस्वादन करते समय कला में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'आनन्दप्रद अर्थ' यानी 'कलामूल्यात्मक अर्थ' का ही अनुभव करता है । फलस्वरूप सहृदय उस 'कलानन्द' का अनुभव करता है, जो अपने मूल रूप मे 'कलामूल्य' ही होता है ।

वास्तव मे 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'आनन्दप्रद अर्थ, यानी 'कलामूल्यात्मक अर्थ' से युक्त होकर ही कला सहृदय को 'कलामूल्य' के रूप में 'कलानन्द' का अनुभव कराती है। इस प्रकार की स्वाभाविकता के कारण ही 'कला' का 'कलामूल्यात्मक अर्थ' से युक्त होना, विशेष होता है । सच तो यह है कि 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'आनन्दप्रद अर्थ' यानी 'कलामूल्यात्मक अर्थ' से युक्त होना 'कला' की स्वाभाविक अनिवार्यता है । इससे ही वह 'कला' अस्तित्व में आ जाती है, जो सहृदय को 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव कराकर सार्थक बन जाती है।

'कला' अपने में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'आनन्दप्रद अर्थ' यानी 'कलामूल्यात्मक अर्थ' के आधार पर ही 'मूल्यवान' बनी रहती है और सहृदय को 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव कराती रहती है ।

'कलामूल्यात्मक अर्थ' से युक्त होकर 'मूल्यवान' बनी हुई 'कला' का आस्वादन करते समय सहृदय 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव करते हुए प्रसन्न हो जाता है। इस प्रकार की विशेषता के कारण ही सहृदय 'ताजमहल' जैसी 'वास्तुकला' को देखते समय उसके 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव करते हुए पुलकित हो जाता है ।

सहृदय 'एलोरा' तथा 'अजन्ता' की 'मूर्तियो' जैसी 'मूर्तिकला' को निरखते समय उसके 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव करते हुए प्रफुल्ल हो जाता है ।

सहृदय 'अजन्ता' के 'चित्रों' जैसी 'चित्रकला' को निहारते समय उसके 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव करते हुए उल्लसित हो जाता है ।

सहृदय 'कुमार गंधर्व' के 'राग-गायन' जैसी 'संगीत कला' को सुनते समय उसके 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव करते हुए प्रमुदित हो जाता है ।

सहृदय सन्त कबीर, सन्त तुलसीदास, सन्त सूरदास आदि के 'गीति-मुक्तक' जैसी 'काव्यकला' को सुनते समय अथवा पढ़ते समय उसके 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव करते हुए प्रमोदित हो जाता है ।

यहाँ स्पष्ट होता है कि चाहे वास्तुकला हो, चाहे मूर्तिकला हो, चाहे चित्रकला हो, चाहे संगीतकला हो, चाहे काव्यकला हो, वह अपने मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'आनन्दप्रद अर्थ' यानी 'कलामूल्यात्मक अर्थ' के आधार पर ही 'मूल्यवान' बनी रहती है ।

इस तरह कला के 'मूल्यवान' बने रहने का अर्थ यही है कि 'कला' अपने 'कलामूल्यात्मक अर्थ' के रूपमे अपने में ऐसी 'क्षमता' धारण कर लेने में सफल हो जाती है जिससे उसका (कला का) आस्वादन करने वाले 'सहृदय' को अपने आप 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव होने लगता है और वह प्रसन्न हो जाता है ।

इस प्रकार कला में निहित 'त्रिविध कलार्थ' का 'आनन्दप्रद अर्थ' के रूप मे 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बनकर रहना, महत्वपूर्ण होता है । वास्तव में कला अपने में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'कलामूल्यात्मक अर्थ' के आधार पर ही महत्वपूर्ण, असाधारण, आकर्षक, रमणीय, सुन्दर तथा आनन्दप्रद बनी रहती है । फलस्वरूप कला सहृदय को अपने 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' में निमग्न कराने में सफल हो जाती है ।

२२. त्रिविध कलार्थ ; जीवनमूल्यात्मक अर्थ

जो 'कला -सृजक प्रयोजन' रूपी 'विशिष्ट अर्थ' यानी ' 'त्रिविध कलाकारार्थ' होता है, वही मनुष्य के जीवन से संबंधित अपने में निहित किसी महत्वपूर्ण तथा विशेष 'विचार' से अपने आप 'जीवन मूल्यात्मक अर्थ बना रहता है।

अपने 'त्रिविध कलाकारार्थ' रूपी 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' से कलाकार अपने आप प्रभावित हो जाता है और 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' को अभिव्यक्त करने की क्रिया के रूप मे 'कला का सृजन' करके उसमें 'त्रिविध कलार्थ' के रूप में 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' की स्थापना कर देता है ।

वास्तव मे कलाकार 'कला' का सृजन करके उसके भीतर 'त्रिविध कलार्थ' के रूपमें 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' की स्थापना कर देता है और 'कला' को मनुष्य-जीवन की दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाने में सफल हो जाता है । इस प्रकार की विशेषता के कारण ही मनुष्य के जीवन में वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला तथा काव्यकला का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान बना रहता है ।

कला में जो 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' होता है, उसमे मनुष्य-जीवन की दृष्टि से महत्वपूर्ण 'विचार' की ही प्रधानता होती है, ऐसा नहीं । वास्तव में 'त्रिविध कलार्थ' के रूप में 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' भी भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप ही होता है । इसका अर्थ यह हुआ कि 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' मे विचारात्मक अर्थ स्वाभाविकता से ही भावात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ के सयोग के साथ अभिन्न रूप से एकरूप हुआ रहता है ।

भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ 'इन तीनों अर्थों की एकरूपता' ही 'त्रिविध कलार्थ' के रूप में अर्थात् 'जीवन मूल्यात्मक अर्थ' के रूप में मनुष्य-जीवन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण बनी रहती है । तभी तो सहृदय 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' का अनुभव इन तीनों अर्थों के एकत्रित अनुभव के रूप में करता रहता है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह हो जाता है कि एक ही समय पर सहृदय का हृदय भी प्रभावित हो जाता है ; सहृदय की बुद्धि भी प्रभावित हो जाती है और सहृदय की कल्पना भी प्रभावित हो जाती है । तब 'सहृदय' मनुष्य जीवन के विषय मे 'एक नवीन दृष्टि पाने मे सफल हो जाता है।

कला में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' की फल निष्पत्ति के रूप में सहृदय को अपने जीवन को नवीन दृष्टि के अनुसार समझने-परखने के लिए तथा अपने जीवन को समुचित नया आकार देने के लिए एक नवीन विचार की असाधारण आकर्षक, रमणीय, सुन्दर तथा आनन्दप्रद 'देन' मिल जाती है । सहृदय इस प्रकार की महत्वपूर्ण 'देन' को अपने जीवन के मार्गदर्शक के रूप में सदैव स्मरण में रखता है और आनन्द का अनुभव करता रहता है । उस स्थिति में सहृदय 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का ही अनुभव करता रहता है ।

'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ कला का आस्वादन करने वाले सहृदय के लिए हृदयस्पर्शी अर्थ, बुद्धि (प्रज्ञा) स्पर्शी अर्थ तथा कल्पनास्पर्शी अर्थ बना रहता है । फलस्वरूप सहृदय अपने हृदय की विशिष्ट भावात्मक स्थिति, अपनी बुद्धि की विशिष्ट विचारात्मक स्थिति और अपनी कल्पना की नवीन विशिष्ट चित्रात्मक स्थिति में निमग्न होकर 'कलानन्द' का अनुभव करता रहता है ।

'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' के कारण ही मनुष्य के जीवन में संस्कृति के अभिन्न तथा महत्वपूर्ण अंग के रूप में वास्तुकला मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और विशेषकर काव्यकला का आदरणीय स्थान है । 'काव्यकला' में जो 'त्रिविध कलार्थ' होता है, वह तो 'कलामूल्यात्मक अर्थ' तथा जीवनमूल्यात्मक अर्थ' के रूप में अधिक से अधिक महत्वपूर्ण होता है । इसीलिए मनुष्य के जीवन में 'सर्वश्रेष्ठ कला' के रूप में 'काव्यकला' का समादर किया जाता है । इसी के परिणाम स्वरूप ही प्राचीन से प्राचीन 'काव्यकला' आज भी मनुष्य के जीवन में समादृत होती है और आगे चलकर भी समादृत होती रहेगी ।

इस प्रकार 'त्रिविध कलार्थ' का 'कलामूल्यात्मक अर्थ' के रूप में 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बनकर रहना बहुत महत्त्व का होता है ।

२३. निष्कर्ष

(१) उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष यही निकलता है कि केवल मनुष्य ही अपनी ईश्वरप्रदत्त या प्रकृति प्रदत्त 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' के बल पर 'कलाकार' के रूप में 'कला' (कलाकृति) का सृजन करने की क्रिया कर सकता है और उस 'कला' (कलाकृति) से 'सहृदय' को 'विशिष्ट अर्थ' रूपी 'त्रिविध कलार्थ' का अनुभव करा सकता है ।

(२) विशिष्ट अर्थ' ही अपने मूल में 'त्रिविध कलाकारार्थ' होता है, तत्पश्चात् वही त्रिविध कलार्थ' और 'त्रिविध सहृदयार्थ' बना रहता है ।

(३) 'विशिष्ट अर्थ' ही 'त्रिविध कलार्थ' के रूप में कई प्रकारों का अर्थ बना रहता है और 'सहृदय' को 'कलामूल्य' रूपी 'कलानन्द' का अनुभव करा देता है ।

(४) कलाकृति में व्याप्त रहने वाला 'त्रिविध कलार्थ' अपने में विभिन्न अर्थों का रूप धारण करने की असामान्य क्षमता रखता है । यही असामान्य क्षमता 'त्रिविध कलार्थ' में विलक्षण आकर्षण-शक्ति को बनाए रखने में सफल होती है । फलस्वरूप कलाकृति में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप असाधारण, विशेष, चित्ताकर्षक, रमणीय अर्थात् सुन्दर अर्थ बना रहता है । 'त्रिविध कलार्थ' का सुन्दर अर्थ बने रहने का वास्तविक अर्थ यह है कि उसका 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहना ।

(५) कलाकृति के भीतर 'त्रिविध कलार्थ' स्वाभाविक रूप से 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहता है । दूसरे शब्दों में यह कहना समुचित है कि कलाकृति में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर स्वयं आनन्दप्रद 'सौन्दर्य' ही बना रहता है।

(६) 'त्रिविध कलार्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' का आनन्दप्रद 'सौन्दर्य' बनकर रहने के फलस्वरूप ही कलाकृति 'कलानन्द' की अनुभूति कराती रहती है। वास्तव मे 'कलानन्द' की अनुभूति कराते रहना ही कलाकृति का मूल प्रयोजन होता है। तभी 'त्रिविध कलार्थ' कलाकृति में 'सौन्दर्यरूपी अर्थ' यानी आनन्दप्रद 'सौन्दर्य' के रूप मे 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है ।

(७) 'कलामूल्यात्मक अर्थ' कलानन्द की अनुभूति कराते हुए जीवन की किसी बात का महत्व स्पष्ट करने मे भी सफल हो जाता है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह हो जाता है कि कलाकृति में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' भी बन जाता है ।

संक्षेप में यह कहना अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि कलाकृति में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' ही 'कला का सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहता है और जीवन में कलाकृति के महत्व को बढ़ाता है । इससे कलाकृति 'कालजयी' बन जाती है । इसी कारण से समाज में साहित्यकृति भी कालजयी बनकर रहती है । वास्तव में 'त्रिविध कलार्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' से व्याप्त होकर ही साहित्यकृति सार्वकालिक तथा सार्वत्रिक बनी रहती है ।

तृतीय प्रकरण

साहित्य का कलार्थ रूपी सौन्दर्य

प्रस्तुत प्रकरण में 'साहित्य का कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस विषय को स्पष्ट करने से पहले 'विषय-प्रवेश' के रूप में संबंधित विषय के पुष्ट्यर्थ कुछ महत्वपूर्ण बातो का निर्देश करना आवश्यक है ।

१. प्रथम प्रकरण के आधार पर विषय-प्रवेश

(१) 'भाषा का अर्थबोधक व्यवहार' नामक प्रथम प्रकरण के आरम्भ में स्पष्ट कर दिया गया है कि 'साहित्य' ऐसी 'कला' है, जो केवल भाषा के आधार पर ही अस्तित्व में आ जाती है । इसीलिए भाषा है, तो 'साहित्य-कला' भी है । भाषा नही तो 'साहित्य कला' भी नहीं ।

(२) प्रथम प्रकरण मे सूक्ष्मता, स्पष्टता तथा विस्तार के साथ स्पष्ट कर दिया गया है कि 'अर्थ' ही भाषा का प्राणतत्व है, इसीलिए 'अर्थबोध करते रहना' ही भाषा के व्यवहार का 'आद्यकर्तव्य' है ।

(३) 'अर्थबोध करते रहने के आद्य कर्तव्य' का पालन करने के लिए ही भाषा के परस्पराश्रित महत्वपूर्ण घटक अर्थबोधक ही बनते रहते हैं ।

(४) भाषा जिन मूलभूल ध्वनियों पर आधारित होती है, वे ध्वनियाँ भी अपने-अपने अर्थ की बोधक बनी रहती हैं । कुछ ध्वनियाँ 'स्वर' रूपी अर्थ का बोधक बनी रहती है, तो कुछ ध्वनियाँ 'व्यंजन' रूपी अर्थ का बोधक बनी रहती हैं । 'काव्यकला' मे तो घोष स्वर-ध्वनियाँ, घोष व्यंजन-ध्वनियाँ तथा अघोष-अल्पप्राण व्यंजन ध्वनियाँ, 'नादमाधुर्य' अर्थात् 'नादसौन्दर्य' अर्थात् 'संगीतात्मकता' का भी अर्थबोधक बनी रहती है ।

(५) भाषा की कुछ ध्वनियाँ अपनी कोमलता का परिचय कराते हुए भाषा- प्रयोजक के कोमल भाव का अर्थबोधक बनी रहती है, तो कुछ ध्वनियाँ अपनी कठोरता का परिचय कराते हुए भाषा- प्रयोगकर्ता के कठोर भाव का अर्थबोधक बनी रहती है ।

(६) भाषा की मूलभूत आधार रूप ध्वनियों से 'विशिष्ट ध्वनि-संयोग' के रूप में अस्तित्व में आये हुए 'शब्द' भी अर्थबोधक बने रहते है ।

(७) भाषा का व्याकरण 'संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक, विस्मयादिबोधक' के रूप मे शब्द के अलग-अलग अर्थ का बोध करने वाले आठ प्रकारों को स्वीकार करता है ।

(८) व्याकरण के सहयोग से भाषा का प्रत्येक शब्द भेद अपने प्रचलित अर्थ के

साथ-साथ 'व्याकरणिक अर्थ' का भी बोधक बना रहता है । इसके लिए 'सज्ञा-शब्द लिंग वचन, पुरुष तथा आठ प्रकार के कारकों के अनुसार विभिन्न अर्थबोधक 'रूप' धारण करते हैं । 'सर्वनाम-शब्द' भी कारक आदि के अनुसार विभिन्न अर्थबोधक 'रूप' धारण करते है। आकारान्त विशेषण-शब्द भी विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार विभिन्न अर्थबोधक 'रूप धारण करते हैं । 'क्रिया-शब्द तो 'वाच्य, काल,, अर्थ, पुरुष, लिंग, वचन प्रयोग, कृदन्त और पक्ष' के अनुसार विभिन्न अर्थबोधक 'रूप' धारण करते है । 'क्रिया-शब्द' प्रेरणा के अनुसार भी भिन्न अर्थबोधक रूप धारण करते हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि 'शब्द-भेद' व्याकरणिक अर्थ का बोधक बनने के लिए 'भिन्न-भिन्न रूप' धारण करते हैं ।

(९) व्याकरणिक अर्थ का बोधक बनने वाले और अपने मूल अर्थ का भी बोधक बनकर रहने वाले भिन्न-भिन्न शब्द-रूप वाक्य में प्रयुक्त होने पर 'पद' कहलाए जाते है । अतः वाक्य मे 'पद' अपने विशिष्ट 'पदार्थ' का बोधक बना रहता है ।

(१०) पदों के विशिष्ट स्थान-क्रमानुसार पदो का संयोग होकर 'वाक्य' अस्तित्व में आता है और भाषा का संपूर्ण व्यवहार वाक्य के रूप में ही होता रहता है । ऐसी स्थिति मे 'वाक्य' अपने मे प्रयोजित शब्दार्थों तथा पदार्थों की सुसंगति के आधार पर 'वाक्यार्थ' का बोधक बना रहता है ।

(११) 'वाक्य' अपने 'अपेक्षित अर्थ का बोधक' तब बना रहता है, जब वह योग्यतायुक्त शब्दार्थ तथा पदार्थ पर आधारित रहता है ।

(१२) वाक्य में जो अपेक्षित अर्थ का बोधक 'पद-सयोग' होता है, वह उद्देश्य और विधेय इन दो विभागों मे विभाजित हुआ करता है । इन दो विभागों के आधार पर ही वाक्य अपने अपेक्षित अर्थ का बोधक बना रहता है ।

(१३) 'कर्तरी प्रयोग के वाक्य' मे उद्देश्य के रूप मे ऐसे कर्ता-पद का प्रयोग होता है, जो अस्तित्वदर्शक स्थिति अथवा विशिष्ट क्रिया अथवा किसी प्रकार के विकार (परिवर्तन) का अर्थबोधक बनी क्रिया से संबंधित रहता है ।

(१४) 'कर्तृवाच्य कर्मणी प्रयोग के वाक्य' में तथा 'कर्तृवाच्य भावे प्रयोग के वाक्य' में उद्देश्य के रूप में ऐसे कर्ता-पद का प्रयोग होता है, जो भूतकाल में क्रिया करने वाले का अर्थबोधक बना रहता है ।

(१५) 'कर्मणी प्रयोग के वाक्य' में तथा 'कर्मवाच्य भावे प्रयोग के वाक्य' में उद्देश्य क रूप मे ऐसे कर्म-पद का प्रयोग होता है, जो उस कर्म का अर्थबोधक बना रहता है, जिस पर क्रिया का फल पड़ता है ।

(१६) वाक्य का उद्देश्य - विभाग आवश्यकता के अनुसार 'उद्देश्यवर्धक' के रूप मे कर्ता अथवा कर्म के विशेषण का अर्थबोधक बना रहता है ।

(१७) किसी भी वाक्य मे 'उद्देश्य-विभाग' को छोड़कर जो 'विधेय-विभाग' होता है वह आवश्यकता के अनुसार कर्म, कर्मपूर्ति, कर्तृपूर्ति तथा क्रिया-विशेषण रूपी विधेयविस्तारक का अर्थबोधक बना रहता है ।

(१८) कर्तरी प्रयोग के अकर्मक वाक्य मे कर्मरहित विधेय-विभाग कर्ता से संबंधित अस्तित्ववाचक स्थिति या विशिष्ट क्रिया या विकार (परिवर्तन) का अर्थबोधक बना रहता है।

ऐसे वाक्य मे कर्तृपूर्ति-पद से युक्त विधेय-विभाग कर्ता के विषय मे विशेष जानकारी का अर्थबोधक बना रहता है ।

(१९) कर्तरी प्रयोग के सकर्मक वाक्य में कर्मसहित विधेय-विभाग कर्ता तथा कर्म के विषय में जानकारी का अर्थबोधक बना रहता है ।

(२०) 'किसी भी सकर्मक वाक्य में कर्मपूर्ति-पद से युक्त विधेय-विभाग कर्म के विषय में विशेष जानकारी का अर्थबोधक बना रहता है ।

(२१) वाक्य में संज्ञा-शब्द सर्वनाम-शब्द, विशेषण-शब्द, कृदन्त रूपी क्रियार्थक संज्ञा, वर्तमानकालिक कृदन्त, भूतकालिक कृदन्त अथवा कर्तृवाचक कृदन्त 'कर्ता-पद तथा 'कर्म-पद' का भी अर्थबोधक बना रहता है ।

(२३) वाक्य में संज्ञा-शब्द, सर्वनाम-शब्द, विशेषण-शब्द, कृदन्त रूपी क्रियार्थक सज्ञा, वर्तमानकालिक कृदन्त, भूतकालिक कृदन्त, कर्तृवाचक कृदन्त अथवा संबंधकारक 'विशेषण-पद' का अर्थबोधक बना रहता है ।

(२४) वाक्य में संज्ञा-शब्द, संज्ञा-पदबंध विधेय-विशेषण क्रियाविशेषण-शब्द क्रियाविशेषणात्मक पदबंध, क्रियार्थक सज्ञा के एकारान्त रूप के साथ करणकारक, संप्रदानकारक, अपादानकारक, अधिकरणकारक; अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त, तात्कालिक कृदन्त, पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त, पूर्वकालिक कृदन्त, करण कारक, संप्रदान कारक, अपादान कारक अथवा अधिकरण कारक 'क्रियाविशेषण-पद' का अर्थबोधक बना रहता है।

(२५) वाक्य में विभिन्न क्रिया-शब्द, संज्ञा-शब्द, सर्वनाम-शब्द या विशेषण-शब्द 'क्रिया-पद' का अर्थबोधक बना रहता है ।

(२६) वाक्य में संज्ञा-शब्द, विशेषण-शब्द, संबंध कारक या कृदन्त अव्यय 'कर्तृपूर्ति-पद' तथा 'कर्मपूर्ति-पद' का भी अर्थबोधक बना रहता है ।

(२७) वाक्य मे उद्देश्य-विभाग 'प्रथम स्थान-क्रम का अर्थबोधक बना रहता है, तो विधेय-विभाग 'द्वितीय स्थान-क्रम 'अर्थात् 'अगले स्थान-क्रम' का अर्थबोधक बना रहता है।

(२८) वाक्य के उद्देश्य-विभाग में कर्तारूपी उद्देश्य या कर्मरूपी उद्देश्य पहले स्थान-क्रम पद का अर्थबोधक बना रहता है ।

(२९) वाक्य के विधेय-विभाग मे 'कर्म-पद' पहले स्थान-क्रम का अर्थबोधक बना रहता है, तो 'क्रिया-पद' अंतिम स्थान-क्रम का अर्थबोधक बना रहता है ।

(३०) वाक्य के विधेय-विभाग मे कर्ता-पद के पश्चात् तुरंत आने वाला 'कर्तृपूर्ति-पद' कर्ता की विशेषता का अर्थबोधक बना रहता है और कर्म-पद के पश्चात् तुरंत आने वाले 'कर्मपूर्ति-पद' कर्म की विशेषता का अर्थबोधक बना रहता है ।

(३१) वाक्य मे विशेषण-पद विशेष्य के पहले आकर विशेष्य की विशेषता का अर्थबोधक बना रहता है ।

(३२) वाक्य में क्रियाविशेषण-पद क्रिया-पद के पहले कहीं भी आकर क्रियाविशेषण की स्थानविषयक, कालविषयक, रीतिविषयक, परिमाणविषयक तथा कार्यकारण विषयक विशेषता का अर्थबोधक बना रहता है ।

(३३) वाक्य में 'पद-क्रम' अपने सुसगत स्थान-क्रम का अर्थबोधक बना रहता है।

(३४) वाक्य में सुसंगत स्थान-क्रम से युक्त पद-संयोग 'सुसंगत अर्थबोधक योग्यता का बोधक बना रहता है ।

२. अपेक्षित वाक्यार्थ के हेतु व्याकरणिक अर्थ-विचलन

भाषा के अर्थबोधक व्यवहार मे अपेक्षित अर्थ का बोधक बने रहने के लिए वाक्य को जिस पद-संयोग पर आधारित रहना पड़ता है, उस पद-सयोग में 'सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता' का पालन करना आवश्यक होता है । तभी वाक्य भाषा के अर्थबोधक व्यवहार मे अपने भीतर के 'सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता' से युक्त पद-संयोग के आधार पर अपेक्षित वाक्यार्थ का बोधक बन जाता है । जैसे,

मछलियाँ पानी में तैर रही हैं

प्रस्तुत वाक्य अपने भीतर के 'सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता' से युक्त पद-संयोग के आधार पर अपेक्षित वाक्यार्थ का बोधक बन गया है ।

इसके विरुद्ध भाषा के अर्थबोधक व्यवहार में वाक्य 'सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता' से रहित पद-संयोग के आधार पर अनपेक्षित वाक्यार्थ का बोधक बन जाता है । जैसे,

मछलियाँ आकाश में तैर रही हैं

मछलियाँ आकाश में उड रही हैं

ये दोनो वाक्य अपने भीतर के 'सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता' से रहित पद-संयोग के आधार पर अनपेक्षित वाक्यार्थ का बोधक बन गये हैं । इन दोनो वाक्यों (कर्तरी प्रयोग के वाक्यो) मे अप्रत्यय कर्तारूपी प्रधान उद्देश्य-पद 'मछलियाँ' है । लेकिन मछलियों में आकाश में तैरने की अथवा आकाश में उडने की योग्यता (क्षमता) नहीं होती। इसीलिए ये दोनों वाक्य अनपेक्षित तथा असंगत वाक्यार्थ का बोधक बन गये हैं ।

स्पष्ट है कि भाषा के अर्थबोधक व्यवहार मे वाक्य को अपेक्षित 'वाक्यार्थ' का बोधक बने रहने के लिए अपने भीतर के 'सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता' से युक्त पद-संयोग (पदार्थ-संयोग) पर आधारित होना आवश्यक होता है ।

यहाँ 'पद-संयोग' का अर्थ 'पदार्थ-संयोग' ही है । इसका अर्थ यह हुआ कि सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता से युक्त पदार्थ-संयोग ही, वाक्य को अपेक्षित वाक्यार्थ का बोधक बना देता है ।

वाक्य में जो 'सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता से युक्त पदार्थ-संयोग' होता है, उसकी तीन महत्वपूर्ण विशेषताएँ होती हैं ।

पहली विशेषता यह है कि वाक्य में वह 'पदार्थ-सयोग' अपने मूल रूप मे शब्दार्थ-संयोग' पर आधारित रहता है ।

दूसरी विशेषता यह है कि वाक्य मे वह 'पदार्थ-संयोग' अतिरिक्त 'व्याकरणिक अर्थ-संयोग' पर भी आधारित रहता है ।

तीसरी विशेषता यह है कि वाक्य मे वह 'पदार्थ-संयोग' ही अपेक्षित 'वाक्यार्थ' का बोधक बना रहता है ।

वह 'पदार्थ-संयोग' अपनी इन तीन महत्वपूर्ण विशेषताओं का पालन करते हुए

लडके को/लडकी की/लड़कों को/लडकियों को/मुझको/हमको/तुझको उनको/दीन को/दीनों को देखा गया ।

(यहाँ कर्मकारक के 'को' विभक्ति-प्रत्यय के साथ संज्ञा-शब्द विशेषण-शब्द पुल्लिग या स्त्रीलिग, एक वचन या बहुवचन, उत्तम पुरुष या अन्य पुरुष, सप्रत्यय कर्म के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक

मैंने लडके से/उससे/दीन से एक बात कही ।

(यहाँ करण कारक के 'से' विभक्ति-प्रत्यय के साथ संज्ञा-शब्द विशेषण-शब्द सप्रत्यय गौण कर्म के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन व

मैंने लड़के को/ उसको/दीन को पैसे दिये ।

(यहाँ संप्रदान कारक के 'को' विभक्ति-प्रत्यय के साथ संज्ञा-शब्द विशेषण-शब्द सप्रत्यय गौण कर्म के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन

गोपाल लडका है । राधा लड़की है । राजा ऐसा है । रानी है । फूल सुंदर है ।

(यहाँ 'लड़का, लडकी' संज्ञा-शब्द कर्तृपूर्ति (विधेय विशेषण) के अर्थ-विचलन का बोधक है ।

'ऐसा, वैसा 'गुणवाचक सार्वनामिक विशेषण के रूप में 'यह कर्तृपूर्ति (विधेय-विशेषण) के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोध

'दीन, सुंदर' विशेषण-शब्द कर्तृपूर्ति (विधेय-विशेषण) के रू अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।)

मैं कमल को लड़का समझा । तूने गगा को लड़की माना । मै हूँ । तू मुझे वैसा न समझना । तूने उसे दीन माना । मुझे फूल सुद

(यहाँ 'लड़का, लड़की' संज्ञा-शब्द कर्मपूर्ति (विधेय-विशेषण) के अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।

'ऐसा, वैसा' (विकृत) सर्वनाम-शब्द कर्मपूर्ति (विधेय-विशेषण) के अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।

'दीन, सुन्दर' विशेषण-शब्द कर्मपूर्ति (विधेय-विशेषण) के अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।)

गायक लड़का आया । वह लड़की दौड़ी । दीन आदमी है

(यहाँ 'गायक' संज्ञा-शब्द, 'वह' सर्वनाम-शब्द, 'दीन f विशेषण के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।)

यह लड़के का/उसका/दीन का मकान है ।

(यहाँ 'लडके का', सबंधकारकीय संज्ञा-शब्द, 'उसका' स शब्द (वह =उसका) तथा 'दीन का' 'संबंध कारकीय विशेषण-श रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।)

यह मकान लड़के का/उसका/दीन का है ।

(यहाँ 'लडके का' संबधकारकीय संज्ञा-शब्द, 'उसका' 'दीन का' संबधकारकीय विशेषण-शब्द संबंध कारकीय विशे

दीन चला/दीन चली/ दीन चले/ दीन चली ।

(यहाँ 'दीन' विशेषण-शब्द पुल्लिंग या स्त्रीलिंग एक वचन या बहुवचन, अन्य पुरुष, अप्रत्यय कर्ता तथा वाक्य के प्रधान उद्देश्य के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

लड़के ने/लड़की ने/लड़कों ने/लड़कियों ने/मैंने/हमने/तूने/तुमने/उसने/उन्होंने/ दीन ने/दीनों ने काम किया ।

(यहाँ संज्ञा-शब्द, सर्वनाम-शब्द तथा विशेषण-शब्द पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एक वचन या बहुवचन, उत्तम पुरुष या मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष, सप्रत्यय कर्ता तथा वाक्य के अप्रधान उद्देश्य के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं।)

लडके से/लड़की से/लड़कों से/लडकियों से/मुझसे/हमसे/तुझसे/तुमसे/उससे/उनसे/ दीन से/दीनों से काम हुआ ।

(यहाँ संज्ञा-शब्द, सर्वनाम-शब्द तथा विशेषण-शब्द पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एक वचन या बहुवचन, उत्तम पुरुष या मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष, करणकारकीय सप्रत्यक कर्ता तथा वाक्य के अप्रधान उद्देश्य के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

लड़के को/लड़की को/लड़को को/लड़कियों को/मुझको/हमको/तुझको/तुमको/उसको/ उनको/दीनको/दोनों को काम करना है ।

(यहाँ संज्ञा-शब्द, सर्वनाम-शब्द तथा विशेषण-शब्द पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एक वचन या बहुवचन, उत्तम पुरुष या मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष, संप्रदान-कारकीय सप्रत्यय कर्ता तथा वाक्य के अप्रधान उद्देश्य के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

मीना ने लड़का देखा । राजा ने लड़की देखी । राधा ने लड़के देखे । श्याम ने लड़कियाँ देखी । लड़का देखा गया । लड़की देखी गयी । लड़के देखे गये । लडकियाँ देखी गयीं ।

मैं/तू/वह देखा गया । मैं/तू/वह देखी गयी ।

हम/तुम/वे देखे गये । हम/तुम/वे देखी गयीं ।

दीन देखा गया । दीन देखी गयी । दीन देखे गये । दीन देखी गयीं ।

राम ने दीन देखा । राम ने दीन देखी । राम ने दीन देखे । राम ने दीन देखा ।

(यहाँ 'लड़का', 'लडकी', 'लडके' 'लडकियाँ' संज्ञा-शब्द पुल्लिग या स्त्रीलिग एक वचन या बहुवचन अन्य पुरुष, अप्रत्यय कर्म के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।

'मैं, तू, वह, हम, तुम, वे 'सर्वनाम-शब्द पुल्लिंग या स्त्रीलिग, एकवचन या बहुवचन, उत्तम पुरुष या मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष, अप्रत्यय कर्म के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।

'दीन' विशेषण-शब्द पुल्लिंग या स्त्रीलिग, एक वचन या बहुवचन, अन्य पुरुष अप्रत्यय कर्म के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

राधा ने लडके को/लड़की को/लडको को/लड़कियो को/मुझको/हमको/तुझको/तुमको/ उसको/उनको/दीन को/दीनो को देखा ।

लडके को/लड़की की/लड़कों को/लडकियों को/मुझको/हमको/तुझको/तुमको/उसको/उनको/दीन को/दीनो को देखा गया ।

(यहाँ कर्मकारक के 'को' विभक्ति-प्रत्यय के साथ संज्ञा-शब्द सर्वनाम-शब्द विशेषण-शब्द पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एक वचन या बहुवचन, उत्तम पुरुष या मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष, सप्रत्यय कर्म के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

मैंने लडके से/उससे/दीन से एक बात कही ।

(यहाँ करण कारक के 'से' विभक्ति-प्रत्यय के साथ संज्ञा-शब्द, सर्वनाम-शब्द विशेषण-शब्द सप्रत्यय गौण कर्म के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।)

मैने लड़के को/ उसको/दीन को पैसे दिये ।

(यहाँ सम्प्रदान कारक के 'को' विभक्ति-प्रत्यय के साथ संज्ञा-शब्द, सर्वनाम-शब्द विशेषण-शब्द सप्रत्यय गौण कर्म के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।)

गोपाल लड़का है । राधा लडकी है । राजा ऐसा है । रानी वैसी है । वह दीन है । फूल सुंदर है ।

(यहाँ 'लड़का, लड़की' संज्ञा-शब्द कर्तृपूर्ति (विधेय विशेषण) के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।

'ऐसा, वैसा 'गुणवाचक सार्वनामिक विशेषण के रूप में 'यह, वह 'सर्वनाम-शब्द कर्तृपूर्ति (विधेय-विशेषण) के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं।

'दीन, सुंदर' विशेषण-शब्द कर्तृपूर्ति (विधेय-विशेषण) के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।)

मैं कमल को लड़का समझा । तूने गंगा को लड़की माना । मै तुझे ऐसा समझता हूँ । तू मुझे वैसा न समझना । तूने उसे दीन माना । मुझे फूल सुंदर लगा।

(यहाँ 'लडका, लड़की' संज्ञा-शब्द कर्मपूर्ति (विधेय-विशेषण) के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।

'ऐसा, वैसा' (विकृत) सर्वनाम-शब्द कर्मपूर्ति (विधेय-विशेषण) के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।

'दीन, सुन्दर' विशेषण-शब्द कर्मपूर्ति (विधेय-विशेषण) के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।)

गायक लड़का आया । वह लड़की दौड़ी । दीन आदमी बैठा है ।

(यहाँ 'गायक' संज्ञा-शब्द, 'वह' सर्वनाम-शब्द, 'दीन' विशेषण-शब्द विशेष्य विशेषण के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

यह लड़के का/उसका/दीन का मकान है ।

(यहाँ 'लड़के का', संबधकारकीय संज्ञा-शब्द, 'उसका' संबंधकारकीय सर्वनाम शब्द (वह =उसका) तथा 'दीन का' 'संबंध कारकीय विशेषण-शब्द विशेष्य-विशेषण के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

यह मकान लडके का/उसका/दीन का है ।

(यहाँ 'लडके का' संबधकारकीय संज्ञा-शब्द, 'उसका' संबंधकारकीय सर्वनाम शब्द दीन का' स विशेषण शब्द सबंध कारकीय विधेय विशेषण (कर्तृपूर्ति

रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक हैं ।)

राम को लडके से/उससे/दीन से लाभ हुआ है ।

(यहाँ करण कारक के 'से' विभक्ति-प्रत्यय के साथ 'लड़का' संज्ञा-शब्द, 'वह (=उससे)' सर्वनाम-शब्द तथा 'दीन' विशेषण-शब्द कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

बालक लडके से/उससे/दीन से डरता है ।

(यहाँ अपादान कारक के 'से' विभक्ति-प्रत्यय के साथ 'लड़का' संज्ञा-शब्द, वह (=उस+से)' सर्वनाम-शब्द तथा 'दीन' विशेषण-शब्द कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

लडके में/उसमें/दीन में नम्रता का गुण है ।

लड़के पर/उस पर/दीन पर तेरा भरोसा है ।

(यहाँ अधिकरण कारक के 'में/पर' विभक्ति-प्रत्यय के साथ 'लड़का' संज्ञा-शब्द 'वह (=उस+में/पर)' सर्वनाम-शब्द तथा 'दीन' विशेषण-शब्द स्थानवाचक क्रिया-विशेषण के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

मैं यह उपहार स्वीकारूँगा ।

मैं तुझे अपनाऊँगा ।

अब वह सठिया ।

(यहाँ 'स्वीकार' संज्ञा-शब्द, 'आप (आप+ना=अपना) 'सर्वनाम-शब्द तथा 'साठ' सख्यावाचक विशेषण शब्द क्रिया के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

इस प्रकार संज्ञा-शब्द, सर्वनाम-शब्द तथा विशेषण-शब्द वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' के बोध के लिए व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बनकर रहने का महत्वपूर्ण कार्य करते है ।

(२) वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से जातिवाचक संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया, 'भाववाचक संज्ञा' के रूप मे व्याकरणिक (शब्द-भेदों की रूप-रचना के अनुकूल) अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते हैं । जैसे, तू तो दानी है । (जातिवाचक सज्ञा 'दान' के साथ 'ई' प्रत्यय जुड़कर बनी भाववाचक संज्ञा) ।

मित्रता भली हो । ('मित्र' 'ता' " " " ")।

फल में मिठास हो । (विशेषण 'मणि' के साथ 'आस' प्रत्यय " ") ।

यह तेरी चतुराई है । (" 'चतुर' " " 'आई' " " ")।

यह तेरा मैं पन है । (सर्वनाम 'मैं' " " 'पन' " " ") ।

मुझे गाना पसंद है । (क्रिया (धातु) 'गा' " " "ना' " ") ।

बनावट अच्छी है । (" " 'बन' " " 'आवट' " ") ।

यह कैसी घबराहट ! (" " 'घबरा' " " 'आहट' " ") ।

(३) वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से क्रियार्थक संज्ञा (जो भाववाचक सज्ञा के रूप में प्रयुक्त होने पर भी क्रिया का अर्थ व्यक्त करती रहती है वह) कर्ता के रूप में कर्म के रूप में गौण कर्म के रूप मे स्वतत्र रूप से या

सबंधकारकीय या संप्रदानकारकीय विधेय-विशेषण के रूप में, करणकारकीय या संप्रदानकारकीय या अपादान कारकीय या अधिकरण कारकीय क्रियाविशेषण के रूप मे तथा क्रिया के रूप मे भी व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बनी रहती है । जैसे, वहाँ जाना ठीक नही । सच बोलना अच्छा है । घोड़े का दौड़ना तेज है । उसका पढना ठीक है ।

(यहाँ 'जा, बोल, दौड़, पढ़, इन मूल क्रिया-रूपों यानी धातुओं के साथ 'ना' प्रत्यय का योग होकर 'जाना, बोलना, दौड़ना, पढ़ना' क्रियार्थक संज्ञाएँ बन गयी हैं और इन वाक्यों में 'अप्रत्यय कर्ता' के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बन गयी है ।)

लड़की कपड़ा सीना सीखती है । मुझे तेरा बातें बनाना पसंद नहीं ।

(यहाँ 'कपड़ा सीना' या 'तेरा बातें बनाना' वाक्यांश रूपी क्रियार्थक संज्ञा अप्रत्यय मुख्य कर्म के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

मैं उसके ऐसा कहने को कुछ मान नहीं देता ।

(यहाँ 'उसके ऐसा कहने को' वाक्यांश रूपी क्रियार्थक संज्ञा 'संप्रदानकारकीय सप्रत्यय गौण कर्म' के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

मुझे एक काम करना है । तुझे कई काम करने हैं । उसे तेरी मदद करनी है ।

(यहाँ 'करना', 'करने', 'करनी', के रूप मे क्रियार्थक संज्ञा कर्मपूर्ति रूपी स्वतत्र विधेय-विशेषणात्मक व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

तू कुछ खाने का नहीं । लड़की वहाँ जाने की नही ।

(यहाँ 'खाने का', 'जाने की' के रूप में क्रियार्थक संज्ञा कर्तृपूर्ति रूपी संबंधकारकीय विधेय-विशेषणात्मक व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

गाड़ी छूटने को है । वह आने को है ।

(यहाँ 'छूटने को', 'आने को' के रूप में क्रियार्थक संज्ञा कर्तृपूर्ति रूपी संप्रदान कारकीय विधेय-विशेषणात्मक व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

तुझे मेरे आने से लाभ हुआ । (क्रियार्थक संज्ञा रूपी करणकारकीय क्रियाविशेषण)

पीने को पानी मिला । (" " " संप्रदान कारकीय ")

पानी के न होने से घड़ा खाली है । (" ' " अपादान कारकीय ")

यह काम जल्दी करने में लाभ है । (" " " अधिकरण कारकीय ")

वहाँ जाने पर मै उससे मिलूँगा । (" " " " " ")

(यहाँ क्रियार्थक संज्ञा करण कारकीय, संप्रदान कारकीय, अपादान कारकीय तथा अधिकरण कारकीय क्रियाविशेषण के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

तू जाना । तुम काम करना । मुझे जाना है । तुझे आना था ।

(यहाँ क्रियार्थक संज्ञा क्रिया के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है । परोक्ष विधिकाल में आज्ञार्थ क्रिया केवल आकारांत क्रियार्थक संज्ञा के रूप में ही होती है और 'होना' सहायक क्रिया के साथ क्रियार्थक संज्ञा वर्तमान काल का अर्थ-बोध करने के लिए 'है' रूप के साथ आती है और भूतकाल का अर्थ-बोध करने को 'था' रूप के साथ आती है

(४) वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से वर्तमानकालिक कृदंत (अपूर्ण कृदंत), ालिक कृदत (पूर्ण कृदंत) तथा कर्तृवाचक कृदंत संज्ञात्मक कर्ता या कर्म के रूप में, य-विशेषण के रूप मे तथा विधेय विशेषण के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का ़ बने रहते हैं । जैसे,

मरता' क्या नहीं करता । (वर्तमानकालिक कृदंतात्मक संज्ञा रूपी कर्ता)
डूबते हुए' को एक सहारा मिला । (" " " " ")
वह 'रोतां का' हसाता है । (" " " " " कर्म)
तूने 'भागते हुए' को पकड़ा । (" " " " " ")
मैने 'चलती' गाड़ी पकड़ी । (" " विशेष्य-विशेषण)
वहाँ 'बहता हुआ' पानी है । (" " " ")
लडकी ने 'खिलते हुए' फूल देखे । (" " " ")
बच्ची 'दौड़ती हुई' आयी । (" " कर्तृपूर्ति रूपी विधेय-विशेषण)
वह 'घूमता घूमता' घर लौटा । (" " " " ")
'पढ़ा-लिखा' ऐसा नहीं होता । (भूतकालिक कृदंतात्मक संज्ञा रूपी कर्ता)
यह मेरा 'लिखा हुआ' है । (" " " " ")
तुम 'मरे को' मत मारो । (" " " " कर्म)
मै अपना कमाया खाता हूँ । (" " " " ")
'बीता' पल नहीं लौटता । (" " विशेष्य-विशेषण)
वहॉ 'बैठी हुई' गाय है । (" " " " " " ")
उसे 'किए का' फल मिला । (" " " " ")
वहॉ फूल 'खिले हुए' हैं । (" " कर्तृपूर्ति रूपी विधेय-विशेषण)
तू तो बहुत 'गया'-बीता है । (" " " " " ")
मै मन मे 'फूला' नही समाता । (" " " " ")
यहाँ 'गाने वाला' आया है । (कर्तृवाचक कृदंतात्मक संज्ञा रूपी कर्ता)
मैने 'गाने वाले' को वहाँ देखा । (" " " " " कर्म)
यह 'पढ़ने वाला' लड़का है । (" " " विशेष्य-विशेषण)
गाड़ी 'आने वाली' है । (" " कर्तृपूर्ति रूपी विधेय-विशेषण)
मै कविता 'लिखने वाला' हूँ । (" " " " ")

(५) वाक्य मे 'अपेक्षित वाक्यार्थ{ की दृष्टि से अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंत, पूर्ण ्योतक कृदंत, तात्कालिक कृदंत तथा पूर्वकालिक कृदंत क्रियाविशेषण के रूप में रणिक अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते हैं । जैसे,

वहाँ से 'लौटते' रात हुई । (अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदंतात्मक कालवाचक क्रियाविशेषण)
दिन काम 'करते' बीता । (" " " रीतिवाचक ")
मेरे 'रहते' काम होगा ही कार्य क

दस 'बजे' गाडी आयेगी । (पूर्ण " " कालवाचक क्रियाविशेषण)
वह 'बैठे-बैठे' ऊब गया । (" " रीतिवाचक ")
बिना उसके 'आए' काम न होगा । (" " कार्यकारणवाचक ")
सबेरा 'होते ही' हम जाग गये । (तात्कालिक कृदंतात्मक कालवाचक क्रियाविशेषण)
वह 'देखते ही देखते' गायब हुआ । (" " रीतिवाचक " ")
उसके 'आते ही' खुशी हुई । (" " " कार्यकारणवाचक ")
दस 'बजकर' पाँच मिनिट हुए हैं । (पूर्वकालिक कृदंतात्मक कालवाचक)
लड़का 'उठकर' भागा । (" " रीतिवाचक ")
कवि से 'बढकर' कविता की प्रशसा हो । (" " " ")
मेरा घर सड़क से 'हटकर' है । (" " " ")
पानी मे 'रहकर' मगर से बैर न हो । (" " कार्यकारणवाचक ")
वह यहाँ 'आकर' सुधर गया । (" " " " ")
मैं परिश्रम 'करके' आगे बढ़ूँगा । (" " " ")

(५ क) वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से क्रिया शब्द लिंग, वचन, पुरुष, अर्थ, काल, वाच्य, प्रयोग, कृदंत, पक्ष आदि का बोध कराते हुए व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बना रहता है । जैसे,

लड़का 'दौड़ता' है । (पुल्लिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, निश्चयार्थ, वर्तमानकाल, कर्तृवाच्य, कर्तरि प्रयोग, वर्तमानकालिक कृदंत, नित्य अपूर्ण पक्ष, अकर्मकता का अर्थ-बोधक क्रिया-पद)

मैंने पुस्तक 'पढ़ी' । (स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, निश्चयार्थ, भूतकाल कर्तृवाच्य, कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग, भूतकालिक कृदंत, पूर्ण पक्ष, सकर्मकला का अर्थ-बोधक क्रिया-पद)

तू दीन को दान 'देगा' । (पुल्लिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, निश्चयार्थ, भविष्यकाल कर्तृवाच्य, कर्तरि प्रयोग, भविष्यकालिक कृदंत, पूर्वपक्ष द्विकर्मकता का अर्थबोधक क्रिया-पद)

वह आम 'खा रहा है' । (पुल्लिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, निश्चयार्थ, अपूर्ण वर्तमान काल, कर्तृवाच्य, कर्तरि प्रयोग, सातत्य अपूर्ण पक्ष, सकर्मकता का अर्थ-बोधक, क्रिया-पद)

(६) वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से क्रियाविशेषण शब्द स्थानवाचक क्रिया-विशेषण, कालवाचक क्रियाविशेषण, रीतिवाचक क्रियाविशेषण, परिमाणवाचक क्रियाविशेषण तथा कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बना रहता है । जैसे,

लड़के 'मैदान में' खेलते है ।(अधिकरण कारकीय स्थानवाचक क्रियाविशेषण)
वह 'कल' आयी है । (कालवाचक क्रियावाचक)
तू धीरे धीरे' आ जा (रीतिवाचक क्रियाविशेषण)

वह 'बहुत' बोलती है । (परिमाणवाचक ")

तुझे 'मुझसे' लाभ हुआ है । (करणकारकीय कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण)

(७) वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से संबंधबोधक-शब्द विभिन्न क्रियाविशेषणो के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते हैं । जैसे,

घर 'के भीतर' लडकी है । (सबंधसूचकात्मक स्थानवाचक क्रियाविशेषण)

मैं 'कल तक' आऊँगा । ("' कालवाचक ")

वह मित्र 'के साथ' गया । " रीतिवाचक ")

मै थकान 'के कारण' बैठा हूँ । (" कार्यकारणवाचक ")

(८) वाक्य मे 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से सभी समुच्चयबोधक शब्द विभिन्न क्रियाविशेषणों के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते हैं। जैसे,

'सयुक्त वाक्य' में एक से अधिक मुख्य वाक्यो को किसी न किसी संबंध के आधार पर जोड़कर रखने का कार्य करने के लिए 'संयोजक समुच्चयबोधक शब्द (और, व, एव, तथा, भी), 'विभाजक समुच्चयबोधक शब्द' (अथवा, या दा, किंवा, कि, या-या, चाहे-चाहे, न-न, न कि, नहीं तो),

'विरोधसूचक समुच्चयबोधक शब्द' (पर, परंतु,, लेकिन, किंतु, मगर, बल्कि)'

'परिणामसूचक समुच्चयबोधक शब्द' (इसलिए, अतः, अतएव, सो)' क्रिया-विशेषण' के रूप में व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते हैं ।

'मिश्र वाक्य' मे एक मुख्य वाक्य और उस पर आश्रित एक या एक से अधिक उपवाक्यों को किसी न किसी संबंध के आधार पर जोड़कर रखने का कार्य करने के हेतु 'कारणसूचक समुच्चयबोधक शब्द' (क्योंकि, कारण, इसलिए कि); उद्देश्यसूचक समुच्चयबोधक शब्द' (कि, ताकि, इसलिए कि), 'संकेतसूचक समुच्चयबोधक शब्द' (यदि-तो,जो-तो, अगर-तो यद्यपि-तथापि, चाहे-परंतु, कि); 'स्वरूपसूचक समुच्चयबोधक शब्द' (कि, अर्थात्, याने, उर्फ मानो) 'क्रियाविशेषण' के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते हैं ।

(अ) विशेष यह है कि 'अपेक्षित वाक्यार्थबोध के हेतु समुच्चयबोधक शब्द 'मित्र वाक्य' में या 'संयुक्त वाक्य' में 'साधारण वाक्य का विचलन करने वाले क्रियाविशेषण' के रूप मे व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते हैं । जैसे,

साधारण वाक्य (सरल वाक्य) :- लोग मेरा विद्वान होना जानते हैं ।

मिश्र वाक्य में विचलन : - लोग जानते है कि मै विद्वान हूँ ।

साधारण वाक्य : - लडकी अपने को शेरनी बोली ।

मिश्र वाक्य में विचलन :- लड़की बोली कि मैं शेरनी हूँ ।

साधारण वाक्य :- सुनीत ने उज्ज्वल से अपने साथ चलने को कहा ।

मिश्र वाक्य में विचलन :- सुनीत ने उज्ज्वल से कहा कि तू मेरे साथ चल।

साधारण वाक्य : - राहुल घर आकर मुझसे मिला ।

संयुक्त वाक्य में विचलन :- राहुल घर आया और वह मुझसे मिला ।

(आ) और एक विशेष यह कि 'अपेक्षित वाक्यार्थ बोध' के हेतु 'मिश्र वाक्य' मे तथा

सयुक्त वाक्य' मे सर्वनाम-शब्द संबंधित सज्ञा के बदले में आकर व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बना रहता है । जैसे, लड़की बोली कि मै शेरनी हूँ ।

(यहाँ 'मिश्र वाक्य' में 'लड़की' इस संज्ञा के बदले मे 'मैं' सर्वनाम-शब्द व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

सुनीत ने उज्ज्वल से कहा कि तू मेरे साथ चल !

(यहाँ 'मिश्र वाक्य' में 'उज्ज्वल' इस संज्ञा के बदले में 'तू' सर्वनाम-शब्द व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

राहुल घर आया और वह मुझसे मिला ।

(यहाँ 'संयुक्त वाक्य' में 'राहुल' इस संज्ञा के बदले में 'वह' सर्वनाम शब्द व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक है ।)

(९) वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से विस्मय, हर्ष, शोक, तिरस्कार, क्रोध स्वीकार, आशीर्वाद संबोधन आदि से संबंधित भावात्मकता का बोध करने के हेतु विस्मयादिबोधक शब्द भी व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बना रहता है ।

संज्ञा-शब्द, सर्वनाम-शब्द, विशेषण-शब्द, क्रिया-शब्द, क्रियाविशेषण-शब्द सबोधनबोधक-शब्द, पदबंध या वाक्य भी व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बनकर वाक्य में विस्मयादिबोधक- शब्द का कार्य करता है / जैसे,

हे 'भगवान' ! हमा ा कल्याण हो ! (संज्ञा-शब्दात्मक विस्मयादिबोधक)

'क्या' सुन्दर चित्र ३ ! (सर्वनाम-शब्दात्मक ")

'अच्छा' ! तेरी जय हुई ! (विशेषण-शब्दात्मक ")

'लो' ! अब तुम भी आ गये ! (क्रिया-शब्दात्मक ")

'अवश्य' ! मैं भी आऊँगा ! (क्रियाविशेषण-शब्दात्मक ")

'अजी' ! यह क्या हुआ ! (संबोधनबोधक शब्दात्मक)

बहुत अच्छा' ! आपने यह ठीक किया ! (पदबंधात्मक (वाक्यांशात्मक) ")

'जय हो' ! बन्धु, जय हो । (वाक्यात्मक " ")

(१०) वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से व्याकरणिक अर्थ-विचलन के रूप मे 'क्रियाविशेषण-शब्द' भिन्न-भिन्न अर्थो के बोधक बने रहते हैं । जैसे,

'ही, तो, भी, तक, भर, मात्र, सा 'ये क्रियाविशेषण-शब्द 'अवधारणा' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'बस, यथेष्ट, पर्याप्त, केवल, सिर्फ, फक़त, ठीक, अच्छा, अस्तु, खैर, चाहे इति 'ये क्रियाविशेषण-शब्द 'पर्याप्ति' का अर्थबोधक बने रहते है। 'अवश्य, जरूर, बेशक निस्संदेह, सचमुच, सही, वास्तव में, यथार्थ मे, यथार्थतः दरअसल, मुख्य करके, अलबत्ता 'ये क्रियाविशेषण-शब्द 'निश्चय' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'शायद,कदाचित, संभवत संभवतया, यथासंभव बहुत करके' ये क्रियाविशेषण-शब्द 'अनिश्चय' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'इसलिए, अतः, अतएव, तभी तो, काहे को,, क्यों' ये क्रियाविशेषण-शब्द निषेध' का अर्थ-बोधक बने रहते है । 'क्या, कौन, क्यो, कैसे, कब, कहाँ, किधर, किसलिए किसवास्त' ये क्रियाविशेषण-शब्द प्रश्न' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'बहुत, अधिक बिलकुल नितांत निरा निपट' ये क्रियाविशेषण शब्द 'अधिकता' का अर्थबोधक बने रहते

है। 'कम, थोडा, तनिक, कुछ, प्रायः,लगभग, करीब-करीब' ये क्रियाविशेषण-शब्द 'न्यूनता' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'अधिक, ज्यादा, कम, थोडा, इतना, उतना, कितना 'ये क्रियाविशेषण-शब्द 'तुलना' का अर्थबोधक बने रहते है । 'यथाक्रम, क्रमशः, क्रम क्रम से, बारी बारी से 'ये क्रियाविशेषण-शब्द 'श्रेणी (क्रमता) का अर्थ-बोधक बने रहते हैं ।

कुछ अन्य क्रियाविशेषण -शब्द भी अवधारणा, पर्याप्ति, निश्चय, अनिश्चय, कारण, प्रश्न, अधिकता, न्यूनता, तुलना, श्रेणी आदि का अर्थबोधक बने रहते हैं ।

(११) वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से व्याकरणिक अर्थ-विचलन के रूप मे सबधबोधक-शब्द भिन्न-भिन्न अर्थों के बने रहते हैं । जैसे, 'आगे, पीछे, बाद, पश्चात्, पूर्व, पहले, उपरांत; अनंतर 'ये संबंधबोधक शब्द 'काल' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'पास, निकट, करीब, नजदीक, समीप, भीतर, बाहर यहाँ, वहाँ, सामने ऊपर, पीछे, नीचे आगे, बाद, बीच, परे, दूर' आदि संबंधबोधक शब्द 'स्थान' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'प्रति, तरफ, आसपास, पार, आर पार' आदि संबंधबोधक शब्द 'दिशा' का अर्थबोधक बने रहते है । 'द्वारा, जरिए, मारफत, सहारे, हाथ, बल, जबानी' आदि संबंधबोधक शब्द 'साधन' का अर्थबोधक बने रहते है । 'हेतु, कारण, निमित्त, हारे लिए, वास्ते, खातिर सबब, बदौलत' आदि संबंधबोधक शब्द 'हेतु (कारण) का अर्थबोधक बने रहते है । 'भरोसे, नाम, विषय' आदि संबंधबोधक शब्द 'विषय' का अर्थबोधक बने रहते है । 'सिवा, सिवाय, बिना, बगैर अलावा, रहित, अतिरिक्त 'आदि सबंधबोधक शब्द 'व्यतिरेक' का अर्थबोधक बने रहते है । 'बदले, एवज, जगह' आदि संबंधबोधक शब्द 'विनिमय' का अर्थबोधक बने रहते है। समान, सदृश्य, सम, सरीखा, सा, ऐसा,, जैसा, भाँति, तरह, अनुरूप, अनुकूल, योग्य, लायक, अनुसार, तुल्य, बराबर मुताबिक, नाई' आदि संबंधबोधक शब्द 'सादृश्य' का अर्थबोधक बने रहते है । 'संग, साथ, सहित, समेत, अधीन, स्वाधीन, वश, पूर्वक' आदि सबधबोधक शब्द 'सहचार' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'विरुद्ध, खिलाफ, उल्टा, विपरीत प्रतिकूल' आदि संबंधबोधक शब्द 'विरोध' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'तक, लौं, पर्यत भर मात्र' आदि संबंधबोधक शब्द 'संग्रह' का अर्थबोधक बने रहते हैं । 'आगे, सामने अपेक्षा' आदि सबंधबोधक शब्द 'तुलना' का अर्थबोधक बने रहते हैं ।

(१२) वाक्य मे 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से विभिन्न पदबंध (वाक्यांश) भी व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते है । जैसे,

'गोली से घायल हुआ शेर' भागा । (संज्ञा-पदबंध रूपी कर्ता)

मैने 'अपनी खोई हुई पुस्तक' पायी । (संज्ञा-पदबंध रूपी कर्म)

आप 'बडे उदार इन्सान' है । (संज्ञा-पदबंध रूपी कर्तृपूर्ति)

'पैदल चलते हुए लौटना' ठीक है । (क्रियार्थक संज्ञा-पदबंध रूपी कर्ता)

'कहीं भी भटकता हुआ गाने वाला' आया है । (कर्तृवाचक कृदंत-पदबंध रूपी कर्ता)

मैने 'भीख माँगता हुआ दीन' देखा । (विशेषण-पदबंध रूपी कर्म)

'भाग्य का मारा' वह भटक रहा है । (सर्वनाम-पदबंध रूपी कर्ता)

'अभ्यास करने वाले को' यश मिला (" " " " कर्ता)

'फूल-सी सुंदर' लडकी खेल रही है । (विशेषण-पदबंध)

लड़का 'दौड़ा जा रहा' है । (क्रिया-पदबंध)

मैं 'तेरी ओर से होकर' जाऊँगा । (क्रियाविशेषण-पदबंध)

वह 'घर के भीतर से बाहर' निकला । (संबंधबोधक पदबंध/क्रियाविशेषणात्मक)

वह बैठा 'क्योंकि'/ 'इसलिए' कि वह थका था । (समुच्चयबोधक पदबंध/क्रिया विशेषणात्मक)

'अरे बाप रे' ! भागो ! (विस्मयादिबोधक पदबंध)

(१३) मिश्र वाक्य मे 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से विभिन्न आश्रित उपवाक्य व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते हैं । जैसे,

यह बात है 'कि मैं विद्वान हूँ '। (कर्मरूपी आश्रित संज्ञा उपवाक्य)

वे जानते हैं 'कि मैं विद्वान हूँ ।' (कर्मरूपी आश्रित संज्ञा उपवाक्य)

मेरी इच्छा है 'कि मैं एक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखूँ !' (कर्तृपूर्ति रूपी आश्रित संज्ञा उपवाक्य)

मेरा विश्वास यह है 'कि मेरे बेटे जरूर कुछ बनेंगे ।' (समानाधिकरण रूपी आश्रित संज्ञा उपवाक्य)

यहाँ एक लड़की है, 'जो बहुत सुंदर है ।' ('लड़की' कर्ता का विशेषण रूपी आश्रित उपवाक्य)

वह तो छात्र है, 'जो ढ़ने में तेज है ।' ('छात्र' कर्तृपूर्ति का विशेषण रूपी आश्रित उपवाक्य)

जब वर्षा हुई, 'तब मुझे आनंद हुआ ।' (कालवाचक क्रिया विशेषण रूपी आश्रित उपवाक्य)

'मैं जब जब चाहूँगा', तब-तब वहाँ जाऊँगा । (" " ")

'जहाँ तू जायेगी', वहाँ मैं भी आऊँगा । (स्थानवाचक " ")

'जैसे तू दौड़ेगा', वैसे हम भी दौड़ेंगे । (रीतिवाचक " " ")

'जितना पढ़ना है', तू उतना ही पढ । (परिमाणवाचक " ")

तू बहुत पढ़, 'क्योंकि तुझे कुछ बनना है ।' (कार्यकारण वाचक " ")

मैं वक्ता हूँ, 'इसलिए कि मुझे भाषण देने हैं ।' (" " ")

(१४) संयुक्त वाक्य में 'अपेक्षित वाक्यार्थ की दृष्टि से 'क्रिया-विशिष्टता' के आधार पर संयोजित मुख्य वाक्य व्याकरणिक अर्थविचलन का बोधक बने रहते हैं । जैसे,

लडकी घर आयी और वह मुझसे मिली ।

(यहाँ संयुक्त वाक्य के रूप मे दोनों मुख्य वाक्य क्रमानुसार चलती रही क्रिया का अर्थबोधक बने है । इस संयुक्त वाक्य में दोनों मुख्य वाक्य 'और' संयोजक समुच्चयबोधक से जुड़े हुए हैं ।)

मैं गाना गाऊँगा अथवा मैं चुप रहूँगा ।

(यहाँ संयुक्त वाक्य के रूप में दोनों मुख्य वाक्य अनिश्चयात्मक क्रिया का

अर्थबोधक बने हैं । इस संयुक्त वाक्य मे दोनो मुख्य वाक्य 'अथवा' विभाजक समुच्चयबोधक से जुड़े है ।)

बोलना आसान है, लेकिन करना कठिन है ।

(यहाँ संयुक्त वाक्य के रूप में दोनों मुख्य वाक्य विरोधात्मक क्रिया का अर्थबोधक बने हैं । इस संयुक्त वाक्य में दोनो मुख्य वाक्य 'लेकिन' विरोधदर्शक समुच्चयबोधक से जुडे है ।)

वह भूखा था, इसलिए उसने खाना खाया ।

(यहाँ संयुक्त वाक्य के रूप में दोनो मुख्य वाक्यों में से दूसरा मुख्य वाक्य पहले मुख्य वाक्य की क्रिया का परिणामबोधक क्रिया का अर्थबोधक बन गया है । इस संयुक्त वाक्य में दोनों मुख्य वाक्य 'इसलिए' परिणामदर्शक समुच्चयबोधक से जुडे हैं ।)

(१५) साधारण वाक्य (सरल वाक्य) ही सभी वाक्य-प्रकारों का मूल आधार होता है । ऐसे मूल आधार रूपी वाक्य में उद्‌देश्य और विधेय अपने भीतर के अपेक्षित पद-सयोग अर्थात् 'पदार्थ-संयोग' के आधार पर 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से व्याकरणिक अर्थ-विचलन का बोधक बने रहते है । जैसे,

मेरा होनहार बेटा अपनी पढ़ाई लगन से पूरी कर रहा है ।

(यहाँ 'मेरा होनहार बेटा' वाक्य का उद्‌देश्य है, जो अपने भीतर के एक पद (बेटा) और एक पदबंध (मेरा होनहार) संयोग पर आधारित है । वाक्य की समापिका क्रिया (पूरी कर रहा है) के कर्ता के रूप में 'बेटा' यह पद महत्वपूर्ण मूलभूत घटक है । 'मेरा होनहार यह पदबंध 'बेटा' का विशेषणात्मक विस्तार है।

'अपनी पढ़ाई लगन से पूरी कर रहा है' वाक्य का विधेय है, जो अपने भीतर के तीन पदों के संयोग पर आधारित है । इन तीन पदों में 'पूरी कर रहा है' यह क्रिया-पदबंध मुख्य घटक है । इसी क्रिया का फल जिस पर पढ़ रहा है, उसी कर्म 'अपनी पढ़ाई' का अर्थबोध समापिका क्रिया से ही हो रहा है और क्रिया जिस रीति से की जा रही है, उसका अर्थबोध 'लगन से' क्रियाविशेषण -पद में हो रहा है ।

प्रस्तुत वाक्य में उद्‌देश्य और विधेय अपने भीतर के अपेक्षित पद-संयोग (पदार्थ-सयोग) के आधार पर ही 'अपेक्षित वाक्यार्थ का बोधक बन गये है ।)

३ सारांश

यहाँ तक जो विषय-विवेचन हुआ है, उसका सारांश इस प्रकार है -

(१) मनुष्य अपने जीवन के हर क्षेत्र में भाषा का अर्थबोधक व्यवहार करता रहता है ।

(२) मनुष्य अपने जीवन में वाक्य के रूप में भाषा का अर्थबोधक व्यवहार करता रहता है और यह सिद्ध करता रहता है कि 'अर्थ'' ही भाषा (और वाक्य) का प्राणतत्व है।

(३) वाक्य सुनिश्चित स्थानक्रम-व्यवस्था पर आधारित शब्द-रूप पद -सयोग से बना रहता है । इस कारण से 'वाक्य की संरचना' महत्वपूर्ण होती है।

(४) वाक्य मे 'अपेक्षित वाक्यार्थ' की दृष्टि से जो सुसंगत पद-सयोग होता है, वह

वास्तव मे सुसगत पदार्थ-सयोग ही होता है ।

(५) 'वाक्य में सुसंगत पदार्थ-संयोग' होता है, वह एक ओर से शब्दो के मूल अर्थों को भी अपने में सुरक्षित रखता है और दूसरी ओर से अपेक्षित वाक्यार्थ को भी बनाए रखने का महत्वपूर्ण कार्य करता है ।

(६) 'वाक्य में जो सुसगत पदार्थ-संयोग' होता है, वह अपेक्षित वाक्यार्थ को बनाए रखने के लिए 'सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता' पर आधारित होता है ।

(७) वाक्य मे अपेक्षित वाक्यार्थ की दृष्टि से अनिवार्य रूप से जिस 'सुसगत वाक्यार्थबोधक योग्यता' को स्थान दिया जाता है, वह तो वाक्य में संयोजित शब्द-रूप पदो के अत्यावश्यक 'व्याकरणिक अर्थ-विचलन' पर आधारित होती है

(८) वाक्य में पद-संयोग के भीतर जिन शब्द-भेदों आदि का समावेश किया रहता है, वह सब 'व्याकरणिक अर्थ-विचलन' का बोधक बना रहता है ।

(९) वाक्य में अपेक्षित वाक्यार्थ की दृष्टि से आवश्यक पद-संयोग में 'व्याकरणिक अर्थ-विचलन' तथा 'सुसंगत वाक्यार्थबोधक योग्यता' का होना महत्वपूर्ण होता है ।

(१०) 'पद्य-साहित्य' तथा 'गद्य-साहित्य' के रूप में सपूर्ण साहित्य अपेक्षित वाक्यार्थ का बोधक बने हुए वाक्यों पर ही आधारित होता है ।

(४) द्वितीय प्रकरण के आधार पर विषय-प्रवेश

(१) 'कला का सौन्दर्य रूपी अर्थ' नामक द्वितीय प्रकरण के भीतर जो विषय-विवेचन हुआ है, उससे स्पष्ट हुआ है कि 'कला का सौन्दर्य रूपी अर्थ ही उसका प्राणतत्व होता है । इसी असाधारण, विशेष, रमणीय अर्थात् सुन्दर अर्थात् आनन्दप्रद प्राणतत्व के साथ ही कला अस्तित्व में आ जाती है । इसका अर्थ यह हुआ कि 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' के बिना अर्थात् प्राणतत्व के बिना कला अस्तित्व में आ ही नहीं सकती ।

(२) 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही कला-सृजक प्रयोजन बना रहता है । इसी कारण से सौन्दर्य रूपी अर्थ कला का प्राणतत्व बना रहता है ।

(३) प्रकृति प्रदत्त देन या ईश्वरप्रदत्त देन के फलस्वरूप ही सौन्दर्य रूपी अर्थ कला-सृजक प्रयोजन तथा कला का प्राणतत्व बनकर रहता है ।

(४) प्रकृतिप्रदत्त देन या ईश्वरप्रदत्त देन के रूप में प्राप्त 'क्रिया-क्षमता' के बल पर मनुष्य जीवन भर विभिन्न क्रियाएँ करता रहता है । इसीलिए मनुष्य विभिन्न 'क्रियाओं का कर्ता' बनकर रहता है ।

(५) वास्तव में मनुष्य अपने जीवन में 'कलाकृतियों का भी कर्ता बनकर रहता है। जो मनुष्य कलाकृतियों का कर्ता बनकर रहता है, उसे 'कलाकार' (कलावंत) के रूप में पहचाना जाता है ।

(६) 'कलाकार' को 'साधारण क्रिया-क्षमता' के अतिरिक्त प्रकृतिप्रदत्त देन या ईश्वरप्रदत्त देन के रूप में 'असाधारण क्रिया-क्षमता', 'विशेष क्रिया-क्षमता,' चित्ताकर्षक क्रिया-क्षमता', 'रमणीय क्रिया-क्षमता', 'सुंदर क्रिया-क्षमता' अर्थात् 'आनन्दप्रद क्रिया-क्षमता', अर्थात् 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' प्राप्त हुई रहती है ।

(७) साधारण मनुष्य प्रकृतिप्रदत्त या ईश्वरप्रदत्त 'साधारण क्रिया-क्षमता' के बल

पर या अपने हृदय के सहयोग से भावात्मक क्रिया करता रहता है या अपनी बुद्धि के सहयोग से विचारात्मक क्रिया करता रहता है या अपनी सामान्य कल्पना के सहयोग से कल्पनात्मक क्रिया करता रहता है ।

(८) लेकिन 'कलाकार' प्रकृतिप्रदत्त या ईश्वरप्रदत्त 'असाधारण क्रिया-क्षमता' अर्थात् 'कलात्मक क्रिया-क्षमता' के बल पर हृदय, बुद्धि और असामान्य कल्पना के एकत्रित सहयोग से ऐसी 'कलात्मक क्रिया' करता है, जिससे भावात्मकता, विचारात्मकता तथा कल्पनात्मकता के समन्वय से युक्त 'कलाकृति' का सृजन हो जाता है । भावात्मकता विचारात्मकता तथा कल्पनात्मकता के समन्वय से युक्त होने के कारण ही 'कलाकृति' एक असाधारण कृति, एक विशेष कृति, एक चित्ताकर्षक कृति, एक रमणीय कृति, एक सुन्दर कृति अर्थात् एक आनन्दप्रद कृति बनी रहती है ।

(९) 'कलाकृति' में कलाकार की भावात्मकता, विचारात्मकता तथा कल्पनात्मकता के समन्वय के रूप मे तीव्र भाव-स्थिति, विचारप्रवृत्त बुद्धि-स्थिति और उद्भावनाप्रवण कल्पना-स्थिति का सुन्दर समन्वय बना रहता है, जो 'कलात्मक विशिष्ट अर्थ' का रूप धारण कर लेता है ।

(१०) भावुक, विचारक तथा कल्पक कलाकार विशिष्ट जीवनानुभूति के प्रभाव के फलस्वरूप अपने भीतर एक ऐसे 'विशिष्ट अर्थ' का अनुभव करने लगता है, जिसमें भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का आकर्षक, रमणीय, सुन्दर अर्थात् आनन्दप्रद समन्वय हुआ रहता है । इस प्रकार का 'विशिष्ट अर्थ' साधारण अर्थ से 'विचलित असाधारण अर्थ' होता है । यह 'विचलित असाधारण अर्थ' भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ के सुन्दर समन्वय के रूप में अपने आप 'त्रिविध कलाकारार्थ' (कलाकार का अपना त्रिविध अर्थ) बन जाता है ।

(११) कलाकार अपने 'त्रिविध कलाकारार्थ' को अभिव्यक्त करने के लिए अपनी इच्छा से प्रेरित हो जाता है । उस समय कलाकार अपने त्रिविध कलाकारार्थ को कला-सृजक प्रयोजन, उद्देश्य, तात्पर्य, आशय, कथ्य अर्थात् प्रतिपाद्य के रूप में स्वीकार करता है और वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला अथवा काव्यकला (साहित्य कला) का सृजन कर देता है ।

(१२) कलाकार द्वारा सृजित कलाकृति में 'त्रिविध कलाकारार्थ' व्याप्त रहता है । स्वाभाविक रूप से 'त्रिविध कलाकारार्थ' कलाकार से सृजित कलाकृति मे 'त्रिविध कलार्थ' बना रहता है और उस कलाकृति का आस्वादन करने वाले सहृदय में 'त्रिविध सहृदयार्थ' बन जाता है ।

(१३) 'त्रिविध कलाकारार्थ, त्रिविध कलार्थ और त्रिविध सहृदयार्थ अपनी 'समन्वित त्रिविधात्मकता' अर्थात् 'असाधारणता' के कारण अपने-अपने स्थान पर आकर्षक, रमणीय, सुन्दर अर्थात् आनन्दप्रद बने रहते है ।

(१४) 'त्रिविध कलार्थ' का अपने स्थान पर असाधारण, विशेष, चित्ताकर्षक, रमणीय, सुन्दर अर्थात् आनन्दप्रद होने का ही अर्थ है कलाकृति का 'सौंदर्य की सृष्टि' होना और कलाकार का 'सौंदर्य का स्रष्टा' होना ।

(१५) सौन्दर्य की सृष्टि बनी हुई कलाकृति अपने असाधारण प्रभाव के रूप में

आनन्दप्रद' बनी रहती है ।

(१६) चाहे वास्तुकला हो, चाहे मूर्तिकला हो, चाहे चित्रकला हो, चाहे संगीतकला हो, चाहे काव्यकला (साहित्यकला) हो, वह 'त्रिविध कलार्थ' से व्याप्त होकर ही 'आनन्दप्रद सौन्दर्य की सृष्टि' बनी रहती है । कलाकृति रूपी सौन्दर्य-सृष्टि की एक अत्यधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमे व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन विभिन्न महत्वपूर्ण अर्थों में होता रहता है और उसके स्वाभाविक परिणाम के रूप मे त्रिविध कलार्थ का विचलन 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' में हो जाता है । जो 'त्रिविध कलार्थ' 'कलाकृति का प्राणतत्व' होता है उसका 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहना कला की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है ।

५. कलार्थ का विचलन सौन्दर्य रूपी अर्थ में

(१) जो 'त्रिविध कलार्थ' कलाकृति मे व्याप्त रहता है उसका विचलन 'विश्वात्मक अर्थ' मे हो सकता है ।

कलाकृति 'आस्वाद्य कृति' के रूप में उस 'सहृदय' के साथ अपना कायम सम्बन्ध बना रखती है, जो कलाकृति का आस्वादन कर सकता है ।

कलाकृति का आस्वादन करने वाले 'सहृदय' का अस्तित्व विश्व में कहीं भी हो सकता है और किसी भी काल में हो सकता है । इसीलिए किसी भी स्थल का और किसी भी काल का 'सहृदय' कलाकृति का आस्वादन कर सकता है और परिणाम के रूप में अपने भीतर उस त्रिविध सहृदयार्थ का अनुभव कर सकता है जो उस कलाकृति में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' रूपी विचलन होता है । इस प्रकार 'सम्भाव्यता' रूपी विशेषता के आधार पर 'त्रिविध कलार्थ' स्थल, काल और व्यक्ति की सीमा से मुक्त होकर 'विश्वात्मक अर्थ' में विचलित (संक्रमित) हो सकता है और सार्वत्रिक अर्थ, सार्वकालिक अर्थ तथा सार्वजनीन अर्थ बन सकता है ।

(२) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन 'बिम्बात्मक अर्थ' में हुआ रहता है । त्रिविध कलार्थ 'बिम्बात्मक अर्थ' के रूप में कलाकार की पाँच प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों के जीवनानुभवों पर आधारित होता है ।

त्रिविध कलार्थ रूपी 'बिम्बात्मक अर्थ' में दृश्य बिम्ब, श्रव्य बिम्ब, स्वाद्य बिम्ब, स्पर्श्य बिम्ब और घ्राण्य बिम्ब महत्व का कार्य करते है ।

वास्तव मे त्रिविध कलार्थ का बिम्बात्मक अर्थ बने रहने के कारण ही पूरी कलाकृति एक 'विशेष बिम्ब' अर्थात् 'कलात्मक बिम्ब' बनी रहती है ।

(३) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन 'रूपात्मक अर्थ' में हुआ रहता है ।

त्रिविध कलार्थ का बिम्बात्मक अर्थ बने रहने का दूसरा अर्थ यह है कि उसका 'रूपात्मक अर्थ' बनकर रहना । इसी विशेषता के स्वाभाविक परिणाम के रूप में ही वास्तुकला रूपी या मूर्तिकला रूपी या चित्रकला रूपी या संगीतकला रूपी अथवा काव्यकला रूपी (साहित्यकला रूपी) कलाकृति 'रूपात्मक' ही बनी रहती है । काव्यकला रूपी (साहित्यकला रूपी) कलाकृति में व्याप्त रूपात्मक अर्थ मे तो दृश्य बिम्बात्मक अर्थ, श्रव्य बिम्बात्मक अर्थ, घ्राण्य बिम्बात्मक अर्थ, स्पर्श्य बिम्बात्मक अर्थ का बहुत सुन्दर समन्वय बना रहता है । इसीलिए काव्यकृति (साहित्य कृति) में विशेष 'वाक्य-रचना' के रूप में ही 'रूपात्मक अर्थ' बना रहता है ।

(४) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन 'एकरूप अर्थ' में हुआ रहता है।

वास्तविकता यह है कि कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ रूपी 'रूपात्मक अर्थ' ही 'एक रूप अर्थ' बना रहता है ।

त्रिविध कलार्थ रूपी 'रूपात्मक अर्थ' अपने मूल रूप में 'साकार्य अर्थ' होता है, जो साकारीकरण की प्रतीक्षा मे होता है । जिस समय रूपात्मक अर्थ रूपी 'साकार्य अर्थ' का साकारीकरण वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला अथवा काव्यकला (साहित्यकला) रूपी कलाकृति के रूप में हो जाता है उस समय 'साकार्य अर्थ' का विचलन 'साकार अर्थ मे हुआ रहता है । इसका अर्थ यह है कि कलाकृति में तो 'साकार्य अर्थ' और 'साकार अर्थ मे अभेद बना रहता है । इससे पूरी कलाकृति में वह 'एकरूप अर्थ' व्याप्त रहता है, जो 'साकार्य अर्थ' और 'साकार अर्थ' का अभेद होता है ।

(५) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन 'मौलिक अर्थ' में हुआ रहता है। यह 'मौलिक अर्थ' अपनी समन्वित त्रिविधात्मकता के बल पर विशेष 'नवीन अर्थ' बना रहता है ।

महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि केवल 'कलाकृति' में ही 'भावात्मक अर्थ', 'विचारात्मक अर्थ' और 'कलात्मक अर्थ' का 'समन्वयात्मक रूप' बना रहता है । इस प्रकार का तीनो अर्थों का 'समन्वयात्मक रूप' केवल कलाकृति में ही हो सकता है । इसी विशेषता के कारण कलाकृति मे व्याप्त त्रिविध कलार्थ अपने आप 'मौलिक अर्थ' 'यानी' नवीन अर्थ' बन जाता है ।

त्रिविध कलार्थ मे कलात्मक अर्थ का सहयोग इसलिए अधिक महत्वपूर्ण होता है कि उससे त्रिविध कलार्थ अधिक से अधिक 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' बना रहता है।

(६) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध का विचलन 'श्रृंखलित सघन अर्थ' में हो जाता है।

त्रिविध कलार्थ में सबसे पहले 'भावात्मक अर्थ' रूपी कडी बनी रहती है । फिर यथाभिप्रेत 'भावात्मक अर्थ' के साथ 'विचारात्मक अर्थ' रूपी कड़ी जुड जाती है । तत्पश्चात् 'भावात्मक अर्थ' और 'विचारात्मक अर्थ' की कड़ियों के संयोग के साथ 'कल्पनात्मक अर्थ' रूपी कड़ी जुड़ जाती है । इस प्रकार कलाकृति में ये तीनों अर्थ 'श्रृंखला रूप अर्थ' यानी 'श्रृंखलित अर्थ' बने रहते हैं ।

'कल्पनात्मक अर्थ' के जुडे रहने से त्रिविध कलार्थ रूपी 'श्रृंखलित अर्थ' अधिक से अधिक 'श्रृंखलित अर्थ' बना रहता है । इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि 'कल्पनात्मक अर्थ' के सहयोग से त्रिविध कलार्थ मे विविध संभाव्य अर्थ उभर सकते हैं और 'श्रृंखलित अर्थ' अधिक से अधिक 'गहरा अर्थ' यानी 'सघन अर्थ' बन सकता है । अतः 'श्रृंखलित सघन अर्थ' में त्रिविध कलार्थ का विचलन महत्वपूर्ण होता है ।

(७) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन 'प्रभावात्मक अर्थ' मे हुआ रहता है । वास्तव में त्रिविध कलाकारार्थ अपने मूल रूप मे 'प्रभावात्मक अर्थ' ही होता है । तभी तो कलाकार प्रभावित होकर अपने 'साकार्य त्रिविध कलाकारार्थ' को कलाकृति के रूप में साकार कर देता है । इसके परिणामस्वरूप ही त्रिविध कलाकारार्थ अपने आप साकार त्रिविध कलार्थ, बन जाता है, और एक स्वाभाविक परिणाम के रूप मे त्रिविध कलार्थ भी

अपने आप 'प्रभावात्मक अर्थ' बना रहता है । इस प्रकार की वास्तविकता के कारण ही कलाकृति 'प्रभाव्य' तथा 'आस्वाद्य' बनी रहती है ।

(८) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' मे हुआ रहता है ।

अतिशय महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि अपनी समन्वयात्मक त्रिविधार्थकता कलार्थकता, विश्वात्मक संभाव्यता, बिम्बात्मकता, रूपात्मकता, एकरूपता, मौलिकता (नवीनता) श्रृखलित सघनता तथा प्रभावात्मकता के कारण 'त्रिविध कलार्थ 'स्वाभाविक रूप से ही असाधारण, विशेष, चित्ताकर्षक तथा रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है । अपने मे व्याप्त 'सौन्दर्यरूपी अर्थ' के बल पर ही कलाकृति 'आस्वाद्य' बनी रहती है । तभी तो सहृदय कलाकृति का आस्वादन करने के लिए प्रेरित होकर कलाकृति का आस्वादन करता रहता है ।

कलाकृति मे जो इन सबका 'विलक्षण एकीकृत संयोग' हुआ रहता है, वही कला का 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' होता है । इसी सौन्दर्य रूपी अर्थ से व्याप्त होने से ही 'कलाकृति सुन्दर, रमणीय, चित्ताकर्षक, विशेष और असाधारण बनी रहती हैं ।

(९) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन 'आनन्दप्रद अर्थ' में हुआ करता है ।

वास्तव में जो त्रिविध कलार्थ अपनी विशेष स्थिति मे 'सौंदर्य रूपी अर्थ' बना रहता है, वही 'आनन्दप्रद अर्थ' बना रहता है । मूल त्रिविध कलाकारार्थ आनन्दप्रद अर्थ ही होता है । तभी तो कलाकार भीतर ही भीतर आनन्द का अनुभव करते हुए कलाकृति का सृजन कर देता है और उसमें अपने त्रिविध कलाकारार्थ को ही 'त्रिविध कलार्थ' बना देता है । यह त्रिविध कलार्थ ही 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' के रूप में 'आनन्दप्रद अर्थ' बना रहता है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि जब सहृदय कलाकृति का आस्वादन करते रहता है, तब वह 'त्रिविध सहृदयार्थ' के रूप मे आनन्द (कलानद) का ही अनुभव करता रहता है । अतः त्रिविध कलार्थ का 'आनन्दप्रद अर्थ' होना महत्वपूर्ण होता है ।

(१०) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन 'कला-मूल्यात्मक अर्थ मे हुआ रहता है ।

त्रिविध कलार्थ का सौन्दर्य रूपी अर्थ बनकर रहना और सौन्दर्य रूपी अर्थ का आनन्दप्रद अर्थ बनकर रहना ही त्रिविध कलार्थ का 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बनना है ।

कलाकृति अपने में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' यानी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' यानी 'आनन्दप्रद अर्थ' के बल पर ही आनन्द (अर्थात् कलानन्द) की अनुभूति कराने में समर्थ हो जाती है । अतः कलाकृति का 'आनन्द' (कलानन्द) की अनुभूति कराने की क्षमता से युक्त होना ही कलामूल्यात्मक अर्थ' से युक्त होना है । इसका तात्पर्य यही है कि कलाकृति का आनन्दप्रद अर्थ' से व्याप्त होना ही उसका त्रिविध कलार्थ रूपी 'कलामूल्यात्मक अर्थ से व्याप्त होना है ।

(११) कलाकृति में व्याप्त त्रिविध कलार्थ का विचलन 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' मे हुआ रहता है ।

कलाकृति में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपने सभी प्रकार के अर्थ विचलन के साथ अत में अर्थ' बना रहता है कलाकृति अपने अर्थ के

रूप में एक ऐसी दृष्टि देने में समर्थ होती है, जिस दृष्टि के सहारे अपने जीवन को योग्य अर्थ में समझा-परखा जा सकता है । इस प्रकार की योग्यता के कारण ही मनुष्य के जीवन मे कलाकृति का समादर होता रहता है ।

कलाकृति मे त्रिविध कलार्थ रूपी भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ के समन्वयात्मक रूप के आधार पर ही 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' की स्थापना हुई रहती है । कलाकृति मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' मनुष्य को अपने जीवन में सोचने-विचारने के लिए और उत्कृष्ट संस्कारशील निर्णय करने के लिए प्रेरित करने की क्षमता रखता है । फलस्वरूप कलाकृति मनुष्य के जीवन मे अपना महत्व का स्थान बनाकर रखती है ।

इस प्रकार त्रिविध कलार्थ का 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहने का अभिप्राय यही है कि कला का प्राणतत्व से युक्त हो जाना ।

६. सारांश

द्वितीय प्रकरण के आधार पर विषय-प्रवेश के रूप में जो विवेचन हुआ है, उसका साराश इस प्रकार है :-

(१) केवल मनुष्य ही 'कलाकार' बनने की क्षमता रखता है और वही 'कला' (कलाकृति) का सृजन कर सकता है ।

(२) कलाकार को ही एक साथ भावुक, विचारक तथा कल्पक बनकर रहने की क्षमता प्रकृतिप्रदत्त देन या ईश्वरप्रदत्त देन के रूप में मिली रहती है । कलाकार को इस प्रकार की प्रकृतिप्रदत्त देन या ईश्वरप्रदत्त देन अपने जन्म के साथ ही मिली रहती है । कलाकार की बढ़ती रही उम्र के साथ विभिन्न जीवनानुभवो से प्रकृतिप्रदत्त देन या ईश्वरप्रदत्त देन सुसंस्कारित होती रहती है । तभी तो कलाकार कला के रूप में सुन्दर, रमणीय चित्ताकर्षक, विशेष तथा असाधारण 'कलाकृति' का सृजन करता रहता है ।

(३) एक साथ भावुक, बिचारक तथा कल्पक बनकर रहने की अपनी क्षमता के बल पर कलाकार अपनी किसी विशिष्ट जीवनानुभूति से प्रभावित होकर अपने में जिस 'त्रिविध कलाकारार्थ' का अनुभव करता रहता है, उसे 'कलाकृति' के रूप में साकार कर देता है। तब कलाकार का 'त्रिविध कलाकारार्थ' उसके द्वारा सृजित 'कलाकृति' मे 'त्रिविध कलार्थ के रूप में व्याप्त रहता है ।

(४) कलाकृति मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' का विचलन विभिन्न महत्वपूर्ण अर्थों में हुआ रहता है, जिसके फलस्वरूप 'त्रिविध कलार्थ' 'सौंदर्यरूपी अर्थ' बना रहता है, वही कलामूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है और वही 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है । अपने इस प्रकार के विलक्षण 'त्रिविध कलार्थ' के बल पर ही कलाकृति किसी भी स्थल के, किसी भी काल के और किसी भी 'सहृदय' के लिए आस्वाद्य तथा प्रभाव्य बनी रहती है ।

(५) कलाकार से कलाकृति का सृजन वास्तुकला के रूप में हो सकता है, मूर्तिकला के रूप में हो सकता है, चित्रकला के रूप मे हो सकता है; संगीतकला के रूप मे हो सकता है अथवा काव्यकला (साहित्यकला) के रूप मे हो सकता है।

चाहे वास्तुकला रूपी कलाकृति हो चाहे मूर्तिकला रूपी कलाकृति हो चाहे

चित्रकला रूपी कलाकृति हो, चाहे संगीतकलारूपी कलाकृति हो, चाहे काव्यकला (साहित्यकला) रूपी कलाकृति हो; उस कलाकृति में त्रिविध कलार्थ रूपी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' का व्याप्त रहना अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है । उससे कलाकृति रूपी वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत अथवा काव्य (साहित्य) सुन्दर, रमणीय, चित्ताकर्षक, विशेष तथा असाधारण कृति बनकर रहता है ।

(६) वास्तु ईंट, पत्थर, चूना आदि के संयोग से अस्तित्व मे आती है । मूर्ति छेनी हथौड़ी, पत्थर आदि के सहयोग से अस्तित्व में आती है । चित्र फलक, पेंसिल, बुरुश, रंग आदि के सहयोग से अस्तित्व में आता है । संगीत स्वर, राग के सहयोग से अस्तित्व मे आता है । काव्य (साहित्य) 'वाक्यात्मक भाषा' के सहयोग से अस्तित्व में आता है ।

कलाकृति के रूप में अस्तित्व में आने की विभिन्नता के फलस्वरूप वास्तु, मूर्ति तथा चित्र अपनी-अपनी दृश्यात्मकता के रूप में आस्वाद्य तथा प्रभाव्य बने रहते हैं ।

संगीत अपनी श्रव्यात्मकता के रूप मे आस्वाद्य तथा प्रभाव्य बना रहता है ।

काव्य (साहित्य) अपनी श्रव्यात्मकता और पाठ्यात्मकता के रूप में आस्वाद्य तथा प्रभाव्य बना रहता है । नेत्रो से लगनपूर्वक देखते रहकर ही वास्तु, मूर्ति और चित्र का कलात्मक आस्वादन किया जा सकता है और 'कलानन्द' पाया जा सकता है । इसी विशेषता के कारण ही आगरा के ताजमहल को, एलोरा और अजन्ता की मूर्तियो को और अजन्ता के चित्रों को नेत्रों से लगनपूर्वक देखा जाता है और कलानंद पाया जाता है ।

कानों से तल्लीनतापूर्वक सुनते रहकर ही संगीत का आस्वादन किया जा सकता है और 'कलानंद' पाया जा सकता है । इसी विशेषता के कारण ही किसी का भी संगीत तल्लीनतापूर्वक सुना जाता है और कलानंद पाया जाता है ।

कानों से ध्यानपूर्वक सुनते रहकर अथवा नेत्रों से पढ़ते रहकर काव्य (साहित्य) का आस्वादन किया जा सकता है और 'कलानंद' पाया जा सकता है । इसी विशेषता के कारण ही काव्य (साहित्य) ध्यानपूर्वक सुना जाता है अथवा पढ़ा जा सकता है और कलानंद पाया जा सकता है ।

(७) वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला और संगीतकला जिन साधनों के सहयोग से अस्तित्व में आती है, वे साधन अपने मूल रूप में और स्पष्ट रूप से अर्थबोधक नहीं होते । इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि इन कलाओं मे जो 'त्रिविध कलार्थ' व्याप्त होता है, उसका आस्वादन सहजता से हो नही पाता । उनके त्रिविध कलार्थ का बोध सरलता से नही हो सकता । उनके त्रिविध कलार्थ को समझने में कुछ अस्पष्टता बनी रहती है । फलस्वरूप इन कलाओं का आस्वादन करने से मिलने वाला कलानंद भी कुछ अस्पष्ट-सा बना रहता है ।

काव्यकला (साहित्यकला) जिस 'वाक्यात्मक भाषा' के सहयोग से अस्तित्व में आती है, वह अपने मूल रूप में और स्पष्ट रूप से अर्थबोधक ही होती है । वास्तविकता तो यह है कि 'वाक्यात्मक भाषा' का सम्पूर्ण व्यवहार अर्थबोधक ही होता है । वाक्यात्मक भाषा की अर्थबोधक वास्तविकता को ही इस ग्रंथ के प्रथम प्रकरण मे विस्तार से तथा सूक्ष्मता से स्पष्ट कर दिया गया है ।

भाषा का सम्पूर्ण अर्थबोधक व्यवहार अपेक्षित अर्थ का बोधक बनने वाले वाक्य के रूप मे होता रहता है । अपेक्षित अर्थ का बोधक बनने वाले वाक्य के सहयोग से ही काव्यकला (साहित्यकला) अस्तित्व मे आती है । इसीलिए काव्यकला (साहित्यकला) मे प्रयुक्त वाक्य/वाक्य-संयोग बहुत सरलता से 'त्रिविध कलार्थ' का बोधक बना रहता है । फलस्वरूप काव्यकला (साहित्यकला) का आस्वादन सहजता से किया जा सकता है और सरलता से कलानन्द पाया जा सकता है ।

'स्पष्ट अर्थबोधकता' के कारण ही केवल काव्यकला (साहित्यकला) मे दृश्य बिम्ब श्रव्य बिम्ब, घ्राण्य बिम्ब, स्वाद्य बिम्ब और स्पर्श्य बिम्ब का सुन्दर समन्वय बना रहता है और उसमे 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य व्याप्त रहता है ।

७. साहित्य की वाक्य-विशिष्टता और कलार्थ-सौन्दर्य

(१) यहाँ 'साहित्य' का अर्थ वह कला है, जो 'वाक्यात्मक भाषा' के रूप मे अस्तित्व मे आ जाती है । वाक्यात्मक भाषा के रूप मे अस्तित्व में आना, यह तो साहित्यकला की सबसे बडी विशेषता है ।

(२) यहाँ 'साहित्य' का दूसरा अर्थ वह कला है, जो वाक्यात्मक भाषा के रूप मे 'पद्यकृति' तथा 'गद्यकृति' भी बनी रहती है ।

(३) यहाँ 'साहित्य' का तीसरा अर्थ वह कला है, जो 'कथारहित पद्यकृति' तथा 'कथारहित गद्यकृति' भी हो सकती है ।

(४) यहाँ 'साहित्य' का चौथा अर्थ वह कला है, जो 'कथाश्रित पद्यकृति' तथा 'कथाश्रित गद्यकृति' भी हो सकती है ।

(५) यहाँ 'साहित्य' का पाँचवाँ अर्थ वह कला है, जो 'कथारहित' अथवा 'कथाश्रित' हो सकती है ।

(६) साहित्यकला कथारहित पद्यकृति हो या कथारहित गद्यकृति हो या कथाश्रित पद्यकृति हो या कथाश्रित गद्यकृति हो उसका 'वाक्यात्मक भाषा' के रूप में अस्तित्व में आना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

(७) यहाँ 'वाक्यात्मक भाषा' का अर्थ 'वाक्य रूपी सहज इकाई पर आधारित भाषा' है ।

(८) यहाँ 'वाक्य रूपी सहज इकाई' का अर्थ सुनिश्चित स्थान-क्रम के अनुसार पदों का संगठित होकर अपेक्षित अर्थ का बोधक बने रहना है ।

(९) यहाँ पर 'साहित्य' का अर्थ वह 'कला' है, जो सुनिश्चित स्थानक्रम के अनुसार पदों से संगठित होकर अपेक्षित अर्थ का बोधक बनकर रहने वाले वाक्यों पर आधारित भाषा के रूप में अस्तित्व मे आती है ।

(१०) पद्यकृति कथारहित हो या कथाश्रित हो, वह जिस भाषा के रूप में अस्तित्व मे आती है, उस भाषा के वाक्य अपेक्षित अर्थ के बोधक तो बने रहते ही है, लेकिन उन वाक्यों में आवश्यक पद सुनिश्चित स्थानक्रम के रूप में संगठित होने के बदले सुनिश्चित स्थानक्रम में परिवर्तन करके संगठित हुए रहते हैं । तभी तो पद्यकृति के वाक्य में कर्तापद के स्थानक्रम पर क्रिया पद संगठित हुआ रहता है और क्रिया पद के स्थानक्रम पर कर्तापद

संगठित हुआ रहता है । अतएव पद्यकृति के वाक्य मे/वाक्यों में आवश्यक पदक्रम सुनिश्चित्त स्थानक्रम मे हुए परिवर्तन के आधार पर संगठित हुआ रहता है ।

पदों के स्थानक्रम-परिवर्तन के साथ संगठित होने से 'पद्यकृति' के वाक्य में/वाक्यो में तीव्र भावाश्रित लयबद्धता, गेयात्मकता, संगीतात्मकता, नादसौन्दर्यात्मकता, नादमधुर गत्यात्मकता बनी रहती है । इस प्रकार की महत्वपूर्ण विशेषता के कारण पद्यकृति के वाक्य में/ वाक्यों में जो 'कलार्थ' व्याप्त हुआ रहता है, वह अत्यधिक आकर्षक, रोचक, रमणीय सुन्दर और आनन्दप्रद बना रहता है ।

वाक्य में/वाक्यों मे तीव्र भावाश्रित लयबद्धता से युक्त पदों का स्थानक्रम-परिवर्तन पद्यकृति का अविभाज्य लक्षण है ।

पद्यकृति के वाक्य में/ वाक्यों में कभी कभी पदों का स्थानक्रम व्याकरण मान्य व्यवस्था के अनुसार भी हुआ करता है । फिर भी उन पदों का संगठन तीव्र भावाश्रित ही हुआ करता है । इसीलिए उन पदों के भी संगठन में लयबद्धता, गेयात्मकता, संगीतात्मकता, नादसौन्दर्यात्मकता, नादमधुर गत्यात्मकता बनी रहती है ।

इस प्रकार पद्यकृति का तीव्र भावाश्रित तथा लयबद्ध होना महत्वपूर्ण है । तभी तो पद्यकृति साहित्य का एक प्रमुख रूप बनी रहती है ।

(११) 'गद्यकृति' कथारहित हो या कथाश्रित हो, वह जिस भाषा के रूप में अस्तित्व में आती है, उस भाषा के वाक्य अपेक्षित अर्थ के बोधक तो होते ही हैं, साथ ही उन वाक्यों में आवश्यक पद व्याकरणमान्य नियम-व्यवस्था के अनुसार सुनिश्चित स्थानक्रम के रूप में संगठित होते हैं । वाक्य में जिस पद को जिस स्थान क्रम पर संगठित होना होता है, उसी स्थानक्रम पर ही वह पद संगठित हुआ रहता है ।

गद्यकृति के वाक्य में/वाक्यों में पद-संगठन भावाश्रित तो होता ही है, लेकिन उस पद-संगठन में तीव्र भावाश्रित लयबद्धता अर्थात् संगीतात्मकता का अभाव होता है ।

इस प्रकार 'गद्यकृति' का तीव्र भावाश्रित लयबद्धता अर्थात् संगीतात्मकता से रहित होना और सुनिश्चित स्थानक्रम के अनुसार संगठित पदों से युक्त वाक्यों के रूप मे अस्तित्व में आना गद्यकृति का अविभाज्य लक्षण है । तभी तो 'गद्यकृति' भी साहित्य का एक प्रमुख रूप बनी रहती है ।

(१२) यहाँ 'कथारहित पद्यकृति' का अर्थ वह 'काव्यकला' (कविताकला) है, जो पाठ्यमुक्तक तथा गीतिमुक्तक के रूप में काव्यकृति बनी रहती है ।

(१३) यहाँ 'कथाश्रित पद्यकृति' का अर्थ वह 'काव्यकला' है, जो महाकाव्य, खंडकाव्य या अन्य किसी भी प्रकार के 'प्रबन्धकाव्य' के रूप में काव्यकृति बनी रहती है ।

(१४) यहाँ 'कथारहित गद्यकृति' का अर्थ वह 'निबन्धकला' है, जो विशेषकर निबन्धकार के विशिष्ट व्यक्तित्व के प्रभाव से युक्त विषयविवेचन के रूप में बनी रहती है ।

(१५) यहाँ 'कथाश्रित गद्यकृति' का अर्थ वह 'नाटककला' या 'उपन्यासकला' या 'कहानीकला' या किसी भी प्रकार की गद्यात्मक कला है, जो आकार की दृष्टि से बड़ी या छोटी 'कथाकृति' के रूप में बनी रहती है ।

(१६) कथारहित काव्यकृति (पाठ्यमुक्तक या गीतिमुक्तक) मे भाव विचार और

कल्पना ये तीनों भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ के समन्वित रूप में त्रिविध कलार्थ बने रहते है । कथारहित काव्यकृति में 'त्रिविध कलार्थ' संक्षिप्त बिम्ब के रूप में व्याप्त रहता है ।

(१७) कथारहित निबन्धरूपी गद्यकृति में त्रिविध कलार्थ विशिष्ट विषय के रूप मे तथा आवश्यकतानुसार विशिष्ट बिम्बों के रूप मे भी व्याप्त रहता है ।

(१८) कथाश्रित काव्यकृति (पद्यकृति) तथा कथाश्रित गद्यकृति मे 'त्रिविध कलार्थ' कथावस्तु, पात्र और देशकालवातावरण रूपी विस्तृत बिम्ब के रूप में व्याप्त रहता है । यहाँ कथावस्तु, पात्र और देशकालवातावरण के समन्वित रूप में विस्तृत बिम्ब बना रहता है और यह विस्तृत बिम्ब ही 'त्रिविध कलार्थ' होता है ।

(१९) साहित्य चाहे कथारहित काव्यकृति हो, चाहे कथारहित गद्यकृति हो, चाहे कथाश्रित काव्यकृति हो, चाहे कथाश्रित गद्यकृति हो, उस साहित्य का त्रिविध कलार्थ से व्याप्त होना अनिवार्य है ।

उस 'त्रिविध कलार्थ' का 'बिम्ब' के रूप में होना अनिवार्य है । साथ ही उस त्रिविध कलार्थ का चित्ताकर्षक, रमणीय अर्थात् आनन्दप्रद होना अनिवार्य है ।

(२०) साहित्यकला 'वाक्यात्मक भाषा' के रूप में ही अस्तित्व में आती है और बिम्ब रूपी आनन्दप्रद 'त्रिविध कलार्थ' से व्याप्त हुई रहती है ।

वास्तव में 'अर्थबोधक बना रहना' भाषा का अभिन्न लक्षण है । फलस्वरूप भाषा का प्रत्येक वाक्य अपने अपेक्षित अर्थ का बोधक बना रहता ही है । इससे भाषा का सपूर्ण व्यवहार अर्थबोधक बना रहता है । तभी तो 'वाक्यात्मक भाषा' से युक्त साहित्यकला भी अपने आप 'अर्थबोधक' बनी रहती ही है । साहित्यकला का भी प्रत्येक वाक्य अपने अपेक्षित अर्थ का बोधक बना रहता है ।

सामान्य (साधारण) व्यवहार में 'भाषा का वाक्य' सामान्य (साधारण) अर्थ का बोधक बना रहता है । सामान्य (साधारण) व्यवहार में भाषा का वाक्य या तो भावात्मक अर्थ का बोधक बना रहता है या विचारात्मक अर्थ का बोधक बना रहता या कभी कभी इन दोनों अर्थों के समन्वित रूप का बोधक बना रहता है । इसी वास्तविकता के कारण सामान्य व्यवहार में भाषा का वाक्य 'साहित्यकला' का रूप धारण नहीं कर पाता ।

परन्तु जिस क्षण भाषा का वाक्य सामान्य (साधारण) व्यवहार से हटकर भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ के समन्वित रूप का अर्थात् 'त्रिविध अर्थ' का बोधक बन जाता है, उसी क्षण भाषा का वाक्य कला का वाक्य बनकर 'साहित्यकला' का रूप धारण कर लेता है ।

'साहित्यकला का वाक्य' जिस 'त्रिविध अर्थ' का बोधक बन जाता है उस 'त्रिविध अर्थ' को 'त्रिविध कलार्थ' अथवा 'कलार्थ' कहना समुचित है । वास्तव में 'त्रिविध कलार्थ' सामान्य (साधारण) वाक्यार्थ से हटकर असामान्य (असाधारण/अलौकिक) 'कलार्थ' बना रहता है ।

साहित्यकला के वाक्य मे 'त्रिविध कलार्थ' बिम्ब के रूप मे व्याप्त रहता है । इसी विशेषता के कारण साहित्यकला मे चाहे दृश्य बिम्ब हो चाहे श्राव्य बिम्ब हो चाहे घ्राण्य

बिम्ब हो, चाहे स्वाद्य बिम्ब हो, चाहे स्पर्श्य बिम्ब हो, वह 'त्रिविध कलार्थ' से व्याप्त वाक्य के रूप में ही बना रहता है ।

इस प्रकार तभी साहित्यकला अस्तित्व मे आ जाती है, जब बिम्ब रूपी असाधारण त्रिविध कलार्थ' से व्याप्त वाक्य अस्तित्व मे आ जाता है ।

(२१) साहित्यकला के वाक्य में/वाक्यों में प्राणतत्व के रूप में 'त्रिविध कलार्थ ही अपनी संभाव्यता के बल पर 'विश्वात्मक अर्थ' बनकर, बिम्बात्मकता के बल पर 'बिम्बात्मक अर्थ' बनकर, रूपात्मकता के बल पर 'रूपात्मक अर्थ' बनकर, एकरूपता के बल पर एक रूप अर्थ' बनकर, मौलिकता यानी नवीनता के बल पर 'मौलिक अर्थ' बनकर, श्रृंखलित सघनता के बल पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बनकर और प्रभावात्मकता के बल पर 'प्रभावात्मक अर्थ' बनकर 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन जाता है । यही 'सौन्दर्यरूपी अर्थ साहित्य का 'आनन्दप्रद अर्थ,' 'कलामूल्यात्मक अर्थ' और 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' भी बना रहता है ।

साहित्यकला के वाक्य मे/वाक्यों में व्याप्त 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही आनन्दप्रद अर्थ बना रहता है और वह आनन्दप्रद अर्थ ही 'कलानन्द' के रूप मे कलामूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है । वह 'कलानन्द' ही साहित्यकला का 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है । इससे मनुष्य के जीवन में साहित्यकला अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान पा लेती है ।

यहाँ तक के विवेचन से स्पष्ट होता है कि-

(ट) साहित्य की वाक्य-विशिष्टता बहुत महत्वपूर्ण है ।

(ठ) साहित्य की वाक्य-विशिष्टता ही साहित्यकला बनी रहती है ।

(ड) साहित्य की वाक्य-विशिष्टता में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे असाधारण, विशेष, चित्ताकर्षक, रोचक, विदग्ध, ललित और रमणीय होता है।

(ण) ˙ हित्य की वाक्य-विशिष्टता में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' ही अपनी विभिन्न विशेषताओं के आधार पर विश्वात्मक अर्थ बिम्बात्मक अर्थ, रूपात्मक अर्थ, एकरूप अर्थ मौलिक अर्थ, श्रृंखलित सघन अर्थ तथा प्रभा‌ात्मक अर्थ बना रहता है ।

(त) साहित्य की वाक्य- विशिष्टता मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' ही अपनी विभिन्न अर्थो का रूप धारण कर सकने की क्षमता के आधार पर, अपनी समन्वित त्रिविधात्मकता के बल पर तथा अपनी अलौकिकता के आधार पर 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है ।

(थ) साहित्य की 'वाक्य-विशिष्टता' में व्याप्त 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही आनन्दप्रद अर्थ, कलामूल्यात्मक अर्थ और जीवन-मूल्यात्मक अर्थ बना रहता है ।

(द) साहित्य की वाक्य-विशिष्टता 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर मनुषष्य ेा जीव मे साहित्यकला के रूप में बहुत महत्वपूर्ण बनी रहती है।

(ध) साहित्य की 'वाक्य-विशिष्टता' साहित्यकला के रूप में आस्वाद्य, श्रवणीय पठनीय, मननीय तथा विचारणीय बनी रहती है ।

(न) साहित्य की 'वाक्य-विशिष्टता' म व्या त्रिविध ार्थ रूपी सौन्दर्य' निश्चय ही ज्ञातव्य होता है

८. मुक्तक काव्य में व्याप्त 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य'

साहित्य मे मुख्य रूप से पद्यकृति (काव्यकृति/कविताकृति) और गद्यकृति का समावेश होता है । परन्तु इनके भी दो-दो रूप इस प्रकार बने रहते हैं -

पद्यकृति के दो रूप :- कथारहित पद्यकृति, कथाश्रित पद्यकृति

गद्यकृति के दो रूप . - कथारहित गद्यकृति, कथाश्रित गद्यकृति

स्पष्ट है कि साहित्य की पद्यकृति भी कथारहित होती है और गद्यकृति भी कथारहित होती है ।

दूसरी ओर साहित्य की पद्यकृति भी कथाश्रित होती है और गद्यकृति भी कथाश्रित होती है ।

इस प्रकार साहित्य में 'कथारहित कृति' और कथाश्रित कृति' इन मुख्य दो रूपो का भी अंतर्भाव हो जाता है ।

साहित्य की कथारहित कृति में 'मुक्तक काव्य' रूपी पाठ्य मुक्तक और गीति मुक्तक का समावेश होता है और साथ ही निबन्ध गद्यकृति का भी समावेश होता है ।

साहित्य की कथाश्रित कृति में प्रबन्ध काव्य रूपी महाकाव्य और खंडकाव्य का समावेश होता है, और साथ ही नाटक, उपन्यास, कहानी आदि गद्यकृतियों का भी समावेश होता है ।

'आकार' को लेकर भी साहित्य के दो रूप बने रहते हैं -

(प) संक्षिप्त (छोटे) आकार की कृति ,और

(फ) विस्तृत (बड़े) आकार की कृति ।

कथारहित पाठ्य मुक्तक तथा कथारहित गीति मुक्तक संक्षिप्त आकार की पद्यकृतियाँ (काव्यकृतियाँ) है ।

कथारहित निबन्ध और कथाश्रित कहानी आदि थोड़े बड़े आकार की गद्यकृतियॉ है।

कथाश्रित महाकव्य और खंडकाव्य विस्तृत आकार की काव्यकृतियाँ हैं । कथाश्रित नाटक, उपन्यास आदि भी विस्तृत आकार की गद्यकृतियॉ हैं ।

महाकाव्य, खंडकाव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि कृतियाँ आकार की दृष्टि से कुछ न कुछ बड़ी (विस्तृत) हैं । इसलिए प्रस्तुत ग्रथ मे इन बड़ी कृतियो को उदाहरण के रूप मे उद्धृत करना और फिर उनमें 'कलार्थरूपी सौन्दर्य' की व्याप्ति दिखाना कठिन कर्म है । इस कठिन कर्म को ध्यान मे रखकर और विवेचन की सुविधा को भी ध्यान मे रखकर प्रस्तुत ग्रथ मे 'मुक्तक काव्य' को उद्धृत करने को और उसमें 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' की व्याप्ति दिखाने को स्वीकार किया गया है ।

(१) माली आवत देख के कलियॉ करै पुकार ।
फूल फूल चुन लीजिए काली हमार बार ।। -कबीर

यह कथारहित मुक्तक भक्त कवि कबीर से सृजित दोहा है । दोहा दो पंक्तियो मे पूर्ण होता है । उसकी प्रत्येक पंक्ति एक चरण होती है । दोहे का प्रत्येक चरण २४ मात्राओं का होता है और १३वी मात्रा तथा २४वीं मात्रा पर यति होती है । प्रस्तुत दोहे का

भी प्रत्येक चरण २४ मात्राओं वाला है और उसमे १३वीं मात्रा तथा २४वीं मात्रा पर यति है। पहले चरण मे 'माली आवत देख के' १३ मात्राओं वाला भाग है और अगला 'कलियॉं करै पुकार' ११ मात्राओं वाला भाग है । दूसरे चरण में 'फूल फूल चुन लीजिए' १३ मात्राओं वाला भाग है और अगला 'काली हमार बार' ११ मात्राओं वाला भाग है ।

प्रस्तुत दोहा अपने आप में 'एक पूर्ण कृति' अर्थात् 'एक पूर्ण रचना' है । प्रस्तुत दोहा 'वाक्यात्मक भाषा' के रूप मे ही अस्तित्व मे आया है । इस दोहे में जिन वाक्यों का प्रयोग हुआ है, वे इस प्रकार हैं-

(१) (बगीचे में अपनी ओर) माली (को) आता (हुआ) देखकर कलियाँ पुकार करने (लगीं) ।

(२) (कलियाँ अपनी रक्षा के हेतु आर्त स्वर से माली से प्रार्थना करने लगीं कि आप आज) फूल फूल (ही) चुन ले जाइए ।

(३) (आप यह जान लीजिए कि चुन ले जाने की) हमारी बारी कल (है) ।

पहला 'साधारण वाक्य' अर्थात् 'सरल वाक्य' है, जो कर्तृवाच्य; कर्तरि प्रयोग सामान्य भूतकाल तथा निश्चयार्थ का बोधक है । इस साधारण वाक्य में 'कलियॉं' अप्रत्यय कर्तापद प्रधान उद्‌देश्य का अर्थबोधक है । साथ ही यह प्रधान उद्‌देश्य क्रियारंभबोधक संयुक्त क्रिया 'करने लगीं' का स्त्रीलिंग, बहुवचन तथा अन्य पुरुष बोधक जातिवाचक संज्ञात्मक 'कर्ता' है ।

इस साधारण वाक्य मे 'पुकार' यह भाववाचक संज्ञा स्त्रीलिंग, एकवचन, अन्य पुरुष, और अप्रत्यय कर्मपद क अर्थबोधक है । यह अप्रत्यय कर्मपद 'करने लगीं' इन सकर्मक क्रिया के 'कर्म' का अर्थबोधक है ।

इस साधारण वाक्य में 'करने लगीं', यह मुख्य विधेय सकर्मक संयुक्त क्रिया, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ, सामान्य भूतकाल, पुल्लिंग, बहुवचन, अन्यपुरुष, 'कलियाँ' इस कर्ता और 'पुकार' इस कर्म के साथ अपने सम्बन्ध का अर्थबोधक है ।

इस साधारण वाक्य में 'बगीचे में' यह पद 'करने लगीं' इस सकर्मक संयुक्त क्रिया के साथ संबंध रखने वाले 'स्थान' का अर्थबोध कराने वाला स्थानवाचक क्रियाविशेषण है ।

'अपनी ओर माली को आता हुआ देखकर' यह पदबन्ध 'करने लगी' इस सकर्मक संयुक्त क्रिया के साथ संबंध रखने वाले 'कारण' का अर्थबोध कराने वाला कारणवाचक क्रियाविशेषण है ।

प्रस्तुत दोहे का दूसरा वाक्य 'उद्‌देश्यसूचक मिश्र वाक्य' है । इस मिश्र वाक्य मे 'कलियॉं अपनी रक्षा के हेतु आर्त स्वर से माली से प्रार्थना करने लगीं 'यह मुख्य उपवाक्य है । इस मुख्य उपवाक्य में भी 'कलियाँ' कर्तापद का अर्थबोधक है। 'अपनी रक्षा के हेतु यह पदबंध कार्यकारणवाचक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक है । 'माली से' यह पद गौण कर्म का अर्थबोधक है । 'प्रार्थना' मुख्य कर्म का अर्थबोधक है । 'करने लगीं' यह क्रियापद कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ, सामान्य भूतकाल आदि का अर्थबोधक है ।

'कि आप आज फूल फूल ही चुन ले जाइए' यह 'कि' उद्‌देश्यवाचक समुच्चयबोधक से युक्त आश्रित उपवाक्य है । इस आश्रित उपवाक्य में 'माली' इस संज्ञा का अर्थबोधक आदरार्थी सर्वनाम 'आप' कर्तापद का अर्थबोधक है । 'आज' यह पद कालवाचक क्रियाविशेषण

का अर्थबोधक है । 'फूल फूल' यह पदबध अप्रत्यय कर्म का अर्थबोधक है । 'ही' अवधारणबोधक क्रियाविशेषण का अर्थबोधक है । 'चुन ले जाइए' यह पदबध सकर्मक सयुक्त क्रिया, कर्तृवाच्य, आज्ञार्थ और प्रत्यक्ष विधिकाल का अर्थबोधक है ।

प्रस्तुत दोहे का तीसरा वाक्य 'स्वरूपसूचक' (स्पष्टीकरण सूचक) मिश्र वाक्य है । इस मिश्र वाक्य में 'आप यह जान लीजिए' यह मुख्य उपवाक्य है और यह 'कर्तरि प्रयोग' का वाक्य है । इस मुख्य उपवाक्य में 'माली' इस संज्ञा का अर्थबोधक आदरार्थी सर्वनाम 'आप' कर्तापद का अर्थबोधक है । सर्वनाम 'यह' समानाधिकरण आश्रित उपवाक्य का तथा कर्म का अर्थबोधक है । 'जान लीजिए' पदबन्ध सकर्मक संयुक्त क्रिया, कर्तृवाच्य, आज्ञार्थ और प्रत्यक्ष विधिकाल का अर्थबोधक है ।

'कि चुन ले जाने की हमारी बारी कल है' यह 'कि' स्वरूपवाचक समुच्चयबोधक से जुडा आश्रित उपवाक्य है, जिससे मुख्य उपवाक्य की बात का स्पष्टीकरण होता है । इस आश्रित उपवाक्य में 'चुन ले जाने की' और 'हमारी' ये दोनों पद विशेष्य 'बारी' के सबधकारकीय विशेषण हैं । 'बारी' यह स्त्रीलिंग, एकवचन, है । 'है' यह अकर्मक क्रिया, कर्तृवाच्य, निश्चयार्थ और सामान्य वर्तमान काल का अर्थबोधक है।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनो वाक्यो मे प्रयुक्त पदों और उनके अर्थों (अर्थात् पदार्थों) को जान लेने पर उन वाक्यो में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' समझ में आ जाता है। उन तीन वाक्यो में व्याप्त 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ : - कलियाँ आज भी पौधों के साथ रहकर जीने की इच्छा रखती हैं, वे पौधों से अलग होकर अकाल मृत्यु को स्वीकार करना नहीं चाहती । वे कम से कम कल तक जीना चाहती हैं । आशा यह है कि वे कल तक फूल बन जायेंगी और उनकी जीने की इच्छा (जीवन का अनुभव करने की इच्छा) कुछ न कुछ मात्रा में सफल हो जाएगी । इसलिए कल की पूर्ण विकसित (अर्थात् प्रौढ़) अवस्था में यानी फूल की स्थिति मे कलियॉ मृत्यु को स्वीकार करने को (पौधों से चुनी ले जाने को) तैयार हैं।

(आ) विचारात्मक अर्थ:- 'जीने की इच्छा' रखना प्रत्येक (जीवधारी) का जन्मसिद्ध अधिकार है । इसलिए आज कलियों को अपनी इच्छा के अनुसार जीने का अधिकार मिलना स्वाभाविक है । वैसे तो आज की कलियाँ प्रकृति की विकास-प्रक्रिया के अनुसार कल तक विकसित होकर फूल बनने वाली ही हैं । तब उनका (कलियो का) जीने का अधिकार छीना जा सकता है, पर आज कतई नहीं । आज उनको जीने का अधिकार मिलना ही चाहिए ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ : कलियों ने अपनी ओर आते रहे माली को मृत्युदंड देने वाले के रूप में देखा है । वैसे तो कलियो और माली का सम्बन्ध पोष्य-पोषक है । माली ही पौधो को जल से सींचता है, उनकी देखभाल करता है । इस प्रकार पौधे, कलियॉ, फूल पोष्य बने रहते हैं और स्वय माली पोषक बना रहता है । लेकिन वही माली फूलों को पौधो से चुन ले जाता है और कभी कभार भूल से कलि को/ कलियों को भी फूलों के साथ चुन ले जाता है । माली की भूल कलियो के लिए 'अकाल मृत्युदंड' बन जाती है । आज उनके साथ माली सावधानी से काम ले, इस हेतु में कलियॉ आज फूल फूल ही चुन ले जाने के लिए और कल तक अपने को भूलकर भी चुन न ले जाने के लिए भयग्रस्त स्थिति में माली

से प्रार्थना कर रही है।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोहे मे भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'त्रिविध कलार्थ' यानी 'कलार्थ' के रूप मे व्याप्त है । इस दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी निम्नांकित विलक्षण विशेषताओं के आधार पर 'सौन्दर्य' बन जाता है। परिणामस्वरूप प्रस्तुत दोहा आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवन मूल्यात्मक बनकर रह जाता है ।

प्रस्तुत दोहे मे व्याप्त जो 'कलार्थ' है, उसका केन्द्र 'जीने की प्रबल इच्छा' है । इसीलिए यह 'जीने की प्रबल इच्छा' संभाव्यता की विशेषता के बल पर किसी भी काल से संबंधित तथा किसी भी स्थल से संबधित किसी की भी अपनी 'जीने की प्रबल इच्छा' बन सकती है । इस प्रकार की विलक्षण विशेषता के बल पर प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ 'सहज ही 'विश्वात्मक अर्थ' बन जाता है । स्पष्ट है कि कलियों की 'जीने की प्रबल इच्छा' किसी भी विकासशील (अर्थात् प्रौढता की ओर बढ़ रही) 'युवा पीढ़ी' की इच्छा बन सकती है । इससे इस दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' सार्वकालिक, सार्वत्रिक तथा सार्वजनीन अर्थ के रूप में विश्वात्मक अर्थ बनकर रहता है । साथ ही साथ इस दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ रूपी विश्वात्मक अर्थ' अपनी स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप मे 'निर्वैयक्तिक अर्थ' तथा 'समष्टिगत अर्थ' बना रहता है।

प्रस्तुत दोहे में व्याप्त कलार्थ' अपनी बिम्बात्मकता की विशेषता के बल पर 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । कवि की कल्पना ने यहाँ त्रिविध कलार्थ को दृश्य बिम्ब बनाकर रख दिया है । 'माली व आते रहना, कलियो का माली को देखना, पुकार करने लगना, माली से प्रार्थना करने लगना, कल तक जीने की अपनी प्रबल इच्छा को व्यक्त करते रहना, फूलों को चुन ले जाना 'यह सब' क्रियाशील दृश्य बिम्ब है । यहाँ अजीव कलियों की सजीव जैसी, विशेषकर 'मनुष्य जैसी क्रियाशीलता' ने कलियों को मनुष्य की 'युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि बनाया है' और 'फूलों को प्रौढ पीढी का प्रतिनिधि बनाया है ।' एक दृष्टि से यहाँ कलियो और फूलों का मानवीकरण हुआ है। यहाँ कवि की कल्पना ने माली को मृत्यु का प्रतिनिधि बनाया है । इस प्रकार प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी रूपात्मकता की विशेषता के बल पर 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है । इस दोहे में जो 'दृश्य' बिम्बात्मक अर्थ' है, वह वास्तव में 'रूपात्मक अर्थ' (एक दृष्टि से चलचित्रात्मक अर्थ) ही है । यहाँ माली, कलियों और फूलों की दृश्य बिम्बात्मकता वास्तव में 'दृश्यमान रूपात्मकता' ही है। माली और कलियो की क्रियाशील बिम्बात्मकता तो चलचित्रात्मक रूपात्मकता बन गयी है ।

प्रस्तुत दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी एकरूपता की विशेषता के बल पर 'एक रूप अर्थ' बन गया है । वास्तव में बिम्बात्मक अर्थ अपने आप रूपात्मक अर्थ बना रहता है और रूपात्मक अर्थ अपने आप 'एकरूप अर्थ' बना रहता है । महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि बिम्बात्मक अर्थ यानी रूपात्मक अर्थ काव्यकृति (वाक्यात्मक कलाकृति) में इस तरह व्याप्त रहता है कि उन दोनो में 'भेदरहित एकरूपता' बनी रहती है । तभी तो वाक्यात्मक काव्यकृति मे से किसी भी शब्द (पद) को हटाया नहीं जा सकता । एकरूपता के कारण

ही वाक्यात्मक काव्यकृति के रूप मे प्रस्तुत दोहे मे 'एकरूप अर्थ' की स्थापना 'कलार्थ' के रूप मे हुई है ।

प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी मौलिकता यानी नवीनता की विशेषता के बल पर 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' बन गया है । अपनी त्रिविध समन्वयात्मकता और बिम्बात्मकता के कारण इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' बन गया है । वास्तव मे केवल कलाकृति मे 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' की स्थापना होती है । इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि कलाकृति के सृजन मे कलाकार का भाव, कलाकार का विचार और कलाकार की कल्पना तीनों एकत्रित कार्यरत यानी सक्रिय रहते हैं । इसीलिए प्रस्तुत दोहे में 'त्रिविध कलार्थ' रूपी 'मौलिक अर्थ' यानी 'नवीन अर्थ' की स्थापना हुई है ।

प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित सघनता की विशेषता के बल पर श्रृखलित सघन अर्थ' बन गया है । इस दोहे मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ' की पहली कडी भावात्मक अर्थ है, दूसरी कडी विचारात्मक अर्थ है और तीसरी कड़ी कल्पनात्मक अर्थ है। इन तीन अर्थो की श्रृंखलाबद्धता के कारण इस दोहे में उपर्युक्त 'कलार्थ' अपने आप श्रृखलित सघन अर्थ' के रूप मे व्याप्त हुआ है । यहाँ 'कल्पनात्मक अर्थ' रूपी कड़ी के सयोग से सभाव्य कल्पनाचित्रों यानी संभाव्य बिम्बों के उभरने की ओर परिणामस्वरूप विविध संभाव्य अर्थों के निकल आने की विशेष (कलात्मक) स्थिति बनी हुई है । इसी वास्तविकता के फलस्वरूप यहाँ कलियों की 'जीने की प्रबल इच्छा' मनुष्य की युवा पीढी की जीने की प्रबल इच्छा बन जाती है। इसका कारण यह है कि कलियों में देखने और बोलने की क्रियाएँ करने की क्षमता नहीं होती । क्योकि कलियाँ सजीव नही होती । देखने की क्रिया किसी भी सजीव से हो सकती है । लेकिन देखने की क्रिया और बोलने की क्रिया मनुष्य से ही हो सकती है । इसीलिए इस दोहे में कलियो का देखना और बोलना मनुष्य का देखना और बोलना बन जाता है । इससे प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' मनुष्य की जीने की प्रबल इच्छा का अर्थ बन जाता है । नैसर्गिक विकास-क्रम की दृष्टि से 'कलियाँ' अपूर्ण विकास-अवस्था की बोधक होती हैं, तो इसके विरुद्ध 'फूल' पूर्ण विकासावस्था के बोधक होते हैं । इसीलिए यहाँ कलियाँ मनुष्य की युवा पीढ़ी की प्रतिनिधि हैं, तो फूल मनुष्य की प्रौढ पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं । इससे इस दोहे मे कलियो की जीने की प्रबल इच्छा मनुष्य की युवा पीढ़ी की जीने की प्रबल इच्छा बन जाती है । इस दोहे मे 'माली' भी फूलों को (और कभी कलियो को भी) चुन ले जाने वाले के रूप में मृत्यु का प्रतिनिधि बन जाता है । कलियाँ फूल बनने पर चुनी जाने को तैयार हैं, इससे यह अर्थ निकलता है कि युवा पीढी प्रौढ बनने पर मृत्यु को स्वीकार करने के लिए तैयार हो सकती है, क्योंकि तब तक उसकी जीने की प्रबल इच्छा कुछ पूरी हुई रहती है। कलियाँ माली से बड़े आदर के साथ प्रार्थना करती है जिससे अर्थ यह निकलता है कि बड़े के सामने आदरपूर्वक नम्र निवेदन करने से बात बनने की बहुत संभावना होती है । इस प्रकार इस दोहे मे कई संभाव्य अर्थ निकलते रहते है इसलिए यहाँ 'त्रिविध कलार्थ' अपने आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी उपर्युक्त त्रिविधात्मकता, समन्वयात्मकता विश्वात्मकता, बिम्बात्मकता, रूपात्मकता, एकरूपता, मौलिकता (नवीनता), श्रृंखलित सघनता

और प्रभावात्मकता इन सभी विशेषताओं के बल पर 'सौन्दर्य' रूपी अर्थ' बन गया है । इसका अर्थ यह है कि प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' इन सभी विशेषताओं के साथ असाधारण, विशेष, रोचक, चित्ताकर्षक तथा रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । वास्तव मे यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत दोहे में व्याप्त रमणीय 'सौन्दर्य' है ।

प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' अपने स्वाभाविक रूप में असाधारण, विशेष, रोचक, चित्ताकर्षक, ललित, रमणीय तथा सुन्दर होने से 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । तभी तो सहृदय इस दोहे का आस्वादन करने में आत्मविभोर होकर भीतर ही भीतर आनन्द का अनुभव करता है । उस समय इस दोहे में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी आनन्दप्रद अर्थ 'सहृदय को एकत्रित रीति से भावात्मक आनन्द, विचारात्मक आनन्द तथा कल्पनात्मक आनन्द की अनुभूति करा देता है ।

प्रस्तुत दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' एक दृष्टि से 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । कला में व्याप्त 'आनन्दप्रद अर्थ' से जो आनन्द अनुभवने को मिलता है, वह वास्तव में 'कलानन्द' होता है । केवल 'कलानन्द' ही ऐसा आनन्द होता है जिसमें भावात्मक आनन्द, विचारात्मक आनन्द और कल्पनात्मक आनन्द का असाधारण (अलौकिक), विशेष तथा विलक्षण समन्वय बना हुआ रहता है । इसीलिए प्रस्तुत दोहे में जो 'कलानन्द' व्याप्त है, वही इस दोहे का 'कलामूल्यात्मक अर्थ' है ।

प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अंत में 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ बन गया है । 'जीने की प्रबल इच्छा रखना' यह तो प्रत्येक मनुष्य का 'जीवनमूल्य' है । विशेषकर युवा पीढी के लिए तो यह 'जीवनमूल्य' बहुत ही महत्वपूर्ण है । क्योंकि युवा पीढ़ी (कलियाँ) प्रौढ (फूल) बनने तक अकाल मृत्यु को टालना, जीवन को देखना, भोगना और आनन्द पाना पसन्द करती है । इसके विरुद्ध जिसने जीवन को देखा है, भोगा है और आनन्द पाया है ऐसी प्रौढ़ पीढ़ी मृत्यु के स्वाधीन होने को पसन्द कर सकती है । प्रौढ़ पीढ़ी के लिए मृत्यु के स्वाधीन होना उतना दु:खद नहीं होता, जितना युवा पीढ़ी के लिए अकाल मृत्यु के स्वाधीन होना दु:खद होता है । इसलिए इस दोहे में अपनी जीने की प्रबल इच्छा को लेकर पुकार करना 'मनुष्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण जीवनमूल्य बन गया है ।' अपनी जीने की प्रबल इच्छा पूरी होती रहे, इसलिए मनुष्य मृत्यु के आगे अतिशय नम्र बनकर रहता है । साथ ही मनुष्य मृत्यु के डर से प्राप्त जीवन को अच्छी तरह से भोगने को प्रयत्नशील हो सकता है । इस दृष्टि से भक्त कवि कबीर के इस दोहे मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी जीवनमूल्यात्मक अर्थ' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है ।

इस प्रकार भक्त कवि कबीर के उपर्युक्त दोहे में अर्थात् छोटी सी काव्यकृति (वाक्यात्मक कला कृति) में 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य की व्याप्ति' हुई है । इस दोहे की वाक्य-विशिष्टता में ही कलार्थ रूपी सौन्दर्य की व्याप्ति हुई है । यह दोहा जिन तीन वाक्यों के संयोग से बना है उनमें कलियों ने वक्ता का काम किया है और माली ने श्रोता (ज्ञाता) का काम किया है । कलियों के वक्त में 'फूल' का भी उल्लेख हुआ है । फूल पूर्ण विकसित अवस्था का बोधक है और कलियाँ अपूर्ण विकसित अवस्था का बोधक हैं । फूल भी अजीव होते हैं और कलियाँ भी अजीव होती हैं । फिर भी यहाँ कलियाँ मनुष्य की वाणी में अपना वक्तव्य माली (मनुष्य) को सुना रही हैं । इससे वाक्य-विशिष्टता को महत्व का स्थान मिला

है और प्रस्तुत दोहा अधिकाधिक रमणीय (सुन्दर) बन गया है । विशेष यह कि यहा कलियॉ' अपने आप मनुष्य की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि बन गयी हैं ।

काव्यकृति मे जिन वाक्यों का प्रयोग रहता है उन वाक्यो में से कुछ पदो का अध्याहार हुआ रहता है । ऐसी स्थिति में 'कलार्थरूपी सौन्दर्य की व्याप्ति' को समझने के हेतु काव्यकृति मे प्रयुक्त वाक्यों के अध्याहृत पदो को जानना अत्यावश्यक होता है । इसी कारण से प्रस्तुत दोहा रूपी काव्यकृति के तीनों वाक्यो को (व्याकरणिक ज्ञान के आधार पर) अध्याहृत पदों को प्रत्यक्ष जोड़कर, पूर्ण कर दिया गया है ।

प्रस्तुत दोहा रूपी काव्यकृति की वाक्य-विशिष्टता तीव्र भावाश्रित तथा लयबद्ध होने के कारण उसमें नादसौन्दर्य भी व्याप्त हुआ है । इस दृष्टि से दोहे के पहले चरण में 'क्' तथा र् ध्वनियो की आवृत्ति, दूसरे चरण मे 'फूल' शब्द (पद) की आवृत्ति, 'र्' ध्वनि की आवृत्ति और दोनों चरणों के अन्त में और ध्वनि-संयोग की आवृत्ति महत्वपूर्ण है । नादसौन्दर्य (सगीतात्मकता) की व्याप्ति के फलस्वरूप प्रस्तुत दोहा रूपी काव्यकृति में व्याप्त कलार्थरूपी सौन्दर्य अत्यधिक रमणीय बन गया है । इस सन्दर्भ मे 'कल' के बदले 'काली' रूप का प्रयोग और 'हमारी' के बदले 'हमार' रूप का प्रयोग भी नादमधुरता का महत्व रखता है ।

निष्कर्ष के रूप मे कहा जा सकता है कि भक्त कवि कबीर का उपर्युक्त दोहा अर्थात् उनकी यह छोटी सी काव्यकृति 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य की व्याप्ति' से ही अपना शाश्वत महत्व रखने वाली कलाकृति बन गयी है । किसी भी काव्यकृति को ऐसा ही होना अनिवार्य होता है ।

(२) बालम आवो हमारे गेह रे ।
तुम बिन दुखिया देह रे ।
सब कोई कहे तुम्हारी नारी, मोकों लागत लाज रे ।
दिल से नहीं दिल लगायो, तब लग कैसा सनेह रे ।
अन्न न भावे, नीद न आवै, गृह-बर धरै न धीर रे ।
कामिन को है बालम प्यारा, ज्यो प्यासे को नीर रे ।
है कोई ऐसा पर-उपकारी, पिवसों कहै सुनाय रे ।
अब तो बेहाल कबीर भयो है, बिन देखे जिव जाय रे ।।

-भक्त कवि कबीर

यह भक्त कवि कबीर का पद है, जो 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस पद रूपी काव्यकृति की रचना लगभग १२ वाक्यों के संयोग से हुई है ।

पंक्ति १: (हे) बालम ! (तुम) हमारे घर आवो ।
(प्रार्थना सूचक आज्ञार्थ, अकर्मक, सरल वाक्य)

'' २: तुम बिन (हमारी) देह दुखिया (है) ।
(निश्चयार्थ, अकर्मक सरल वाक्य)

'' ३: सब लोग (मुझे) तुम्हारी पत्नी कहते हैं ।
(निश्चयार्थ, सकर्मक तथा कर्मपूर्ति युक्त सरल वाक्य) ३' (लोगो का कहना सुनकर) मुझे लाज आती है । (निश्चयार्थ, सकर्मक सरल वाक्य)

" ४: (जब तक तुम) दिल से दिल नहीं लगाते, तब तक (अपना) प्यार कैसा (सफल होगा)? (कालवाचक क्रियाविशेषणात्मक उपवाक्य से युक्त मिश्र वाक्य)

" ५ : (मुझे) अन्न नही भाता । (निश्चयार्थ, सकर्मक सरल वाक्य)

" ५ : (मुझे) नींद नही आती । (" " " ")

" ५ : (अब तो) घर में (और बाहर भी) धीर धरा नहीं जाता । (निश्चयार्थ अकर्मक, सरल वाक्य)

" ६ : जैसे प्यासे को नीर (प्यारा है) वैसे कामिनी को बालम प्यारा है। (रीतिवाचक क्रियाविशेषणात्मक उपवाक्य से युक्त मिश्र वाक्य)

" ७ : पिया से (हमारी यह हालत) कह-सुनाएगा ऐसा कोई परोपकारी है?
(निश्चयार्थ, अकर्मक सरल वाक्य)

" ८ : अब तो कबीर का (बहुत) बेहाल हुआ है ।
(निश्चयार्थ, अकर्मक सरल वाक्य)

" ८ : (पिया ! तुमको) देखे बिना (हमारा) जीव जा रहा है ।
(निश्चयार्थ, अकर्मक सरल वाक्य)

इन १२ वाक्यों के संयोग के रूप में प्रस्तुत पद में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ : - हे बालम ! (हे ईश्वर रूपी पतिदेव) ! तुमसे मिलने की मेरी (भक्त रूपी पत्नी की) तीव्र इच्छा है । परन्तु तुम्हारा मेरे घर न आना, मुझसे न मिलना मेरे लिए बहुत दुःखकर बन गया है । मुझे लोगों का ताना मारना सुनना पड़ता है। मै लज्जित हो जाती हूँ । तुम्हारे वियोग मे मुझे भोजन अच्छा नहीं लग रहा है, नींद नही आ रही है और (चिंता से) मेरा धैर्य भी ढलने लगा है । अब मेरा इतना बेहाल हो रहा है कि तुम्हारे दर्शन के अभाव में मेरा जी निकला जा रहा है !

(आ) विचारात्मक अर्थ : - पत्नी की 'तीव्र इच्छा' महत्वपूर्ण है कि उसका पति घर आ जाय और उससे मिल जाय । पति के द्वारा अपने वियोग में पत्नी को तड़पाना अच्छा नही है । क्योंकि पति के वियोग मे पत्नी की जान भी जा सकती है ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ: - संपूर्ण पद कबीर रूपी वक्ता का वक्तव्य है । पद की अतिम पंक्ति तक की पंक्तियो में वक्ता के रूप में उत्तम पुरुष, एक वचन 'मै' का अर्थबोध होता है, तो कही पर 'मैं' के ही अर्थ मे उत्तम पुरुष, बहुवचन 'हम' का बोध होता है । पर अन्त मे स्पष्ट होता है कि स्वय कबीर (कवि/कलाकार) ही वक्ता है।

स्वयं कबीर जिसे सबांधित करके अपनी बात कह रहे है वह बालम (पीव/प्रिय) उनके सामने अनुपस्थित है । इसीलिए कबीर ने एक पत्नी के रूप मे उस बालम (पीव) रूपी पति से अपने घर में मिलने की तीव्र इच्छा अपने वक्तव्य मे व्यक्त की है और यह समझाया है कि वियोग मे वियोगिनी पत्नी (कामिनी) के लिए बालम (पति) वैसा ही प्यारा होता है ,जैसे प्यासे को जल जीवित रहने के लिए प्यासे को जल का मिलना जितना अनिवार्य है, उतना ही विरहिणी पत्नी से पति का मिलना अनिवार्य है । तभी तो यहाँ पति

घर आकर पत्नी से मिल ही जाय, इस दृष्टि से किसी परोपकारी से सहायता लेने की भी इच्छा व्यक्त की है ।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त पद मे भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'त्रिविध कलार्थ' यानी 'कलार्थ' के रूप मे व्याप्त है । वास्तव मे इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' ही है ।

प्रस्तुत पद में व्याप्त जो 'कलार्थ' है उसका केन्द्र 'वियोगिनी पत्नी की अपने पति से मिलने की तीव्र इच्छा' है । संभाव्यता के बल पर यह 'वियोगिनी पत्नी की अपने पति से मिलने की तीव्र इच्छा' किसी भी स्थल की, किसी भी काल की और किसी भी वियोगिनी पत्नी की तीव्र इच्छा हो सकती है । ऐसा होने से इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' 'विश्वात्मक अर्थ' हुआ है ।

इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' बिम्बात्मकता के कारण 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । कवि की कल्पना ने इस पद मे 'त्रिविध कलार्थ' को 'दृश्यबिम्ब' बना दिया है । पूरे पद मे विरहव्याकुल पत्नी का कल्पनाचित्र 'दृश्य बिम्ब' ही है । विरह व्याकुल पत्नी से मिलने के लिए न आने वाले पति का भी कल्पनाचित्र 'दृश्य बिम्ब' ही है । इस प्रकार यहाँ 'कलार्थ' अपने आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस पद में बिम्बात्मकता 'दृश्यमान रूपात्मकता' बनकर रह गयी है । इस लिए यहाँ 'कलार्थ' अपने आप 'रूपात्मक अर्थ' बन गया । इस वाक्य-संयोग रूपी पद मे अभिव्यक्त 'कलार्थ' और अभिव्यक्ति (वाक्य-संयोग/काव्यकृति/ वाक्यात्मक कलाकृति) मे एकरूपता की स्थापना हुई है । इसीलिए इस पद मे से किसी शब्द (पद) को हटाया नही जा सकता । एकरूपता की विशेषता के कारण इस पद में 'कलार्थ' का संक्रमण 'एकरूप अर्थ' मे हुआ है ।

इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी मौलिकता (नवीनता) के कारण 'मौलिक (नवीन) अर्थ' बन गया है । क्योंकि उसके मूल में कवि कबीर का भाव, उनका विचार तथा उनकी कल्पना तीनों समन्वित रूप से सक्रिय रहे हैं ।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित सघनता के कारण 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । शृंखलित सघनता के कारण इस पद मे संभाव्य अर्थों के निकलते रहने की कलात्मक स्थिति बनी हुई है । पति पत्नी से मिलने के लिए घर नहीं आ रहा है, इसलिए पत्नी को अपने पति से सबोधित करते हुए अपनी विरहपीडित दुरावस्था का निवेदन करना पड रहा है और उसे मिलने के लिए अपने घर बुलाना पड़ रहा है । मिलने के लिए पति आएगा ऐसा सोचकर पत्नी उसके आगमन की प्रतीक्षा मे रहती है । परिणामस्वरूप पत्नी देह से थक जाती है और उसकी देह में दर्द होने लगता है । वह घर से बाहर निकले, तो लोगों के ताने सुनने पडते हैं । लोग कहते रहते है कि मै तुम्हारी पत्नी हूँ । और तुम हो कि एक बार भी हमारे घर आकर हमारे दिल से दिल नही लगा रहे हो, जब तक तुम मेरे दिल से दिल नही लगाओगे, तब तक अपना प्यार लोगों की नजर मे शंकाजनक होगा । लोगों के तानों से और अपनी विरहपीड़ा से छुटकारा तभी मिलेगा जब तुम मिलने को मेरे घर आओगे। अन्यथा मेरा जीना सम्भव नहीं है । इस

प्रकार श्रृंखलित सघनता के कारण इस पद में कई संभाव्य अर्थ निकल सकते हैं । यहाँ यह भी विचारणीय है कि स्वयं कबीर पुरुष है, फिर वे अपने को पत्नी (नारी) क्यों कह रहे है ? सोचने पर अर्थबोध होता है कि भक्ति के क्षेत्र मे पुरुष भक्त भी अपने को अपने आराध्यदेव (ईश्वर) की पत्नी समझता रहता है और समर्पण-भाव से युक्त दाम्पत्य-प्रेम को स्वीकार कर लेता है । इसीलिए भक्त कवि कबीर ने अपने को पत्नी माना है और ईश्वर को अपना पति माना है ।

प्रस्तुत पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी प्रभावात्मकता के कारण 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है । तभी तो यह पद ऐसा आस्वाद्य बन गया है कि किसी भी स्थल का और किसी भी काल का कोई भी सहृदय इस पद का आस्वादन कर सकता है।

उपर्युक्त सभी विशेषताओं के बल पर इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' असाधारण विशेष, चित्ताकर्षक, ललित तथा रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत पद में व्याप्त' रमणीय सौन्दर्य है ।

प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' अपने स्वाभाविक रूप में 'आनन्दप्रद' है। इस पद (कलाकृति) का आस्वादन करने वाले सहृदय को अवश्य 'कलानन्द' मिलता है और वही कलानन्द इस पद का 'कलामूल्यात्मक अर्थ' है । इस पद में 'कलामूल्यात्मक अर्थ' अपने आप 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' भी बन गया है । क्योंकि इस पद में अपने पति के प्रति पत्नी की जो एकनिष्ठता व्यक्त हुई है, वह दम्पत्ती-जीवन का आनन्ददायक मूल आधार होती है । तभी तो पत्नी उसी पति के आगमन की प्रतीक्षा में विरह व्याकुल बनी रहती है ।

प्रस्तुत पद रूपी 'काव्यकृति' की वाक्य-विशिष्टता में जो तीव्र भावाभिव्यक्ति हुई है, उससे प्रस्तुत पद लयबद्ध अर्थात् नादसौन्दर्य से युक्त हुआ है । इस दृष्टि से पद की पहली पंक्ति में 'बालम' शब्द (पद) का प्रयोग; दूसरी पंक्ति में 'तुम्हारे बिन' पदबंध के बदले 'तुम बिन' पदबंध और 'दुःखी' पद के बदले' दुखिया 'पद का प्रयोग; पहली पंक्ति के अंत मे 'गेह रे' और दूसरी पंक्ति के अंत में 'देह रे' का प्रयोग; तीसरी पंक्ति मे 'क र, ल' की आवृत्ति; 'मुझको' पद के बदले 'मोको' पद का प्रयोग; अंत मे 'रे' का प्रयोग; चौथी पंक्ति में 'ल' की आवृत्ति; 'स्नेह' पद के बदले 'सनेह' पद का तथा अंत में 'रे' का प्रयोग; पाँचवीं पंक्ति मे 'न, आवै, ध' की आवृत्ति तथा अंत में 'रे' का प्रयोग , छठी पंक्ति के अंत में 'रे' का प्रयोग, सातवीं पंक्ति में 'प' की आवृत्ति; 'प्रिय' शब्द के बदले 'पिव' शब्द का प्रयोग और अन्त में 'रे' का प्रयोग; आठवी पंक्ति में 'ब, ज' की आवृत्ति तथा अंत में 'रे' का प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है । इससे प्रस्तुत पद में 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बहुत रमणीय बनाने वाला 'नादसौन्दर्य' भी व्याप्त हुआ है ।

इस प्रकार भक्त कवि कबीर का यह 'पद' कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होने के कारण सदा के लिए आस्वाद्य बन गया है ।

(३) खीझत जात माखन खात ।
अरून लोचन, भौंह टेढी, बार-बार जँभात ।
कबहुँ रूनझुन चलत घुटुरूनि, धूरि धूसर गात ।

कबहुँ झुकि कै अलक खैंचत, नैन जल भरि जात ।
कबहुँ तोतरे बोल बोलत, कबहुँ बोलत तात ।
सूर हरि की निरखि सोभा, निमिष तजत न मात ।।

-भक्त कवि सूरदास

भक्त कवि सूरदास का यह पद 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । प्रस्तुत 'पद' रूपी काव्यकृति की रचना लगभग १२ सरल वाक्यों के संयोग से हुई है । इस वाक्यात्मक रचना में प्रयुक्त १२ सरल वाक्य इस प्रकार हैं -

(बालक कृष्ण बार बार) खीझ जाता (है), मक्खन खाता (है) ; (उसके) नेत्र अरुणित (है); (उसकी) - भौहें टेढ़ी (हैं) ; (वह) बार बार जम्हाई लेता (है); (वह) कभी घुटनों के बल रूनुझुनु (की आवाज करते हुए) चलता (है); (उसकी) देह धूल (से) भूरे रंग की (बनी रहती है); कभी (वह) झुककर (चेहरे पर आए हुए सिर के बालों को अलग करने के लिए) बालों को खींचता (है) ; (उसके) नेत्र जल (से) भर जाते (हैं); कभी (वह) तोतले बोल बोलता (है), कभी (वह पिता 'नंद' को) 'तात{ बोलता (है) (और बालक) कृष्ण की (इस प्रकार की) शोभा निरखते (हुए) माता (यशोदा, बालक, कृष्ण को) 'क्षण' (भर भी) (अपने से) अलग नहीं करती ।

इन १२ वाक्यों के संयोग के रूप में प्रस्तुत 'पद' (काव्यकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) **'भावात्मक अर्थ :-** बालक कृष्ण की बाल-सुलभ लीलाएँ शोभा (सौन्दर्य) बनकर माता यशोदा की ममता को इस तरह जगाती है कि माता यशोदा हर्षित होकर बालक कृष्ण को पल भर के लिए भी अपनी आँखों से ओझल नहीं करना चाहती ।

(आ) विचारात्मक अर्थ : - ममता को लेकर अपने बालक कृष्ण को सदैव अपने निकट रखने की माता यशोदा की इच्छा महत्वपूर्ण है ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- संपूर्ण पद सूरदास रूपी वक्ता का विशेष कथन है । पद की अंतिम पंक्ति मे स्वयं 'सूरदास' ने वक्ता के रूप में अपना उल्लेख किया है । कवि सूरदास ने पद की प्रत्येक पंक्ति में वर्णनात्मक कथन के रूप मे वाक्य/वाक्यों का प्रयोग किया है । प्रत्येक वाक्य रमणीय कल्पनाचित्र के रूप में बालक कृष्ण के सौन्दर्य का बोधक बन गया है । बालक कृष्ण के सौन्दर्य से माता यशोदा का प्रभावित होना महत्वपूर्ण है ।

इस प्रकार प्रस्तुत पद में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'त्रिविध कलार्थ' यानी 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' ही है ।

प्रस्तुत पद में व्याप्त कलार्थ का केन्द्र माता की ऐसी ममता है, जिसके फलस्वरूप माता यशोदा अपने बालक कृष्ण को सदैव अपने पास रखना चाहती है। संभाव्यता के बल पर माता यशोदा की ममता किसी भी स्थल की, किसी भी काल की और किसी भी माता की ममता हो सकती है । अपने बालक की बाल सुलभ लीलाओं को देखकर किसी भी माता की ममता का जगना स्वाभाविक ही है । इसलिए प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप

'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

कवि की कल्पना ने इस पद मे 'क्रियाशील दृश्य बिम्ब' के रूप मे 'कलार्थ' को 'बिम्बात्मक अर्थ' बना दिया है । क्रियाशील दृश्य बिम्ब के रूप मे बालक कृष्ण का चिढते रहना, मक्खन खाते रहना, बार बार जम्हाई लेते रहना, घुटनों के बल रुनुझुनु आवाज करते हुए चलते रहना, धूल के कारण शरीर का भूरे रंग का बने रहना, झुककर बालो को खींचते रहना ,नयनो का सजल बने रहना, तोतले बोल बोलते रहना और पिता को 'तात कहते रहना महत्पपूर्ण है । इस दृष्टि से माता यशोदा का भी बालक कृष्ण की शोभा को निरखते रहना और उसको पलभर के लिए भी अपने से अलग न करना महत्वपूर्ण है । यहाँ रूनुझुनू आवाज करते हुए चलने मे और तोतले बोल बोलने मे 'श्राव्य बिम्ब' भी है । इस प्रकार पूरे पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । यहाँ कृष्ण के नेत्रों का अरुण होना और भौंहों का टेढा होना भी महत्वपूर्ण है ।

इस पद में व्याप्त 'बिम्बात्मक अर्थ' अपनी 'साकार दृश्यात्मकता' तथा 'श्रव्यात्मकता (ध्वन्यात्मकता) के बल पर 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है । संपूर्ण पद में ऐसी रूपात्मकता को महत्व मिला है, जिससे चलचित्र जैसा रूप धारण करके 'कलार्थ' को 'रूपात्मक अर्थ' बना दिया है ।

इस पद में अभिव्यक्त 'कलार्थ' और अभिव्यक्ति रूपी काव्यकृति (वाक्य-संयोग) में 'एकरूपता' की स्थापना हुई है । इसी 'एकरूपता' के कारण प्रस्तुत पद मे वाक्य-संयोग और पद-संयोग एक 'इकाई' बन गया है और उनमें व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'एकरूप अर्थ' बन गया है ।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' के मूल में कवि 'सूर' का भाव, उनका विचार तथा उनकी कल्पना तीनों समन्वित रूप से क्रियाशील रहे हैं, इसलिए 'कलार्थ' मौलिकता (नवीनता) के समवेत 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है ।

प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित सघनता के फलस्वरूप इस पद में संभाव्य अर्थों के निकलने को अनुकूल स्थिति बनी हुई है । तभी तो बालक कृष्ण का खीझना भी आकर्षक है उसका मक्खन खाना भी आकर्षक है; उसके नेत्रों का अरुणित होना भी आकर्षक है, उसकी भौहों का वक्र होना भी आकर्षक है, उसका घुटनों के बल चलना और रुनझुन की आवाज निकालना भी आकर्षक है; उसके अंग का धूल से धूसर होना भी आकर्षक है; उसके नेत्रो का सजल होना भी आकर्षक है; उसका तोतली बोली में बोलना भी आकर्षक है; उसका तोतली बोली मे पिता (नन्द) को 'तात' कहना भी आकर्षक है और माता यशोदा का बालक कृष्ण के सौन्दर्य को निहारना तथा पलभर भी कृष्ण को अपनी आँखों से ओझल न करना भी आकर्षक है। यहाँ बालक कृष्ण की नितान्त सरलता और उसके फलस्वरूप कृष्ण के प्रति माता यशोदा के हृदय में जगने वाली अपार ममता अत्यधिक आकर्षक है । इसी कारण से ही कवि 'सूर' ने बालक कृष्ण की आकर्षक लीलाओं को उसकी शोभा अर्थात् उसका सौन्दर्य माना है ।

आकर्षकता रूपी प्रभावात्मकता के कारण प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है । इससे प्रस्तुत पद किसी भी सहृदय के लिए आस्वाद्य बन गया है ।

उपर्युक्त सभी विशेषताओ के आधार पर प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' असाधारण

अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत पद मे व्याप्त रमणीय 'सौन्दर्य' है ।

इस पद में व्याप्त 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' आनन्दानुभूति कराने मे समर्थ होने के कारण वह अपने आप 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । इस पद में 'आनन्दप्रद अर्थ' यथार्थ मे 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । क्योंकि इससे 'कलानन्द' की अनुभूति हो जाती है । इस पद में जो 'कलामूल्यात्मक अर्थ' है वह 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । क्योंकि बालक की बाल-सुलभ लीलाएँ माता की ममता और माता के आनन्द का मूल आधार होती हैं । इस प्रकार की वास्तविकता एक प्रकार का शाश्वत मूल्य है ।

इस पद रूपी काव्यकृति में व्याप्त तीव्र भाव के कारण संपूर्ण पद मे विशिष्ट लयबद्धता, नादमधुरता, कोमलता, संगीतात्मकता तथा ध्वनि-सौन्दर्य को महत्वपूर्ण स्थान मिला है । इस दृष्टि से पद की प्रथम पंक्ति में 'ख' तथा 'त' की आवृत्ति, 'बार' पद की आवृत्ति, 'अरुण' पद के बदले 'अरुन' पद का प्रयोग; तृतीय पंक्ति में 'उ, न, र ध' की आवृत्ति 'कभी' पद के बदले' कबहुं, पद का प्रयोग, 'गात्र 'पद के बदले 'गात' पद का प्रयोग, चतुर्थ पंक्ति में 'क, ऐ, ज' की आवृत्ति, 'कभी' पद के बदले 'कबहुँ' पद का प्रयोग; पंचम पंक्ति में 'न, बोल, कबहुँ' की आवृत्ति, 'कभी' पद के बदले 'कबहुँ' पद का प्रयोग, षष्ठ पंक्ति में 'र, इ, त' की आवृत्ति, 'शोभा' पद के बदले 'सोभा' पद का प्रयोग और सभी पंक्तियों के वाक्यों में प्रयुक्त क्रिया-पदों के रूपों में 'अत' या 'आत' का प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है । तृतीय पंक्ति, चतुर्थ पंक्ति और पंचम पंक्ति में 'कबहुँ' पद की आवृत्ति बहुत नाद मधुर बन गयी है । इस प्रकार लयबद्ध नादसौन्दर्य ने प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को अधिकाधिक रमणीय बनाया है ।

स्पष्ट है कि भक्त कवि सूरदास का यह पद 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होने से सदैव आस्वादन करने योग्य बन गया है ।

(४) बिनु गोपाल बैरिनि भई कुजैं ।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं ।।
बृथा बहति जमुना खग बोलत बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजै ।
पवन पानि धनसार संजीवनि दधिसुत किरन भानु भई भुँजैं ।।
ए ऊधौ ! कहियो माधौ सों बिरह कदन करि मारत लुंजैं ।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भई बरन ज्यों गुंजैं ।।

-भक्त कवि सूरदास

भक्त कवि सूरदास का यह पद 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस पद (काव्यकृति) की रचना जिन १० वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार हैं -

कृष्ण के बिना कुंज शत्रु बन गये हैं । उस समय (कृष्ण के संयोग में) लताएँ अति शीतल (सुखद) लगती थीं । (लेकिन) अब (वे ही लताएँ कृष्ण के वियोग में) कष्टकर ज्वाल-पुंज बन गयी हैं । (अब) यमुना व्यर्थ (ही) बहती है; पक्षी (व्यर्थ ही) बोलते हैं; कमल व्यर्थ (ही) फूलते है, भ्रमर (भी व्यर्थ) गुंजार करते हैं । पवन, पानी, कपूर, संजीवनी, चन्द्र-किरण (ये सब) सूर्य बनकर (वियोगिनी गोपियों को) जला रहे हैं । ए उद्धव ! कृष्ण से

कहिए कि विरह-छुरी (हमे) मारकर लूला-लँगड़ा करती है । सूरदास (कहते हैं कि) कृष्ण की मार्ग-प्रतीक्षा में (विरहिणी गोपियों की) आँखें गुंजा जैसे (लाल) रंग की हुई हैं ।

इन १० वाक्यों के संयोग के रूप में प्रस्तुत 'पद' (काव्यकृति/कलाकृति) मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) **भावात्मक अर्थ :** - प्रिय कृष्ण के वियोग में गोकुल की विरहिणी गोपियाँ बहुत कष्ट का अनुभव कर रही हैं । विरह-पीड़ा से मुक्त होने के हेतु गोपियाँ प्रिय कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में हैं ।

(आ) **विचारात्मक अर्थ :**- विरह व्याकुल गोपियों का यह विचार महत्वपूर्ण है कि प्रिय कृष्ण गोकुल आ जाय और उन्हें विरह-व्यथा से छुटकारा मिल जाय ।

(इ) **कल्पनात्मक अर्थ :**- यहाँ विशेष वक्ता के रूप मे विरहिणी गोपियो की कल्पना की गयी है और विशेष श्रोता के रूप मे कृष्ण-सखा उद्धव की कल्पना की गयी है। इससे सम्पूर्ण पद उद्धव के प्रति गोपियों का विशेष निवेदन बन गया है । इस पद में महत्वपूर्ण कल्पना यह है कि संयोग के समय कृष्ण के सहवास में जो जो सुखकर रहा, वह सब वियोग के समय बहुत कष्टकर हुआ है । विरह के कारण होने वाले कष्ट से मुक्ति पाने के हेतु गोपियाँ कृष्ण के आगमन की इतनी प्रतीक्षा कर रही है कि थकान से उनकी आँखें लाल लाल हो गयी हैं ।

इस प्रकार प्रस्तुत पद मे भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' ही है ।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र विरहिणी गोपियों की अपने प्रियतम कृष्ण से मिलने की तीव्र इच्छा है । विरहिणी गोपियों को अपने प्रियतम कृष्ण से मिलने की तीव्र इच्छा वास्तव में किसी भी स्थल की, किसी भी काल की और किसी भी विरहिणी प्रियतमा की तीव्र इच्छा हो सकती है । इसलिए इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

कवि की कल्पना ने इस पद में विरहिणी गोपियों के निवेदन को 'दृश्य बिम्ब' तथा 'श्रव्य बिम्ब' बना दिया है । फलस्वरूप इस पद में 'कलार्थ' अपने आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । इस पद में दृश्य बिम्ब के रूप में कुंजों का शत्रु बनना; लताओं का ज्वाल-पुंज बनना ; यमुना का बहना; कमलों का फूलना, वायु, जल, कपूर, संजीवनी तथा चन्द्र-किरण का सूर्य बन जाना; विरह का छुरी बनना, इस छुरी की मार से विरहिणी गोपियों का अपंग होना और कृष्ण की प्रतीक्षा में गोपियों की आँखों का गुंजा समान लाल रंग का बनना महत्वपूर्ण है । साथ ही इस पद में श्रव्य-बिम्ब के रूप में पक्षियों का बोलना और भ्रमरों का गुंजार करना महत्वपूर्ण है । वैसे स्पर्श्य बिम्ब के रूप में लताओं का शीतल होना अथवा उष्ण ज्वाल-पुंज बन जाना भी महत्वपूर्ण है । इस प्रकार पूरे पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत पद में व्याप्त 'बिम्बात्मक अर्थ' अपनी 'साकार दृश्यात्मकता, श्रव्यात्मकता (ध्वन्यात्मकता) तथा स्पर्श्यात्मकता के बल पर 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है । इसका अर्थ

स्पष्ट है कि इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' यथार्थ में 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है । इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अभिव्यक्त है और पद-वाक्य-संयोग रूपी अभिव्यक्ति है । यहाँ 'कलार्थ' अपने आप 'एकरूप अर्थ' बन गया है । क्योंकि यहाँ अभिव्यक्त 'कलार्थ' और वाक्य-संयोग एवं पद-संयोग रूपी अभिव्यक्ति (काव्यकृति/कलाकृति) मे 'एकरूपता' की स्थापना हुई है।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समन्वयात्मकता के फलस्वरूप 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । यहाँ त्रिविध अर्थों की समन्वयात्मकता ही 'कलार्थ' की मौलिकता (नवीनता) है ।

प्रस्तुत पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित सघनता की विशेषता के बल पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । वाक्य-विशिष्टता के कारण इस पद में 'त्रिविध कलार्थ' को लेकर ऐसी श्रृंखलित सघनता है, जिससे यहाँ एक से अधिक संभाव्य अर्थ निकल सकते है । प्रियतम कृष्ण के सहवास में अर्थात् संयोग के दिनों में प्रेमिका गोपियों के लिए कुंज, लताएँ, यमुना का बहना, पक्षियों का बोलना, कमलों का फूलना, भ्रमरों का गुंजार करना, वायु, जल, कपूर, संजीवनी तथा चन्द्र-किरण का होना बहुत सुखकर रहा है । गोपियाँ कृष्ण की बहुत प्रिय प्रेमिकाएँ होने के कारण संयोग के काल में कुंज, लताएँ, बहने वाली यमुना, फूले हुए कमल, पवन, पानी, कपूर, संजीवनी, चन्द्र-किरण ये सब प्रकृति के अंग शीतलता प्रदान करके गोपियों को उल्लसित रखते थे । लेकिन कृष्ण के वियोग में विरहपीड़ित गोपियाँ प्रकृति के इन सुखकर अंगों को कष्टकर अंगों के रूप में अनुभव करने लगी है । तभी तो वे कृष्ण की याद दिलाकर कष्ट पहुँचाने वाले कुंजों को अहितकारी शत्रु मानती हैं, लताओं को दाहक ज्वाल-पुंज समझती है, यमुना के बहने को तथा कमलों के फूलने को व्यर्थ अनुभव करती हैं, वायु, जल, कपूर, संजीवनी एवं चन्द्र-किरण को भूननेवाला सूर्य समझती हैं । वास्तव में कृष्ण के विरह में व्यथित होने के कारण ही गोपियों को प्रकृति के सुखकर अंग भी कष्टकर लग रहे हैं । इसी कारण से ही गोपियों को पक्षियों का श्रुतिमधुर बोलना और भ्रमरों का नादमधुर गुंजार करना भी व्यर्थ लग रहा है । इसी कारण से ही विरहिणी गोपियों को अपनी दुःखद विरहदशा ऐसी छुरी लग रही है, जिसकी मार से वे असहाय हुई हैं । इसी असहायता से मुक्त होने की आशा को लेकर विरहिणी गोपियाँ कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करती है और प्रतीक्षा की थकान से अपनी आँखों को गुंजा के समान लाल लाल होने देती हैं। क्योंकि विरहिणी गोपियाँ जानती हैं कि उन्हें इस कष्ट से मुक्त करने वाला एक ही उपाय है और वह है, कृष्ण का गोकुल आना । स्पष्ट है कि प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

'श्रृंखलित सघन अर्थ' बने रहने के कारण 'कलार्थ' में ऐसी प्रभावात्मकता आ गयी है जिसके आधार पर 'कलार्थ' अपने आप 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है। इससे यह पद हमेशा के लिए 'आस्वाद्य' बन गया है ।

उपर्युक्त सभी विशेषताओं के बल पर प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत पद में व्याप्त रमणीय 'सौन्दर्य' है ।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' की स्थिति में अपने आप आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । तभी तो इस पद में व्याप्त कलार्थ 'कलानन्द' की अनुभूति

कराने मे समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' कलामूल्यात्मक अर्थ के रूप में 'जीवन मूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । क्योंकि विरहव्यथा से मुक्त होकर आनन्द का अनुभव करने की तीव्र इच्छा से विरहिणियों के द्वारा अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करते रहना, एक प्रकार का शाश्वत जीवन-मूल्य है ।

प्रस्तुत पद रूपी काव्यकृति में व्याप्त तीव्र भावाभिव्यक्ति के कारण विशेष लयबद्धता संगीतात्मकता, नादसौन्दर्य तथा कोमलता को महत्व का स्थान मिला है। इस दृष्टि से पद की पंक्तियों के अंत में क्रमानुसार 'कुंजै, पुंजैं, गुंजै, भुंजैं, लुंजैं, तथा 'गुंजैं' का प्रयोग उल्लेखनीय है । पहली पंक्ति में 'बिना' पद के बदले 'बिन' पद का प्रयोग, 'इ' की आवृत्ति; दूसरी पंक्ति में 'ल, त इ, ज' की आवृत्ति, 'शीतल' पद के बदले 'सीतल' पद का प्रयोग, तीसरी पंक्ति में 'ल' की आवृत्ति, 'बृथा' की आवृत्ति, 'व्यर्थ' पद के बदले 'बृथा' पद का प्रयोग; चौथी पंक्ति मे 'प, न, स, भ' की आवृत्ति; पांचवीं पंक्ति में 'ओ, क' की आवृत्ति; छठी पंक्ति में 'स, ज' की आवृत्ति, 'आँखें' पद के बदले 'अँखियाँ' पद का प्रयोग, 'वर्ण' पद के बदले 'बरन' पद का प्रयोग महत्वपूर्ण है । इस प्रकार लयबद्ध नादसौन्दर्य के कारण प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' बहुत सुन्दर अर्थात् रमणीय बन गया है ।

इस प्रकार भक्त कवि सूरदास का यह पद 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होने से सहृदयों के लिए आस्वाद्य बन गया है ।

(५) मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई ।
हौं तो साईंद्रोही, पै सेवक-हित साईं ।।
राम-सो बड़ो है कौन, मो-सो कौन छोटो ।
राम-सो खरो है कौन,, मो-सो कौन खोटो ।।
लोक कहैं, राम को गुलाम हौं कहावौ ।
एतो बड़ो अपराध भौ, न मन बावौं ।।
पाथ-माथे चढ़े तृन तुलसी ज्यों नीचो ।
बोरत न बारि ताहि जानि आपु-सींचो ।।

-सन्त तुलसीदास

सन्त कवि तुलसीदास का यह पद 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस पद (काव्यकृति) की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है वे वाक्य इस प्रकार हैं-

राम ने अपनी भलाई (की रक्षा के हेतु) मेरा भला किया (है) । (वैसे) मै तो स्वामी का अनहित करने वाला (हूँ) परन्तु (राम तो) सेवक का हित (करने वाले) स्वामी (है) । (वास्तव मे) राम से बड़ा कौन है ? मुझसे छोटा (भी) कौन है ? राम से खरा कौन है ? मुझसे खोटा (भी) कौन है ? लोग कहते है (कि) मैं (अपने आप को) राम का गुलाम कहलाता हूँ । (मुझसे) इतना बडा अपराध होने (पर भी मेरे बारे में राम ने अपना) मन कठोर नहीं (किया) । तुलसी ने (जाना है कि) जिस तरह जल के मस्तक पर क्षुद्र तृण (के) चढ़ें (रहने पर भी) जल उसे अपने द्वारा सींचा (हुआ) जानकर नहीं डुबाता, (उसी तरह राम भी सेवक तुलसी का अनिष्ट नहीं होने देते) ।

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी पद (काव्यकृति/कलाकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) **भावात्मक अर्थ** - आराध्यदेव राम के प्रति अपने अटूट भक्ति-भाव को ध्यान में रखकर ही तुलसीदास ने राम के द्वारा किए गये अपने कल्याण को अतिशय विनय के साथ स्वीकार किया है ।

(आ) **विचारात्मक अर्थ :** - आराध्यदेव राम में अटूट भक्ति-भाव रखने वाले तुलसीदास का यह विचार महत्वपूर्ण है कि सबसे बड़ा तथा खरा होने वाले से ही सबसे छोटा तथा खोटा अपने कल्याण की इच्छा कर सकता है ।

(इ) **कल्पनात्मक अर्थ :** - यहाँ विशेष वक्ता के रूप में स्वयं तुलसीदास की कल्पना की गयी है और विशेष श्रोता के रूप में आराध्य देव राम की कल्पना की गयी है। इस पद में अत्यंत महत्वपूर्ण कल्पना यह है कि जो मूल रूप में बड़ा होता है, वही छोटे का कल्याण करने मे समर्थ होता है । तभी तो आराध्यदेव राम ने भक्त तुलसीदास का भला किया है और तुलसीदास ने उसे स्वीकार भी किया है।

इस प्रकार प्रस्तुत पद में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस पद में 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' ही है।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र अपने को छोटा मानने वाले भक्त तुलसीदास के द्वारा समर्थ आराध्य देव राम से 'अपनी भलाई की इच्छा' करना है। वास्तव में भक्त तुलसीदास की यह इच्छा किसी भी स्थल के और किसी भी काल के किसी भी भक्त की इच्छा हो सकती है । क्योंकि किसी भी स्थल का और किसी भी काल का कोई भी भक्त अपने समर्थ आराध्यदेव से अपने हित की इच्छा कर सकता है । इसलिए इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' विशिष्ट रूप में 'बिम्बात्मक अर्थ' भी बन गया है। पूरे पद में एक ओर समर्थ आराध्यदेव के रूप मे राम का दृश्य बिम्ब उभरा है, तो दूसरी ओर अपने आराध्यदेव से अपनी भलाई की इच्छा करने वाले असहाय भक्त के रूप में तुलसीदास का दृश्य बिम्ब उभरा है । इस सन्दर्भ मे पानी पर तैरने वाले लघु तृण का भी दृश्य बिम्ब महत्व का है । फलस्वरूप इस पद में 'बिम्बात्मक अर्थ' के रूप में 'कलार्थ' व्याप्त है ।

प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी साकार दृश्यात्मकता के कारण 'रूपात्मक अर्थ' भी बन गया है । यहाँ अभिव्यक्त 'कलार्थ' और पद रूपी (वाक्य-संयोग रूपी) अभिव्यक्ति में 'एकरूपता' के बने रहने के कारण 'कलार्थ' अपने आप 'एकरूप अर्थ' बन गया है ।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के बल पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । साथ ही अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के बल पर इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । तभी तो यहाँ संभाव्य अर्थ निकल सकेगें ऐसी स्थिति है। भक्त तुलसीदास ने अपने आराध्य देव राम को सेवक का हित करने वाले सबसे बड़े तथा खरे स्वामी के रूप में स्वीकार किया है और अपने को स्वामी का अहित करने वाले सबसे छोटे तथा खोटे सेवक के रूप में स्वीकार किया है । तभी तो अपने बडप्पन की रक्षा के हेतु राम ने तुलसीदास का भला किया है । यदि राम अपने भक्त तुलसीदास का भला न करते तो वे 'तारनेवाला'

कहलाये नहीं जाते। इससे उनका बड़प्पन कलंकित हो जाता । ऐसा न हो इसलिए राम के 'स्वामी-द्रोही, छोटे तथा खोटे' तुलसीदास को उदारतापूर्वक भी उसी तरह तारना पड़ा है जिस तरह जल ने अपने माथे पर चढ़े हुए क्षुद्र तृण को यह जानकर तारा कि वह तो अपने द्वारा ही सींचा हुआ है ! यहाँ पर तुलसीदास का विश्वास यह है कि मुझे भी समर्थ राम ने ही पाला-पोसा है; अतएव मेरा भला करना उनका कर्तव्य ही है । भला, वे मेरी भलाई न करके अपनी भलाई को कैसे सुरक्षित रख पाते ? इस प्रकार प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसके परिणामस्वरूप प्रस्तुत पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी प्रभावात्मकता को लेकर 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

उपर्युक्त सभी विशेषताओं के बल पर प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ ही इस पद में व्याप्त 'सौन्दर्य' है ।

प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' सौन्दर्य के रूप में 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । इससे प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' ऐसा 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है, जो 'कलानन्द' की अनुभूति कराने में समर्थ है । यहाँ 'कलामूल्यात्मक अर्थ' के रूप में 'कलार्थ' अपने आप जीवनमूल्यात्मक अर्थ बन गया है । क्योंकि छोटों के द्वारा समर्थ बड़ों की ओर से अपने कल्याण की इच्छा करना एक प्रकार का शाश्वत मूल्य है ।

इस पद में जो तीव्र ावाभिव्यक्ति हुई है, उससे यह पद (काव्यकृति) लयबद्ध नादसौन्दर्य से युक्त हुआ है । ऱ्स दृष्टि से पहली और दूसरी पंक्ति के अंत में 'आई' की आवृत्ति; तीसरी तथा चौथी पंकि। के अंत में 'ओ ओ' की आवृत्ति, पाँचवी तथा छठी पक्ति के अंत में 'आवो' की आवृत्ति, सातवी और आठवीं पंक्ति के अंत मे 'ईचो' की आवृत्ति तीसरी तथा चौथी पंक्ति में 'राम-सो . . . . है कौन, मो-सो कौन . . 'इन पदों की आवृत्ति पहली पंक्ति में 'ओ, आ, ई, भल' की आवृत्ति; दूसरी पंक्ति में 'स' की आवृत्ति; पॉचवी पक्ति में 'क, म, औं' की आवृत्ति; छठी पंक्ति में 'ओ, न' की आवृत्ति; सातवीं पक्ति मे 'आथ, ए, ल, न' की आवृत्ति और आठवीं पंक्ति मे 'ब, र, त, आइ,' की आवृत्ति महत्वपूर्ण है । इस प्रकार लयबद्ध नादसौन्दर्य तथा कोमलता के कारण इस पद में व्याप्त 'कलार्थ अधिक सुन्दर यानी रमणीय बन गया है ।

स्पष्ट है कि सन्त कवि तुलसीदास का यह पद 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होने के कारण आस्वाद्य बन गया है ।

(६) म्हारो प्रणाम बाँकेबिहारी जी ।
मोर मुकुट माथे तिलक बिराजे, कुण्डल, अलकाँ कारी जी ।
अधर मधुर धर बंसी बजावै, रीझ रिझावै ब्रजनारी जी ।
या छबि देख्याँ मोह्या मीराँ, मोहन गिरवरधारी जी ।।

-भक्त कवयित्री मीराँबाई

मीरांबाई का यह पद 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस पद (काव्यकृति/कलाकृति) की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार हैं -

हे छैल छबीले कृष्ण, (आपको) हमारा प्रणाम (है) ! (आप तो) मोर (पखो का)

मुकुट (सिर पर धारण करने से), माथे पर तिलक (लगाने से), (कानों में) कुण्डल (पहनने से और सिर के) काले बालों से शोभित हुए हैं । (आप अपने) मधुर अधर पर धरी हुई बसी बजाते हुए (स्वयं भी) प्रसन्न हो रहे हैं (और) ब्रजनारियों (गोपियों) को भी प्रसन्न करा रहे है । (हे) मोहन ! (हे) गिरवरधारी ! (आपकी) यह सुन्दरता देखकर (मैं) मीरां मोहित हो रही हूँ ।

मीरांबाई का यह पद 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इसलिए उपर्युक्त वाक्यो के संयोग से रचित इस पद (काव्यकृति) मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ : - आराध्यदेव कृष्ण के प्रति अपने अटल प्रेम-भाव (भक्ति-भाव) को ध्यान मे रखकर ही मीरांबाई ने सौन्दर्य सम्पन्न कृष्ण को 'मोहन' के रूप मे स्वीकार किया है और लोकहितदक्ष कृष्ण को 'गिरवरधारी' (गिरधारी/गिरिधारी/गिरिधर/गिरधर) के रूप में स्वीकार किया है । इसलिए मीरांबाई का विश्वास यह है कि आराध्यदेव कृष्ण अवश्य अपना उद्धार कर देंगे ।

(आ) विचारात्मक अर्थ : मीरांबाई का यह विचार महत्वपूर्ण है कि कृष्ण का 'लोकरक्षक रूप' निश्चय ही उनके भक्तों को तारने वाला है; उन्हें संकट से छुटकारा दिलाने वाला है ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- यहाँ विशेष वक्ता के रूप मे स्वयं मीराबाई की कल्पना की गयी है और विशेष श्रोता के रूप मे आराध्यदेव कृष्ण की कल्पना की गयी है । इस पद में आराध्यदेव कृष्ण के प्रति मीरांबाई का जो कथन है उसमें मूलभूत कल्पना यह है कि जो कृष्ण एक ओर 'बाँकेबिहारी' या 'मोहन' बनकर रहते हैं, वे ही कृष्ण दूसरी ओर लोकरक्षा के लिए 'गिरिधारी' भी बनकर रह सकते हैं । तभी तो मीरांबाई ने अपने आराध्यदेव के रूप में कृष्ण को ही स्वीकार किया है ।

इस प्रकार प्रस्तुत पद में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविधात्मक समन्वित स्थिति में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' ही है ।

इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र भक्त के रूप मे मीरांबाई के द्वारा लोकरक्षक आराध्य देव कृष्ण से अपनी रक्षा की इच्छा करना है । मीरांबाई की अपनी रक्षा की इच्छा यथार्थ में किसी भी स्थल के और किसी भी काल के किसी भी भक्त की अपनी इच्छा हो सकती है । क्योकि किसी भी स्थल का और किसी भी काल का कोई भी भक्त अपने लोकरक्षक आराध्यदेव से अपनी रक्षा की इच्छा कर सकता है । इसलिए इस पद मे व्याप्त कलार्थ' आप ही आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' दृश्य बिम्ब के रूप मे 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । पद की दूसरी तथा तीसरी पंक्ति में दृश्य बिम्ब के रूप में (कुछ मात्रा में श्रव्य बिम्ब के रूप मे भी) कृष्ण का 'बाँकेबिहारीपन' अर्थात् 'छैलछबीलापन' उभरा है । सिर पर मोर पखो वाला मुकुट धारण करना, माथे पर तिलक लगाना, सिर पर काले बालो का होना और मुरली बजाते हुए स्वयं भी प्रसन्न होना और ब्रज.की गोपियो को भी प्रसन्न कराना, यह सब कृष्ण के मोहक बाँकेबिहारीपन अर्थात् छैलछबीलेपन की बिम्बात्मकता ही है । इससे प्रस्तुत

पद में 'कलार्थ' अपने आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' बिम्बात्मक रूपी दृश्यमानता के कारण अर्थात रूपात्मकता के कारण 'रूपात्मक (कुछ चलचित्रात्मक) अर्थ' बन गया है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' और पद (वाक्य-संयोग रूपी काव्यकृति) में ऐसी 'एकरूपता' स्थापित हुई है, जिससे 'कलार्थ' अपने आप 'एकरूप अर्थ' बन गया है ।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के बल पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । साथ ही अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के आधार पर इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'श्रृखलित सघन अर्थ' बन गया है । इस विशेषता का कारण यहाँ 'कलार्थ' से संबंधित संभाव्य अर्थ निकल सकेंगे ऐसी स्थिति है । यहाँ मीरांबाई ने बड़े कौशल से अपने आराध्यदेव कृष्ण का ध्यान उनके अपने लोकरक्षक रूप की ओर आकर्षित कर लिया है । मीरांबाई ने बड़ी चतुराई से पद के आरंभ में उस कृष्ण को प्रणाम किया है, जो सजधज़कर (बनाव-श्रृंगार कर/ठाटबाटकर) बाँकेबिहारी बन गये हैं और मुरली बजाते हुए स्वयं भी हर्षित हो रहे हैं और ब्रज की गोपियो को भी हर्षित करा रहे हैं । लेकिन मीरांबाई ने पद के अंत में आराध्य देव कृष्ण को 'गिरवरधारी' कहकर उन्हें उनके उस लोकरक्षक रूप की भी याद दिलायी है, जिससे कृष्ण ने श्रेष्ठ पर्वत को अपने दाहिने हाथ की उँगली पर उठाकर इन्द्रकोप रूपी भारी वर्षा से (अर्थात् बड़े संकट से) गोकुलवासियों की रक्षा की थी । इसका अर्थ यह हुआ कि भक्तो की रक्षा के लिए कृष्ण को केवल 'बाँकेबिहारी' या 'मोहन' बनकर रहना नहीं है, बल्कि उन्हे तो 'लोकरक्षक' अर्थात् 'गिरवरधारी' भी बनकर रहना है । इस प्रकार प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है। इसके फलस्वरूप प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी प्रभावात्मकता रूपी विशेषता के बल पर 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

उपर्युक्त सभी विशेषताओं के संयोग से प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे असाधारण अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत पद में व्याप्त 'सौन्दर्य' है ।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' सौन्दर्य के रूप में 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है। इससे यह पद 'कलानन्द' की अनुभूति कराने में समर्थ हुआ है । इसके परिणामस्वरूप इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । भक्त की ओर से अपने लोकरक्षक आराध्य देव के द्वारा अपनी रक्षा की इच्छा करना एक प्रकार का शाश्वत मूल्य है । इसी वास्तविकता के कारण इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' तीव्र भावाश्रित है इसलिए प्रस्तुत पद (काव्यकृति) लयबद्ध नादसौन्दर्य से युक्त हुआ है । इस दृष्टि से प्रस्तुत पद की प्रत्येक पक्ति के अंत मे 'आरी जी' की आवृत्ति, पहली पंक्ति में 'ब' की आवृत्ति, दूसरी पंक्ति में' म, ल, क' की आवृत्ति तीसरी पंक्ति में 'धर ब, रज्ञ, ज' की आवृत्ति तथा चौथी पंक्ति में 'म, र' की आवृत्ति महत्वपूर्ण है । इससे प्रस्तुत पद में ऐसा 'लयबद्ध नादसौन्दर्य' व्याप्त हुआ है, जिसके कारण

कलार्थ' अधिक रमणीय अर्थात् सुन्दर बन गया है । इस प्रकार मीरांबाई का यह पद' कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर आस्वाद्य बन गया है ।

(७) कर धरू करू मोहि पारे, देव मएँ अपरूब हारे, कन्हैया ।
सखि सभ तेजि चलि गैली,, न जानु कओन पथ भेली, कन्हैया ।
हम न जाएब तुअ पासे, जाएब औघट घाटे, कन्हैया ।
विद्यापति एहो भाने गूजरि भजु भगवाने, कन्हैया ।

-कवि विद्यापति

कवि विद्यापति का यह पद 'कलार्थरूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस पद (काव्यकृति/कलाकृति) की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है वे वाक्य इस प्रकार हैं-

हे कन्हैया, (मेरा) हाथ पकड़कर मुझे (नदी के इस पार से उस) पार कर दो । (और हॉ ! बदले में) मैं (तुम्हें) अपूर्व हार दूँगी । कन्हैया ! (मेरी) सारी सखियॉं (मुझसे पहले) तेजी से चली गयी है । न जाने (वे सखियॉ) किस मार्ग से तैर गयी हैं । (वैसे तो) कन्हैया ! मैं तुम्हारे पास नहीं जाती, (पर क्या करूँ, मुझे तो) औघट घाट जाना है । विद्यापति कहते हैं, हे अहीरिन (ग्वालिन) (तू इसी) बहाने भगवान कृष्ण की भक्ति कर ।

उपर्युक्त वाक्य-सयोग रूपी पद मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक सौन्दर्य : - गूजरी अर्थात् अहीरिन अर्थात् ग्वालिन राधा कृष्ण से ऐकांतिक प्रेम करती है । इसीलिए वह बड़ी चतुराई से कृष्ण को अपना प्रेम-भाव जता रही है और प्रेमी कृष्ण से एकान्तवास की इच्छा भी कर रही है ।

(आ) विचारात्मक अर्थ : - राधा का दृढ़ विचार यह है कि प्रेमी कृष्ण मुझ जैसी सुन्दर एवं यौवनसम्पन्न प्रेमिका की इच्छा कतई नही टालेंगे ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- यहाँ विशेष वक्ता के रूप में ग्वालिन राधा की कल्पना की गयी है और विशेष श्रोता के रूप में प्रेमी तथा आराध्य देव कृष्ण की कल्पना की गयी है । इस पद की आरंभ की तीन पंक्तियों मे प्रेमी तथा आराध्यदेव कृष्ण के प्रति ग्वालिन राधा का जो कथन है, उसके मूल में प्रेमिका राधा की यह कल्पना है कि सभी दृष्टियो से अनुकूल ऐसी इस स्थिति मे प्रेमी तथा नाविक कृष्ण मेरी बात मानेंगे ही और मुझे नाव मे बिठाकर नदी (यमुना) के उस पार एकान्त स्थल रूपी औघट घाट ले चलेंगे ।

इस प्रकार प्रस्तुत पद में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप मे व्याप्त है । इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविधात्मक समन्वित स्थिति में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' ही है ।

इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र ग्वालिन राधा के द्वारा प्रेमी तथा आराध्यदेव कृष्ण से 'एकान्तवास' की इच्छा करना है । वास्तव में यह 'एकान्त वास' की इच्छा किसी भी स्थल की और किसी भी काल की प्रेमिका की इच्छा हो सकती है । इसलिए इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस पद मे व्याप्त 'कलार्थ' दृश्य बिम्ब के रूप में 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है। पूरे पद में ग्वालिन राधा का बिम्ब प्रेमिका के रूप में उभरा है और कृष्ण का बिम्ब प्रेमी के रूप में उभरा है। इससे प्रस्तुत पद में 'कलार्थ' आप ही आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है।

प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' बिम्बात्मक रूपी दृश्यमानता के कारण अर्थात रूपात्मकता के कारण 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है। ग्वालिन राधा की सक्रिय रूपात्मकता में तो चलचित्रात्मकता आ गयी है।

इस पद में 'कलार्थ' आप ही आप 'एकरूप अर्थ' बन गया है। क्योंकि यहाँ अभिव्यक्त 'कलार्थ' और अभिव्यक्ति रूपी पद (वाक्य-सयोग रूपी काव्यकृति) में 'एकरूपता' की स्थापना हुई है।

प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के आधार पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है। साथ ही इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित्त सघनता' रूपी विशेषता के बल पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है। इस विशेषता के कारण यहाँ 'कलार्थ' से सबंधित कुछ संभाव्य अर्थ निकल सकते हैं। यहाँ ग्वालिन राधा ने पकड़कर उस पार ले जाने की बात करके प्रेमी तथा नाविक कृष्ण से स्पर्श सुख पाने की अभिलाषा की है। कृष्ण उसकी अभिलाषा पर ध्यान दे ही, इसलिए प्रेमिका राधा ने बदले मे कृष्ण को अपना एक अपूर्व हार देने की समझदारी की बात की है। साथ ही कृष्ण उसे स्पर्श सुख दें ही इसलिए वह कृष्ण को समझाती है कि मेरी सारी सखियाँ मुझे अली छोड़कर नदी के उस पार कहीं गयी हैं और मुझे तो (निर्जन) औघट घाट जाना है; अतः तुम मुझ अकेली को उस पार औघट घाट ले चलोगे तो एकांत में मिलने की हमारी अभिलाषा अपने आप निर्विघ्न पूरी हो जाएगी। अपनी प्यार की बात मे कृष्ण उलझ ही जायें, इसलिए राधा 'कृष्ण' को प्रेमातिरेक में 'कन्हैया' कहती रहती है। कृष्ण से मिलने में राधा का प्रेम-भाव भी सुरक्षित रह सकता है और समर्पण से युक्त भक्ति-भाव भी सुरक्षित रह सकता है। इस प्रकार प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' सहज ही 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है। इसके परिणामस्वरूप प्रभावात्मकता रूपी विशेषता से युक्त हुआ यहाँ का 'कलार्थ' आप ही आप' प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है।

उपर्युक्त सभी विशेषताओं से संपन्न होने से प्रस्तुत पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है। यह 'सौन्दर्यरूपी अर्थ' ही प्रस्तुत पद में व्याप्त 'सौन्दर्य' है, जो अपनी आनन्द प्रदान करने की क्षमता के आधार पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है। इस प्रकार की विशेषता के कारण यहाँ ''कलार्थ' की अनुभूति 'कलानन्द' के रूप मे हो सकती है, जो यथार्थ में 'कलामूल्यात्मक अर्थ' है। प्रेमिका के द्वारा अपने प्रेमी से एकान्तवास की इच्छा करना और उसके लिए बडी चतुराई से प्रयत्नशील रहना, एक प्रकार का शाश्वत मूल्य है। इसीलिए इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'जीवन मूल्यात्मक अर्थ' बन गया है।

इस पद में व्याप्त 'कलार्थ' का तीव्र भावाश्रित होना भी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसी विशेषता के कारण प्रस्तुत पद (काव्यकृति) लयबद्ध नादसौन्दर्य से युक्त हुआ है।

इस दृष्टि से प्रस्तुत पद की प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'कन्हैया' पद आवृत्ति; प्रथम पंक्ति में 'क, र, उ, ब' की आवृत्ति, 'मुझे, मैं, अपूर्व' पदों के स्थान पर अनुक्रमानुसार 'मोहि, मएँ, अपरूब' पदों का प्रयोग; द्वितीय पंक्ति में 'स, ल, न' की आवृत्ति, 'कौन' पद के बदले कऔन पद का प्रयोग, तृतीय पंक्ति में 'जाएब, घट' की आवृत्ति और चतुर्थ पंक्ति में 'इ, ज, भ' की आवृत्ति महत्वपूर्ण है । इससे प्रस्तुत पद में ऐसा 'लयबद्ध नादसौन्दर्य' व्याप्त हुआ है जिसके कारण 'कलार्थ' बहुत रमणीय अर्थात् सुन्दर बन गया है ।

इस प्रकार विद्यापति का प्रस्तुत पद 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होने से आस्वाद्य बन गया है ।

(८) इत तैं उत, उत तैं इतै, छिनु न कहूँ ठहराति ।
जक न परति, चकरी भई, फिरि आवति फिरि जाति ।।

-कवि बिहारी

कवि बिहारी का यह दोहा 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस दोहे (काव्यकृति) की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार हैं -

(उस प्रेमिका का) यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ (जाना-आना चलता ही रहता है)। (वह) क्षण (भर भी) कहीं नहीं ठहरती । (उसे) जक (ही) नहीं पड़ती। (वह तो) चकई हुई है । (तभी तो वह) फिर (इधर) आती है और फिर (उधर) जाती है ।

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी दोहे (काव्यकृति/कलाकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) 'भावात्मक अर्थ :- प्रेमिका अपने प्रेम-भाव में अपने प्रेमी के दर्शन के लिए बहुत उत्सुक है । फलस्वरूप प्रेमिका के व्यवहार में लक्षणीय चंचलता आ गयी है ।

(आ) विचारात्मक अर्थ :- अपने प्रेमी की प्रतीक्षा में चंचल बने रहने में प्रेमिका का यह विचार महत्वपूर्ण है कि अपनी ओर से प्रेम में कमी न आने पाय ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- यहाँ महत्वपूर्ण कल्पना यह है कि जो प्रेमिका अपने प्रेमी से एकांतिक प्रेम करती है, वही प्रेमी के दर्शन के लिए उतावली बनी रहती है ।

इस प्रकार प्रस्तुत दोहे में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' ही है ।

इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र अपने प्रेमी से एकांतिक प्रेम करने वाली प्रेमिका की प्रेमी के दर्शन करने की तीव्र इच्छा है । वास्तव में ऐसी इच्छा किसी भी स्थल की और किसी भी काल की किसी भी प्रेमिका की तीव्र इच्छा हो सकती है । इसी संभाव्यता रूपी विशेषता के कारण इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' दृश्य बिम्ब के रूप में 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । इस दोहे में जो 'क्रियाशील बिम्ब' है, उससे अपने प्रेमी के दर्शन के लिए उत्सुक प्रेमिका का दृश्य बिम्ब उभरा है । इसी बिम्बात्मकता रूपी विशेषता के कारण इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' बिम्बात्मक रूपी दृश्यमानता के कारण अर्थात् रूपात्मकता के कारण 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है । यहाँ प्रेमिका की रूपात्मकता मे चलचित्रात्मकता आ गयी है ।

इस दोहे में 'कलार्थ' अपनी एकरूपता रूपी विशेषता के बल पर 'एकरूप अर्थ' बन गया है । इसीलिए यहाँ अभिव्यक्त 'कलार्थ' और अभिव्यक्ति रूपी दोहा (वाक्य-संयोग रूपी काव्यकृति) इन दोनों में 'एकरूपता' है ।

प्रस्तुत दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के आधार पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । साथ ही इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के बल पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसी विशेषता के कारण इस दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' से संबंधित कुछ संभाव्य अर्थ निकल सकते हैं । यहाँ प्रेमी के दर्शन के लिए (और हो सके तो मिलने के लिए) उत्सुक प्रेमिका का 'चकई' के समान इधर से उधर और उधर से इधर जाते-आते रहना विशेष है । डोरी से फिरायी गयी (घुमायी गयी) चकई उतनी देर तक फिरती (घूमती) रहती है, जितनी देर तक उसमें गति बनी रहती है । ठीक उसी तरह यह प्रेमिका भी अपने में प्रेम-भाव की गति जब तक बनी रहेगी, तब तक वह प्रेमी के दर्शन के लिए फिरती (घूमती) रहने वाली है । इसीलिए वह प्रेमिका क्षणभर भी कहीं नहीं ठहरती । वह अपने प्रेम-भाव को क्षण भर भी टूटने नहीं देना चाहती । इस प्रकार प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसके फलस्वरूप प्रभावात्मकता रूपी विशेषता से युक्त हुआ यहाँ का 'कलार्थ' अपने आप 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

उपर्युक्त सभी विशेषताओं से युक्त होने से प्रस्तुत पद में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत पद में व्याप्त 'सौन्दर्य' है । यह 'सौन्दर्य ही अपनी आनन्दप्रदान करने की विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । यह 'आनन्दप्रद अर्थ' ही इस दोहे के रूप में 'कलानन्द' की अनुभूति कराने में समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । अपने अतीव प्रेम-भाव को लेकर अपने प्रेमी के दर्शन के लिए प्रेमिका का उत्सुकतापूर्वक सक्रिय रहना एक प्रकार का शाश्वत मूल्य है । इसी कारण से प्रस्तुत पद मे व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' तीव्र भावाभिव्यक्ति के कारण लयबद्ध नाद सौन्दर्य से युक्त होकर अधिक रमणीय बन गया है । इस दृष्टि से इस दोहे की प्रत्येक पंक्ति के अंत में 'आति' की आवृत्ति; पहली पंक्ति में इत, तै, उत, न, ह' की आवृत्ति, दूसरी पंक्ति में 'इ, ई, र, फ, त' की आवृत्ति महत्वपूर्ण है ।

स्पष्ट है कि बिहारी का प्रस्तुत दोहा 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होने के कारण आस्वादनीय बन गया है ।

(९) रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरे, मोती मानुस चून ।। -कवि रहीम

कवि रहीम का यह दोहा 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस दोहे (काव्यकृति) की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार है -

रहीम कह रहे हैं कि (आप) पानी की रक्षा कीजिए, (क्योंकि) पानी के बिना सब शून्य है । (यदि) मोती, मनुष्य और चूना पानी रहित हो गये, (तो) उनका उद्धार नहीं होगा।

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी दोहे (काव्यकृति/कलाकृति) मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ : - मनुष्य को अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करनी ही चाहिए। तभी समाज के भीतर मनुष्य का आदर होता रहेगा । अतः अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने की इच्छा रखना, महत्वपूर्ण है ।

(आ) विचारात्मक अर्थ :- यहाँ यह विचार महत्वपूर्ण है कि मनुष्य का जीवन प्रतिष्ठा (मान-मर्यादा) के साथ ही सार्थक बन सकता है । नहीं तो मनुष्य का जीवन व्यर्थ (आदरहीन) बन जाएगा ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- यहाँ विशेष वक्ता के रूप में स्वयं कवि रहीम श्रोता रूपी लोगों को अपने जीवन में प्रतिष्ठा को बनाए रखने का महत्व समझा रहे हैं । इसके लिए कवि रहीम ने अपनी बात का महत्व स्पष्ट करने के उद्देश्य से यहाँ पानी (चमक) सहित मोती और पानी (जल) सहित चूने की भी प्रतिष्ठा की कल्पना की है ।

इस प्रकार प्रस्तुत दोहे में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वभाव से आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' है ।

इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने की इच्छा है। वास्तव में यह इच्छा किसी भी स्थल के और किसी भी काल के मनुष्य की इच्छा हो सकती है । इसी संभाव्यता रूपी विशेषता के कारण इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' दृश्य बिम्ब के रूप में 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । इस दोहे में मनुष्य, मोती और चूने के दोहरे दृश्य बिम्ब उभरे हैं । मनुष्य का एक बिम्ब प्रतिष्ठा रहित है, तो दूसरा बिम्ब प्रतिष्ठा सहित है । मोती का एक बिम्ब चमक रहित है, तो दूसरा बिम्ब चमकसहित है । चूने का एक बिम्ब जलरहित (सूखा) है, तो दूसरा बिम्ब जलसहित (गीला) है । इस प्रकार की बिम्बात्मक रूपी विशेषता के बल पर यहाँ का 'कलार्थ' सहज ही 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' बिम्बात्मक रूपी दृश्यमानता अर्थात् रूपात्मकता के कारण 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है और 'कलार्थ' तथा दोहे (वाक्य संयोग रूपी काव्यकृति) मे एकरूपात्मकता होने के कारण 'कलार्थ' आप ही आप 'एकरूप अर्थ' भी बन गया है ।

प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के बल पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । साथ ही इस दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के बल पर 'श्रृखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसी विशेषता के कारण इस दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' से संबंधित कुछ संभाव्य अर्थ निकल सकते है। जीवन में मनुष्य प्रतिष्ठाके बिन निरादरणीय (व्यर्थ) बना रहता है । मोती भी चमक के बिना

अलकार के रूप मे आदर करने लायक नहीं रहता । चूना भी जलरहित अर्थात् सूखा होकर पान के साथ खाने के लायक नहीं रहता । इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिष्ठारहित मनुष्य चमकरहित मोती और जलरहित चूना तीनों व्यर्थ बने रहते हैं । ऐसी स्थिति मे फिर से प्रतिष्ठावान बनना मनुष्य के लिए कठिन है ; फिर से चमकदार बनना मोती के लिए कठिन है और फिर से गीला होना चूने के लिए कठिन है । जीवन में ऐसी अनादरणीय स्थिति ही न आ जाय, इसलिए मनुष्य को अपनी प्रतिष्ठा को उसी तरह महत्वपूर्ण बनाकर रखना चाहिए जिस तरह मोती में चमक को और चूने में जल को। यहाँ 'पानी' शब्द (पद) का प्रयोग 'मनुष्य मोती और चूना' के सन्दर्भ में हुआ है ! इसीलिए 'पानी शब्द के तीन अर्थों मे से 'प्रतिष्ठा' अर्थ को मनुष्य के साथ जोड़ना उचित है; 'चमक' अर्थ को मोती के साथ जोड़ना उचित है और 'जल' अर्थ को चूने के साथ जोड़ना उचित है । इस प्रकार प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ अपने आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

इस दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' में श्रृंखलित सघनता के कारण प्रभावात्मकता रूपी विशेषता आ गयी है, जिससे 'कलार्थ' आप ही आप 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत दोहे में व्याप्त 'कलार्थ' उपर्युक्त सभी विशेषताओं से संपन्न होने के कारण असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत दोहे मे व्याप्त 'सौन्दर्य' है । यह सौन्दर्य' ही अपनी आनन्दप्रदान करने की विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । यह 'आनन्दप्रद अर्थ' ही इस दोहे के रूप मे 'कलानन्द' की अनुभूति कराने में समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । मनुष्य की अपने जीवन में अपनी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने की इच्छा एक प्रकार का शाश्वत मूल्य है । इसी कारण से इस दोहे मे व्याप्त कलार्थ' अर्थात् 'कलामूल्यात्मक अर्थ' अपने आप 'जीवन-मूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस दोहे मे व्याप्त 'कलार्थ' विशेष भावाभिव्यक्ति के कारण लयबद्ध नाद सौन्दर्य से युक्त होकर अधिक रमणीय बन गया है । इस दृष्टि से इस दोहे की प्रत्येक पंक्ति के अत मे ऊन' की आवृत्ति; दोनो पंक्तियो में 'पानी' शब्द (पद) की आवृत्ति, 'र, इ, न, ब, स' की प्रथम पंक्ति में आवृत्ति और 'न, ए, म' की द्वितीय पंक्ति में आवृत्ति महत्त्वपूर्ण है ।

इस प्रकार रहीम का प्रस्तुत दोहा 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर आस्वाद्य बन गया है ।

(१०) विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !
वेदना में जन्म करूणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात ,
जीवन विरह का जलजात !
आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल-कण से बन घन-सा क्षणिक मृदुगात,
जीवन विरह का जलजात !
अश्रु-से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास,
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात

जीवन विरह का जलजात !

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार,

पूछता इसकी कथा निश्वास ही मे वात ,

जीवन विरह का जलजात !

जो तुम्हारा हो सके लीला-कमल यह आज,

खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात;

जीवन विरह का जलजात !

-महादेवी वर्मा (जीवन विरह का जलजात)

कवयित्री महादेवी वर्मा की यह कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस कविता (कलाकृति) की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार हैं -

(तुम्हारे वियोग के फलस्वरूप प्राप्त यह) जीवन, विरह का कमल (लगता है)। (इस विरह रूपी कमल को) वेदना में जन्म (और) करूणा में निवास-स्थान मिला है । इसका दिन अश्रु चुनता (रहता) है (और इसकी) रात अश्रु गिनती (रहती) है !

(इस कमल का) उर आँसुओं का भंडार (है और उसके) नेत्र अश्रु की टकसाल (है), (इस कमल का) मृदु अंग तरल जल-कण से बने क्षणिक मेघ के समान (है) ।

यहाँ मधुमास (भी) अश्रु के समान मधुकण लुटाता आता (है और) बरसात (भी) अश्रु की ही करुण हाट बन आती (है) ।

काल (तो) इसको पल रूपी आँसुओं का हार दे गया (है) वात इसकी कथा निश्वास में ही पूछता (है)

जो आज तुम्हारा हो सके (ऐसा) यह लीला-कमल तुम्हारी अनुपम स्मित का प्रात देख (कर) खिल उठे !

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी कविता (कलाकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ : - पूरी कविता में जीवन को विरह-वेदना के रूप मे स्वीकार किया गया है । फलस्वरूप मनुष्य का जीवन दु:खमय बन गया है ।

(आ) विचारात्मक अर्थ :- इस कविता मे महत्वपूर्ण विचार यह है कि यह जीवन उस अदृश्य तथा अनंत परमेश्वर की एक विलक्षण देन है ! अत: इस जीवन की सार्थकता परमेश्वर के प्रति समर्पित होने मे ही है ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- यहाँ विशेष वक्ता के रूप में स्वयं कवयित्री है, तो विशेष श्रोता के रूप में अदृश्य, अनंत तथा विश्वव्यापी परमेश्वर है । परमेश्वर अर्थात् परमात्मा के प्रति स्वयं कवयित्री का जो निवेदन है उसमें यह कल्पना की गयी है कि परमात्मा से अलग होने के परिणाम के रूप में ही जीवात्मा को जीवन प्राप्त हुआ रहता है । परमात्मा के वियोग मे जीवात्मा का जीवन वेदनामय, करूणामय तथा दु:खमय बना रहता है । वेदना, करूणा तथा दु:ख के साथ अश्रु का शाश्वत सम्बन्ध बना रहता है । परिणामस्वरूप जीवात्मा का जीवन विरह का ऐसा जलजात (कमल) बना रहता है जो परमात्मा के प्रति

समर्पित होकर ही सार्थक बन सकता है । इसी कारण से ही प्रातःकाल में परमात्मा रूपी सूर्य के दर्शन से जीवात्मा के जीवन का कमल खिल उठता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत कविता में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र परमात्मा से समर्पण-भाव के साथ मिलने की जीवात्मा की तीव्र इच्छा है । यह इच्छा किसी भी स्थान के और किसी भी काल के किसी भी जीवात्मा की इच्छा हो सकती है । इसी संभाव्यता रूपी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' दृश्य बिम्ब के रूप में 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । यहाँ विरह रूपी 'जलजात' में और अश्रु रूपी जल में दृश्य बिम्बात्मकता है । इसी बिम्बात्मकता रूपी विशेषता के बल पर यहाँ 'कलार्थ' 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' में दृश्य बिम्बात्मकता के कारण अपने आप रूपात्मकता की विशेषता का समावेश हुआ है । फलस्वरूप यहाँ 'कलार्थ' आप ही आप 'रूपात्मक अर्थ बन गया है ।

इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के बल पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के बल पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसी विशेषता के कारण इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' से संबंधित कुछ सभाव्य अर्थ निकल सकते हैं । मनुष्य का जीवन वेदनामय, करूणामय तथा दुःखमय ही बना रहता है । शायद यह जीवात्मा का परमात्मा से अलग होने का फल है । इसीलिए परमात्मा से मिलन होने तक जीवात्मा का जीवन 'विरह का जीवन' बना रहता है । जिस प्रकार अपने जीवन के आधार के रूप में जल के साथ कमल का अटूट सम्बन्ध बना रहता है, ठीक उसी तरह अपने जीवन के आधार के रूप में ही अश्रु के साथ जीवात्मा का भी अटूट सम्बन्ध बना रहता है । इसी विशेषता के कारण ही यहाँ जीवात्मा के जीवन को 'विरह का जलजात' माना गया है । जीवात्मा के जीवन रूपी कमल का हर पल, हर दिन, हर रात, हर मधुमास (वसंत ऋतुवाला चैत महीना) तथा हर बरसात अश्रुमय ही है । फल स्वरूप इस जीवन रूपी कमल का हृदय आँसुओं का भंडार बन गया है और इसके नेत्र ऑसुओं की टकसाल बन गये हैं । इसका अर्थ यह है कि हृदय के ऑसुओं का नेत्रो के माध्यम से लगातार बाहर निकलना रूकता ही नहीं। ऐसी स्थिति में इस कमल का मृदु अग तरल जल-कणों से बने हुए क्षणिक (क्षणभगुर) मेघ के समान बना रहता है । इस प्रकार का कमल तभी खिल उठ सकता है, जब उसे परमात्मा की स्मित रूपी प्रात के दर्शन हो सकते हैं । ऐसा होने पर यह जीवन रूपी विरह का जलजात परमात्मा का 'लीला-कमल बन सकता है। ऐसा होने में ही इसकी सार्थकता है । अर्थात् परमात्मा से मिलने मे ही जीवात्मा का जीवन सार्थक हो सकता है और उसे विरह-वेदना से अर्थात् दुःख से मुक्ति मिल सकती है । इस प्रकार प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' में श्रृंखलित सघनता के कारण प्रभावात्मकता रूपी विशेषता आ गयी है, जिससे 'कलार्थ' अपने आप' प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' उपर्युक्त सभी विशेषताओं से संपन्न होने के कारण असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'सौन्दर्य' है । यह 'सौन्दर्य' ही अपनी आनन्द प्रदान करने की विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ रूपी आनन्दप्रद अर्थ' ही इस कविता के रूप मे 'कलानन्द' की अनुभूति कराने में समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

मनुष्य सदैव अनुभव करता है कि अपना जीवन दुःख रूपी अश्रुओं से ही भरा हुआ है । ऐसी स्थिति में मनुष्य की तीव्र इच्छा यह बनी रहती है कि उसका जीवन सुखमय तथा आनन्दमय हो । अपनी इस प्रकार की तीव्र इच्छा को लेकर मनुष्य एक जीवात्मा के रूप मे अदृश्य, अनंत, आनन्दमय तथा विश्वव्यापी परमात्मा से मिलने के लिए सदैव उत्सुक बना रहता है । इस प्रकार के शाश्वत मूल्य से युक्त होने के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ रूपी कलामूल्यात्मक अर्थ' आप ही आप 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' वेदनामय भावाभिव्यक्ति के कारण लयबद्ध नाद सौन्दर्य से युक्त होकर अधिक रमणीय बन गया है । इस दृष्टि से प्रस्तुत कविता में 'जीवन विरह का जलजात' पदबंध की पॉच बार आवृत्ति, प्रथम पंक्ति में 'विरह का जलजात' पदबंध तथा 'ज' की आवृत्ति; दूसरी पंक्ति में 'आ, म' की आवृत्ति, तीसरी पंक्ति में 'अश्रु, उ, इ, स, त' की आवृत्ति; पाँचवीं पंक्ति में 'उ, क, की आवृत्ति , छठी पंक्ति में 'ल, ए' की आवृत्ति; आठवीं पंक्ति में 'उ, म, ध, आ' की आवृत्ति; नौवी पंक्ति मे 'क, ई' की आवृत्ति; आठवी पंक्ति में 'उ, म, ध, आ' की आवृत्ति ; नौवी पंक्ति मे 'क, ई' की आवृत्ति; ग्यारहवीं पंक्ति में 'क' की आवृत्ति; बारहवीं पंक्ति मे 'क, आ' की आवृत्ति; चौदहवीं पंक्ति में 'ओ, आ, ल' की आवृत्ति; पंद्रहवीं पंक्ति में 'इ, उ, ल' की आवृत्ति; तीसरी, छठी, नौवीं, बारहवीं और पंद्रहवीं पंक्तियों के अंत मे 'आत' की आवृत्ति और पूरी कविता में 'सुकोमल पदावली' का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है।

स्पष्ट है कि कवयित्री महादेवी वर्मा की प्रस्तुत कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर आस्वाद्य बन गयी है । इस कविता की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि संपूर्ण कविता कर्तृपूर्ति के रूप में 'विधेय-विशेषण' बन गयी है ।

इस कविता के रूप में जो 'कलार्थ' से युक्त वाक्य-संयोग हुआ है ; उसका मूल आधार एक ही वाक्य है, जो इस प्रकार है - 'जीवन विरह का जलजात है ।' यह कर्तृपूरक और अकर्मक वाक्य है । इस वाक्य में 'जीवन' यह पद प्रधान उद्देश्य रूपी 'कर्ता' है और इस वाक्य मे 'है' यह पद मूल विधेय रूपी क्रिया है । 'है' यह क्रियापद 'जीवन' इस कर्ता की विशेषता के विषय मे 'विरह का जलजात' इस कर्तृपूरकीय विधेय-विशेषण पदबंध के सहयोग से विधान कर रहा है । फलस्वरूप संपूर्ण कविता इसी 'जलजात' का वेदनामय तथा करूणामय स्वरूप स्पष्ट कर रही है और उसी बहाने मनुष्य के जीवन का भी वेदनामय तथा करूणामय स्वरूप स्पष्ट कर रही है।

(११) क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं !
अगणित उन्मादो के क्षण हैं,

अगणित अवसादो के क्षण हैं,
रजनी की सूनी घड़ियों को किन-किन से आबाद करूँ मैं !
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं !
याद सुखों की आँसू लाती,
दुख की, दिल भारी कर जाती,
दोष किसे दूँ जब अपने से अपने दिन बर्बाद करूँ मैं !
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं !
दोनो करके पछताता हूँ,
सोच नहीं, पर, मैं पाता हूँ,
सुधियों के बंधन से कैसे अपने को आज़ाद करूँ मैं !
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं !

-हरिवंशराय बच्चन ('निशा-निमंत्रण' से)

कवि 'बच्चन' की यह कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस कविता की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार हैं -

(मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि) मैं क्या भूलूँ (और) क्या याद करूँ ! (अपने जीवन में मैंने जिन्हें भोगा है ऐसे) उन्मादों के असंख्य क्षण हैं (और) अवसादों के भी असंख्य क्षण हैं । (ऐसी स्थिति में) मैं रात की इन सूनी (खाली) घड़ियों को किन-किन (क्षणों) से आबाद करूँ !

सुखों (के क्षणों) की याद (मेरी आँखो में) आँसू लाती है, तो दुख (के क्षणों) की याद (मेरा) दिल भारी कर जाती है । जब मैं अपने द्वारा (ही) अपने दिन बर्बाद करता (रहता) हूँ, तब (मैं और) किसे दोष दूँ !

(मैं तो भूलना और याद करना) दोनो (भी) करके पछताता हूँ । परंतु मैं (कुछ) सोच नहीं पाता हूँ । मैं (निर्णय नहीं कर सकता कि इन) सुधियों (यादों) के बन्धन से अपने को कैसे आज़ाद करूँ ?

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी कविता (कलाकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ :- रात की एकांत तथा खाली घडियों में अपने बीते हुए जीवन से संबंधित प्रेम के क्षणों तथा उदासी के क्षणों को भी याद करने से और फलस्वरूप व्याकुल होने से छुटकारा पाना कवि के लिए मुश्किल हो जाता है ।

(आ) विचारात्मक अर्थ :- कवि का यह विचार महत्वपूर्ण है कि भोगे हुए जीवन के मीठे या कटु क्षणों को भूलना भी कष्टकर होता है और याद करना भी कष्टकर होता है।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ : - यहाँ स्वयं कवि ने विशेष वक्ता के रूप में अपनी ही कल्पना की है और विशेष श्रोता के रूप में भी अपनी ही कल्पना की है । इसीलिए कवि अपने मन की पश्चातापग्रस्त तथा द्वन्द्वग्रस्त दशा का निवेदन अपने से ही कर रहा है । इस प्रकार यहाँ वक्ता भी कवि ही है और श्रोता भी कवि ही है। परिणामस्वरूप यहाँ वक्ता और श्रोता इन दोनो रूपों में स्वयं कवि ही बहुत व्याकुल है ।

इस प्रकार इस कविता में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' स्वभावतः आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र अपने ही हृदय को घायल कर देने वाली किसी भी प्रकार की यादों के बन्धन से अपने को मुक्त कराने की कवि की तीव्र इच्छा है। वास्तव में यह इच्छा किसी भी स्थल के और किसी भी काल के मनुष्य की इच्छा हो सकती है । इसी संभाव्यता रूपी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता मे अपने जीवन के दुःखद क्षणों को भूलने के प्रयत्न मे तथा सुखद क्षणो को याद करने के प्रयत्न में हृदय से घायल हुए तथा इसी कारण से पछताते हुए कवि का 'दृश्य बिम्ब' उभरा है । इस प्रकार की बिम्बात्मकता रूपी विशेषता के बल पर इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अभिव्यक्त है और पूरी कविता अपेक्षित वाक्यों के संयोग के रूप में अभिव्यक्ति (कलाकृति) है । इससे यहाँ 'कलार्थ' और 'कविता' (वाक्य-संयोग रूपी कलाकृति) में 'एकरूपता' की स्थापना हुई है । इसीलिए इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'एकरूप अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के बल पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । साथ ही इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के बल पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसी विशेषता के कारण इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' से संबंधित कुछ संभाव्य अर्थ निकल सकते हैं ।

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि रात के समय मनुष्य एकांत मे ऐसे सोच में डूबा रहता है, जिसमें वह भूलने के रूप में भी और याद करने के रूप में भी 'याद' ही करता रहता है । इसी कारण से भूलने का प्रयत्न भी एक प्रकार से याद करना ही है । अतः रात की सूनी घड़ियो को असंख्य अवसादो के क्षणों को भूलने के रूप में अथवा असंख्य उन्मादों के क्षणो को याद करने के रूप में संपन्न कर देना निश्चय ही कष्टदायक है । क्योंकि सुखों की याद से उन असंख्य उन्मादों के क्षणों की याद आती है, जो अब जीवन में नहीं है । इसीलिए सुखो की याद आँखों में दुख के आँसू लाने का कारण बन जाती है । दूसरी ओर दुख की याद हृदय को अब भी अधिकाधिक घायल कर देती है । इसी कारण भूलने के प्रयत्न में पछताना पड़ रहा है और याद करने के प्रयत्न मे भी पछताना पड रहा है । ऐसी स्थिति में किसी दूसरे को दोष देना भी बेकार है । क्योंकि भूलना या याद करना तो अपने बस की बात है । लेकिन सोचने पर भी यह उत्तर नहीं मिलता है कि यादों के बंधन से अपने को मुक्ति कैसे मिलेगी ! वास्तविकता तो यह है कि भूलने या याद करने के रूप मे याद करते रहना मनुष्य का स्वभावधर्म ही है । इस प्रकार प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' मे श्रृंखलित सघनता के कारण ऐसी प्रभावात्मकता रूपी विशेषता आ गयी है, जिससे 'कलार्थ' यहाँ 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' उपर्युक्त सभी विशेषताओं से संपन्न होने के कारण

असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'सौन्दर्य' है । यह 'सौन्दर्य' ही आनन्दप्रदान करने की अपनी विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । यह 'आनन्दप्रद अर्थ' इस कविता के रूप में 'कलानद' की अनुभूति कराने मे समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । सहृदय इस 'कलामूल्यात्मक अर्थ' की अनुभूति कर सकता है ।

यद्यपि यह जानते हुए भी कि मनुष्य यादों के बंधन से अपने को मुक्त नही कर सकता, तो भी यादों के बन्धन से अपने को किसी प्रकार आज़ाद करने की मनुष्य के द्वारा इच्छा करना एक प्रकार का शाश्वत मूल्य है । इसी कारण से प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अर्थात् 'कलामूल्यात्मक अर्थ' आप ही आप 'जीवन मूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' तीव्र भावाश्रय के कारण लयबद्ध नादसौन्दर्य से युक्त होकर अधिक रमणीय बन गया है । इस दृष्टि से इस कविता मे ५वें, ९वें तथा १३वे क्रम पर प्रथम पंक्ति की आवृत्ति; पहली और दूसरी पंक्ति में 'अगणित - - - -आदों के क्षण हैं' की आवृत्ति ; चौथी पंक्ति में 'न, ई, क' की आवृत्ति, छठी और सातवीं पंक्ति के अंत में 'आती' की आवृत्ति; छठी पंक्ति में 'आ' की आवृत्ति; सातवीं पंक्ति में 'द,, आ, र ई' की आवृत्ति ; दसवीं तथा ग्यारहवीं पंक्ति के अंत में 'आता हूँ' की आवृत्ति; बारहवी पंक्ति में 'स, क' की आवृत्ति ; पहली, चौथी, आठवीं तथा बारहवीं पंक्ति के अंत में 'करूँ मैं' की आवृत्ति तथा भावानुकूल कोमल पदावली का प्रयोग महत्वपूर्ण है ।

स्पष्ट है कि हरिवंशराय की प्रस्तुत कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर महत्वपूर्ण बन गयी है ।

(१२) वह आता- दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता ।
पेट-पीठ दोनो मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठीभर दाने को-भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता-
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
साथ दो बच्चे भी है सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिनी दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए ।
भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता-भाग्य-विधाता से क्या पाते ?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते ।
चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सडक पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी है अड़े हुए ।

-सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (भिक्षुक)

कवि 'निराला' की यह कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस कविता की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार हैं -

वह (भिक्षुक) आता (है) । (वह) कलेजे के दो टुकड़े करता (हुआ) (यातनाएँ सहन करता हुआ) (और) पछताता (हुआ) पथ पर आता है । (वह) बहुत दुर्बल है । इसीलिए वह लकुटिया टेकते हुए (पथ पर) चल रहा (है) । (वह भीख में) मुट्ठीभर दाने (पाने) को (और उन दानों से) भूख मिटाने के लिए (अपनी) फटी पुरानी झोली का मुँह फैलाता (हुआ पथ पर चल रहा है) (उसके) साथ सदा हाथ फैलाए दो बच्चे भी हैं । वे (बच्चे) बाएँ (हाथ) से (अपने) पेट को मलते हुए और दाहिना (हाथ) दया-दृष्टि (भीख) पाने की ओर बढ़ाते हुए चलते (है) । जब (उन सब के) ओठ भूख से सूख (जाते हैं तब वे दाता अर्थात् भाग्य-विधाता से क्या पाते (हैं) ? (वे कुछ नही पाते) । (वे तब) मन मारकर रह जाते (हैं) । (सजोग से) वे सभी सडक पर खड़े होकर जूठी पत्तल चाटते रहे (हैं) और (दुर्भाग्य से वहाँ) कुत्ते भी उनसे जूठी पत्तल झपट लेने के लिए अडे हुए (हैं) ।

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी कविता (कलाकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ : - यहाँ भिक्षुक का अत्यंत दयनीय दशा में भीख पाने के लिए और भूख मिटाने के लिए अपने असहाय तथा भूखे दो बच्चो के साथ पथ पर आना, बहुत हृदयदायक है ।

(आ) विचारात्मक अर्थ :- यहाँ महत्वपूर्ण विचार यह है कि समाज में अत्यत दयनीय दशा में किसी का भी भिक्षुक बनकर रहना अच्छा नहीं है । इस कविता में जिस भिक्षुक को दिखाया गया है, वह स्वयं भी अपने भिखारीपन से संतुष्ट नहीं है । विवश होकर ही उसे भीख माँगना पड़ता है, इसीलिए तो वह पछताता रहता है । अतः किसी का भिक्षुक बनना समाज तथा मानवता दोनों पर कलंक है ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- यहाँ विशेष वक्ता के रूप में स्वयं कवि ने अपनी ही कल्पना की है और विशेष श्रोता के रूप में उस समाज की कल्पना की है, जिस समाज में किसी को मजबूर होकर भिक्षुक बनकर जीना पड़ता है । यह दयनीय स्थिति उस समाज के लिए शोभा देने वाली नहीं है । यहाँ भूख के कारण दुर्बल बना हुआ बड़ी उम्रवाला मनुष्य भी लाचार होकर भिक्षुक बन गया है और भूखा रहने के कारण कृशकाय बने हुए बच्चे भी लाचारी मे भिक्षुक बन गये हैं । इन सभी भीखभंगों का पथ पर जूठी पत्तल चाटते रहना, उनकी कुत्तों से भी बदतर दशा का लक्षण है। ऐसी दशा में भी यहाँ भिक्षुक के पछताने की कल्पना महत्वपूर्ण है ।

इस प्रकार प्रस्तुत कविता में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र भिक्षुक का वह पश्चाताप है, जिसके मूल मे उस भिक्षुक के मन की अनिच्छा कार्य कर रही है । इच्छा हो रही है, इसलिए वह भिक्षुक भीख पाने के लिए पथ पर नहीं आता । इसके विरुद्ध पेट की भूख मिटाने के लिए उस

भिक्षुक के सामने कोई दूसरा उपाय ही नहीं रहता, इसलिए वह अनीच्छा से ही फटी पुरानी झोली लेकर तथा साथ में भूखे दो बच्चो को भी लेकर भीख पाने के हेतु पथ पर व्याकुलता में पछताते हुए आता है । इस प्रकार की स्थिति किसी भी स्थल के और किसी भी काल के किसी भी भिक्षुक की हो सकती है । इसी संभाव्यता रूपी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में उस भिक्षुक का दृश्य बिम्ब उभरा है, जो अपने चेहरे पर व्याकुलता लिए हुए, पछताते हुए, लकुटिया टेकते हुए और भूख मिटाने के विचार से मुट्ठी भर दाने पाने के लिए अपनी फटी पुरानी झोली का मुँह फैलाते हुए पथ पर आता है । इसके साथ ही भिक्षुक के साथ के उन दो बच्चों का भी दृश्य बिम्ब उभरा है, जो बायें हाथ से पेट को मलते हुए और दाहिना हाथ भीख पाने के लिए आगे फैलाते हुए चलते हैं । इसके अतिरिक्त जूठी पत्तल चाटने वाले इन भीखमंगों तथा उनसे जूठी पत्तल झपट लेने को अड़े हुए कुत्तों का भी दृश्य बिम्ब उभरा है । इस प्रकार की बिम्बात्मकता रूपी विशेषता के बल पर प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता मे दृश्यमान बिम्बात्मकता के कारण भिक्षुक, दो बच्चों और कुत्तों की रूपात्मकता उभर आयी है । इसी रूपात्मकता रूपी विशेषता के कारण इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अभिव्यक्त है और संपूर्ण कविता अपेक्षित वाक्यों के संयोग के रूप में अभिव्यक्ति (कलाकृति) है । इससे यहाँ 'कलार्थ' और 'कविता' (वाक्य-संयोग रूपी कलाकृति) मे 'एकरूपता' की स्थापना हुई है । इसीलिए प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' एकरूपता रूपी विशेषता के आधार पर 'एकरूप अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के बल पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । साथ ही इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के आधार पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है। इसी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' से संबंधित कुछ संभाव्य अर्थ निकल सकते हैं । एक अर्थ यह निकलता है कि कोई मनुष्य अपनी इच्छा से भिक्षुक बनना पसंद नहीं करता । अपनी लाचार तथा मजबूर दुर्दशा में ही कोई मनुष्य अनीच्छा से भिक्षुक बन जाता है । दूसरा अर्थ यह निकलता है कि भिक्षुक भीख केरूप में जो कुछ पा सकता है वह उसकी भूख मिटाने की दृष्टि से अपर्याप्त होता है । परिणामस्वरूप भिक्षुक का शरीर दुर्बल हो जाता है । इस कारण से भिक्षुक लकुटी का आधार लेते हुए ही पथ पर चल सकता है । तीसरा अर्थ यह निकलता है कि ऐसे भिक्षुक के बच्चों का भविष्य अंधकारमय ही होता है । किसी समाज या देश के बच्चों के भविष्य का इस प्रकार अंधकारमय हो जाना बहुत भयानक है । चौथा अर्थ यह निकलता है कि भिक्षुक बनकर जीना यानी कुत्तों से भी बद्दतर जीवन जीना है । ऐसे जीने में मनुष्य को अपना मनुष्यत्व ही खोना पड़ता है । इसीलिए यहाँ प्रश्न उठता है कि दुर्दशा में मनुष्य को भिक्षुक बनने देना, समाज या देश के लिए क्या भूषणावह है ? वास्तव में यह किसी के लिए भी भूषणावह नहीं है - न समाज या देश के लिए न भिक्षुक बने हुए मनुष्य के लिए। लोगों की नज़र में उस मनुष्य की कोई, इज्ज़त नहीं होती जो भिक्षुक बना रहता है। इस प्रकार प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

श्रृंखलित सघनता के कारण इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' में ऐसी प्रभावात्मकता रूपी विशेषता आ गयी है, जिससे 'कलार्थ' अपने आप 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' उपर्युक्त सभी विशेषताओं से संपन्न होने के कारण असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'सौन्दर्य' है । यह 'सौन्दर्य' ही यहाँ आनन्दप्रदान करने की अपनी विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । यह 'आनन्दप्रद अर्थ' इस कविता के रूप में 'कलानन्द' की अनुभूति कराने में समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । यहाँ भिक्षुक की पश्चातापग्रस्त अनीच्छा' एक प्रकार का महत्वपूर्ण मूल्य है । इसीलिए प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अर्थात् 'कलामूल्यात्मक अर्थ' आप ही आप 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

तीव्र भावाश्रय के कारण प्रस्तु कविता में व्याप्त 'कलार्थ' विशिष्ट लय से युक्त होकर अधिक रमणीय बन गया है । इस दृष्टि से इस कविता में 'आता, ता, क' की आवृत्ति (१ली, २ री पंक्ति में); 'पेट-पीठ' का प्रयोग (३री पंक्ति में); 'ल, क' की आवृत्ति (४थी पंक्ति मे), 'दाने को, मिटाने को' का प्रयोग (५वीं पंक्ति में) 'ई, ल' की आवृत्ति (६ठी पंक्ति में); 'क, ए, ता, प' की आवृत्ति (७वीं पंक्ति में); 'आ, थ, द' की आवृत्ति (८वीं पंक्ति में); 'ए, लते' की आवृत्ति (९वीं पंक्ति में); 'द, आ, इ, र' की आवृत्ति (१० वीं पंक्ति में) ; 'भूख, सूख' का प्रयोग तथा 'स, ज' की आवृत्ति (११वी पंक्ति मे); 'दाता-विधाता' का प्रयोग (१२वीं पक्ति मे), 'घूँट ऑसुओं के पीकर' का प्रयोग (१३वीं पंक्ति में); 'चाट-जूठी' का प्रयोग तथा 'प, स' की आवृत्ति (१४ वीं पंक्ति में) तथा 'ए, क' की आवृत्ति (१५वीं पंक्ति में) महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराल' की प्रस्तुत कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर महत्वपूर्ण बन गयी है ।

(१३) बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी-सुनहली फसलों की मुसकान
-बहुत दिनो के बाद ।
बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जीभर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
-बहुत दिनों के बाद ।
बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जीभर सूँघे
मौलसिरी के ढेर-ढेर से ताजे-टपके फूल
-बहुत दिनों के बाद ।
बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जीभर छू पाया

अपनी गँवई पगडडी की चदनवर्णी धूल
-बहुत दिनो के बाद ।
बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जीभर तालमखाना खाया
गन्ने चूसे जीभर
-बहुत दिनों के बाद ।
बहुत दिनो के बाद
अब की मैने जीभर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ साथ इस भू पर
-बहुत दिनों के बाद ।

-वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' (बहुत दिनों के बाद)

कवि 'नागार्जुन' की यह कविता '**कलार्थ रूपी सौन्दर्य**' से व्याप्त है । इस कविता की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार हैं- 'बहुत दिनों के बाद मैने अबकी (बार) पकी (तथा) सुनहली फसलों की मुस्कान जी भर देखी । बहुत दिनों के बाद अबकी (बार) मैं धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान जीभर सून पाया; बकुल के ढेर ढेर से ताजे टपके फूल मै। जी भर सूँघे; अपने छोटे गाँव की पगडंडी की चंदनवर्णी धूल मैं जीभर छू पाया; मैंने जी भर तालमखाना खाया (और) गन्ने (भी) चूसे । इस प्रकार मैने अबकी (बार) इस भू पर गंध, रूप, रस, शब्द, स्पर्श (ये) सब साथ-साथ जी भर भोगे।

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी कविता (कलाकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ:- बहुत दिनों के बाद रूप, शब्द, गंध, स्पर्श तथा रस का एक साथ जीभर भोग करने का सुअवसर मिलने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि भोगकर्ता को आनन्द ही आनन्द मिला है । इसी भोगकर्ता के कथन के रूप में सृजित प्रस्तुत कविता में आनन्द, हर्ष एवं उल्लास का भाव व्याप्त है ।

(आ) विचारात्मक अर्थ : - जीवन में वह क्षण भाग्य का होता है, जब मनुष्य को कभी रूप, शब्द, गंध, स्पर्श तथा रस का साथ-साथ भोग करने का सुअवसर मिल जाता है । इसीलिए प्रस्तुत कविता मे यह महत्वपूर्ण विचार कार्य कर रहा है कि मनुष्य के (दु खमय) जीवन मे कभी कभी इस प्रकार का आनन्द, हर्ष एवं उल्लास का क्षण आता रह जाय ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- यहाँ कवि ने विशेष वक्ता के रूप में स्वयं अपनी ही कल्पना की है और विशेष श्रोता के रूप में भी अपनी ही कल्पना की है । इसी कारण स यहाँ कविता रूपी कथन के मूल मे स्वयं कवि के द्वारा आनन्द, हर्ष एवं उल्लास के अनुभव की कल्पना करना महत्वपूर्ण है । फलस्वरूप प्रस्तुत कविता 'आत्मानन्द से परिपूर्ण कथन बन गयी है ।

इस प्रकार प्रस्तुत कविता मे भावात्मक अर्थ विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्

अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप मे व्याप्त है । इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' है ।

प्रस्तुत कविता में 'व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र कवि का वह आनन्द है, जिसके मूल मे इस धरती पर मनुष्य के रूप मे कभी न कभी रूप, शब्द, गंध, स्पर्श तथा रस का साथ-साथ भोग करने की कवि की इच्छा है । वास्तव में कवि की इस प्रकार की इच्छा किसी भी स्थल के और किसी भी काल के मनुष्य की इच्छा हो सकती है । इसी संभाव्यता रूपी विशेषता के कारण इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' आप से आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी दृश्य बिम्बात्मकता है, जिसके सन्दर्भ मे श्रव्य बिम्बात्मकता, घ्राण्य बिम्बात्मकता, स्पर्श्य बिम्बात्मकता तथा स्वाद्य बिम्बात्मकता को भी महत्व का स्थान मिला है । सबसे पहले पकी और सुनहली फसलों की मनोरम मुसकान के रूप में दृश्य बिम्ब (रूप) को महत्व का स्थान मिला है । इसके बाद धान कूटती किशोरियों के मनोहर दृश्य बिम्ब के साथ उनकी श्रुतिमधुर कोकिल कंठी तान के रूप में श्रव्य बिम्ब (शब्द) को महत्व का स्थान मिला है । इसके बाद बकुल के ताजा फूलो मे घ्राण्य बिम्ब को महत्व का स्थन मिला है । इसके बाद अपने छोटे गॉव की पगडडी की चंदनवर्णी धूल के मनोहारी दृश्य बिम्ब के साथ उस धूल की सुखद मुलायमता के रूप मे स्पर्श्य बिम्ब को महत्व का स्थान मिला है । इसके बाद तालमखानो और गन्नो के मन प्रिय दृश्य बिम्ब के साथ उनकी रूचिर मधुरता के रूप में स्वाद्य बिम्ब (रस) को महत्व का स्थान मिला है । इस प्रकार पूरी कविता में बिम्बात्मकता रूपी विशेषता को महत्त्व का स्थान मिला है, जिसके फलस्वरूप इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' आप से आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । इस सन्दर्भ में प्रसन्न हुए कवि की भी अस्फुट-सी बिम्बात्मकता महत्वपूर्ण है ।

इस कविता में बिम्बात्मकता के कारण रूपात्मकता को महत्व का स्थान मिला है। इसी कारण से यहाँ पकी एव सुनहली फसलों की धान कूटती और गाती हुई किशोरियो की, बकुल के ताजा फूलो के ढेरो की, गॅवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल की और तालमखाने तथा गन्नों की आकर्षक रूपात्मकता है । फलस्वरूप रूपात्मकता रूपी विशेषता के बल पर प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अभिव्यक्त है और संपूर्ण कविता अपेक्षित वाक्यो के संयोग के रूप में अभिव्यक्ति (कलाकृति) है । इससे यहाँ 'कलार्थ' और 'कविता' (वाक्य सयोग रूपी कलाकृति) में एकरूपता की स्थापना हुई है । परिणामस्वरूप प्रस्तुत कविता मे व्याप्त कलार्थ एकरूपता रूपी विशेषता के बल पर 'एकरूप अर्थ' बन गया है ।

इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के आधार पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के बल पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसी विशेषता के कारण इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' से सबंधित कुछ सभाव्य अर्थ निकल सकते है । एक अर्थ यह निकलता है कि जो शहर में रहने वाले होते है उनके मानस में अपने छोटे से गॉव के प्रति एक प्रबल आकर्षण बना रहता है । इसीलिए

कभी बहुत दिनो के बाद भी क्यो न हो, शहरवासी अपने गाँव जाना पसंद करता है । स्वय कवि के साथ भी ऐसा ही हुआ है । कवि बहुत दिनों के बाद अपने गॉव गये और भाग्य से वे जो जो चाहते थे वह सब उन्हें वहाँ मिला । इसी कारण से ही उन्होंने अपना मन सतुष्ट होने तक पकी तथा सुनहली फसलों की (मनोहम चमक रूपी) मुसकान को अपने नेत्रो से देखा, धान कूटती हुई और अपनी कोकिल जैसी मधुर आवाज मे गाती हुई किशोरियो की तानों को अपने कानों से सुना; बकुल के ताजे तथा टपके ढेर सारे फूलों की गध को अपनी नाक से सूँघा; अपने छोटे गाँव की पगडंडी की चन्दन समान रंगवाली धूल को अपने हाथों से स्पर्श किया और तालमखाने तथा गन्ने को अपनी रसना से चूसा/ इसका अर्थ यह हुआ कि कवि ने इन सबका यथेष्ट मजा लिया । क्योंकि ऐसा क्षण बार-बार नही मिलता, भाग्य से ही कभी मिलता है । इस प्रकार के अत्यानन्द के क्षण को लेकर प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' मे 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता आ गयी है, जिससे 'कलार्थ अपने आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

श्रृंखलित सघनता के कारण इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' में ऐसी प्रभावात्मकता रूपी विशेषता आ गयी है, जिससे 'कलार्थ' आप ही आप 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' उपर्युक्त सभी विशेषताओं से युक्त होने के कारण असाधारण, अलौकिक विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'सौन्दर्य' है । यह 'सौन्दर्य' ही यहाँ आनन्दप्रदान करने की अपनी विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । यह 'आनन्दप्रद अर्थ' इस कविता के रूप में 'कलानंद' की अनुभूति कराने मे समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । यहाँ कभी न कभी रूप, शब्द, गंध, स्पर्श रस का साथ-साथ यथेष्ट भोग करके आंनंद पाने की मनुष्य की तीव्र इच्छा एक प्रकार का जीवन मूल्य है । इसीलिए प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अर्थात् 'कलामूल्यात्मक अर्थ अपने आप 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

तीव्र भावाश्रित होकर प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' विशिष्ट लय और गति के साथ नाद सौन्दर्य से युक्त हुआ है और अधिक रमणीय भी बन गया है । इस दृष्टि से प्रस्तुत कविता में ४थे, ५वें, ६ठवें, ९ वें, १२वें, १३वें, १६वे, १७वे, २०वे, २१वें तथा २४ वे क्रम पर पहली पंक्ति की आवृत्ति; 'अब की मैंने जी भर' पदबंध की तीन बार आवृत्ति और अब की मैं जी भर' पदबंध की एक बार आवृत्ति; ३री पंक्ति मे 'क, ई, ल, स' की आवृत्ति; ७वी पक्ति में 'क, ओ' की आवृत्ति, ११वीं पंक्ति में 'ढेर, ए' की आवृत्ति; १५वीं पंक्ति में 'ई' की आवृत्ति; १८वी पंक्ति में 'आ, ख' की आवृत्ति; १९वी पंक्ति में 'ए' की आवृत्ति और २३वी पक्ति में 'र, श, ब, स, साथ' की आवृत्ति और पूरी कविता में सरल पदावली का प्रयोग महत्वपूर्ण है ।

स्पष्ट है कि कवि वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' की प्रस्तुत कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य से व्याप्त होकर उत्कृष्ट बन गयी है । इस कविता मे जो उत्तम पुरुष, एक वचन, पुल्लिग मैं' का प्रयोग हुआ है, उस 'मै' से स्वयं कवित का अर्थबोध होता है। कवि को अपने गाव जाकर भोगने की क्रिया के रूप में जो देखना, सुनना, सूँघना, छूना, खाना तथा चूसना था वह सब उसने एक ही समय पर किया । कवि की इन क्रियाओं का अर्थबोध कराने के लिए

ही पूरी कविता मे 'मैने/मैं' कर्तापद के साथ निश्चयार्थक, सामान्य भूतकालवाचक, सकर्मक कर्तृवाच्य, सरल वाक्यों का प्रयोग हुआ है ।

(१४) निर्मम कुम्हार की थापी से कितने रूपों मे कुटी-पिटी,
हर बार बिखेरी गई, किन्तु मिट्टी फिर भी तो नही मिटी !
आशा में निश्चल पल जाए, छलना मे पडकर छल जाए
सूरज दमके तो तप जाए, रजनी ठुमके तो ढल जाए !
यों तो बच्चो की गुडिया सी भोली मिट्टी की हस्ती क्या ?
ऑधी आए तो उड़ जाए, पानी बरसे तो गल जाए !
फसलें उगतीं फसलें कटतीं, लेकिन धरती चिर उर्वर है
सौ बार बने सौ बार मिटे, लेकिन मिट्टी अविनश्वर है !
मिट्टी गल जाती पर उसका विश्वास अमर हो जाता है !

-सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (मिट्टी की महिमा)

कवि 'अज्ञेय' की यह कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस कविता (कलाकृति) की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार है -

(आश्चर्य यह है कि मिट्टी) निष्ठुर कुम्हार की थापी से कितने रूपों में कुटी गयी-पिटी गयी; प्रत्येक बार (वह) बिखेरी (भी) गयी, परन्तु मिट्टी तो फिर भी नही मिटी ! (वह) आशा मे स्थिर पल जाती है, (लेकिन वह) धोखे में पड़कर छल (भी) जाती है ! (जब) सूर्य चमकता (रहता) है, (तब वह) गरम हो जाती है (और जब) रात विशिष्ट लय के साथ आती (रहती) है, (तब वह) ढल जाती है ! वैसे तो बच्चों की गुड़िया के समान भोली मिट्टी का अस्तित्व (ही) क्या है ? ऑधी आती है तो (वह) उड़ जाती है (और) पानी बरसता है तो (वह) पिघल जाती है । (उसकी गोद मे) फसले उगती (भी) हैं (और) फसलें कटती (भी) है, लेकिन धरती (मिट्टी तो) निरंतर उपजाऊ (ही बनी रहती) है ! (यह) मिट्टी सौ बार बनती रहे (या) सौ बार मिटती रहे, लेकिन (वह तो) अविनाशी (बनकर रहती) है ! मिट्टी पिघल (तो) जाती है, परन्तु उसका विश्वास अमर हो जाता है ।

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी कविता (कलाकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ :- यहाँ मिट्टी का अन्य रूपों में ढल जाने के बाद भी फिर-फिर मिट्टी बन जाना, निरंतर उपजाऊ बनकर रहना और अविनाशी होना, आश्चर्यकारक लग रहा है । मिट्टी मूल रूप में या अन्य किसी रूप में भी मनुष्य के लिए (साथ ही अन्य जीवों के लिए भी) उपयोगी बनकर रहती है । किसी भी स्थिति में उपयोगी बनकर रहना ही मिट्टी की महिमा है । मिट्टी की इस प्रकार की महिमा के बारे में आश्चर्य तथा आदर का जगना स्वाभाविक है ।

(आ) विचारात्मक अर्थ :- इस कविता में महत्वपूर्ण विचार यह है कि लोगों को मिटटी की हितकारक महिमा को समझना चाहिए और उसका सदुपयोग करते रहने के लिए मिटटी के प्रति सदैव आदर-भाव रखना चाहिए ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- इस कविता में कवि ने विशेष वक्ता तथा विशेष श्रोता के रूप मे स्वयं अपनी ही कल्पना की है । यहाँ कवि के वक्तव्य के रूप में मिट्टी की हितकारी महिमा की कल्पना की गयी है । यहाँ महत्त्वपूर्ण कल्पना यह है कि लोगो के हित के लिए मिट्टी अलग-अलग रूप धारण कर लेती है फिर भी मिट्टी अपने मूल रूप मे कायम बनी रहती है । अपने मूल रूप में कायम बने रहने में ही मिट्टी की हितकारी अनश्वरता है ।

इस प्रकार प्रस्तुत कविता मे भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप मे व्याप्त है । इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र मिट्टी की लोकहितकारी महिमा को आश्चर्य तथा आदर के साथ स्वीकार करने की स्वयं कवि की इच्छा है । यथार्थ में कवि की इस प्रकार की इच्छा किसी भी स्थल के और किसी भी काल के किसी भी मनुष्य की इच्छा हो सकती है । इसी सभाव्यता रूपी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त कलार्थ' अपने आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में मिट्टी की महिमा को आश्चर्य तथा आदर के साथ स्वीकार करने वाले विशेष वक्ता के रूप में स्वयं कवि का दृश्य बिम्ब उभरा है । साथ ही लोकहितार्थ अलग-अलग रूप धारण करने वाली तथा मूल रूप मे भी सुरक्षित रहने वाली के रूप मे मिट्टी (धरती) का भी दृश्य बिम्ब उभरा है । मिट्टी के दृश्य बिम्ब की दृष्टि से उसका कुम्हार की थापी से कई रूपों में कुट-पिट जाना, बिखेर जाना, स्थिर पल जाना, तप जाना, ढल जाना, आँधी से उड जाना, पानी के बरसने से गल जाना, फसलों से युक्त अथवा रहित होना, चिर उपजाऊ होना आदि महत्वपूर्ण है । इस प्रकार की बिम्बात्मक रूपी विशेषता के बल पर प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में दृश्यमान बिम्बात्मकता के कारण मिट्टी की रूपात्मकता उभर आयी है । इसी रूपात्मकता रूपी विशेषता के आधार पर इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' अभिव्यक्त है और पूरी कविता अपेक्षित वाक्यो के सयोग के रूप में अभिव्यक्ति (कलाकृति) है । फलस्वरूप यहाँ 'कलार्थ' और 'कविता' (वाक्य-संयोग रूपी कलाकृति) मे 'एकरूपता' की स्थापना हुई है । इसीलिए इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी एकरूपता रूपी विशेषता के आधार पर 'एकरूप अर्थ' बन गया है।

इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के बल पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । साथ ही इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के आधार पर आप ही आप 'श्रृखलित सघन अर्थ बन गया है । इसी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' से संबधित कुछ सभाव्य अर्थ निकल सकते हैं । यहाँ आदरणीय मनुष्य के समान मिट्टी की जनहितकारी

सहनशीलता महत्वपूर्ण है । इसलिए ही मिट्टी निष्ठुर कुम्हार की थापी के आघातो को सहती रहती है और लोकोपयोगी रूपों में (वस्तुओं में) ढलती रहती है । वह आश्वस्त मनुष्य के समान अपने अमरत्व को ध्यान में रखकर आशा तथा विश्वास के साथ पल जाती है । कभी वह छले जाने वाले मनुष्य के समान धोखे मे पड़कर छल जाती है अर्थात् मिट्टी को अपना मूल रूप छोड़कर अलग-अलग रूपों में ढलना पड़ता है । सहनशील मनुष्य के समान मिट्टी दिन में तप जाना और रात मे ढल जाता सहन करती है । बालक की गुडिया के समान मिट्टी शिकायत न करने वाली भोली बनी रहती है । मिट्टी ऑधी के आने से उड जाती है और पानी के बरसने से गल जाती है, इसलिए मिट्टी के अस्तित्व के बारे मे प्रश्न उठाना बेकार है । वास्तव में मिट्टी ही धरती के रूप में जीवनपोषक फसले उगाने वाली चिर उपजाऊ है । वह सौ बार अन्य रूपो मे मिटती (ढलती) रहे, फिर भी वह सो बार अपने मूल रूप मे बनी रहती है । इसीलिए मिट्टी अविनाशी है और चि ल तक लोकोपयोगी बनकर रहने वाली है। यहॉ मिट्टी का रूप परोपकारी, आदरणीय तथा महिमामंडित मनुष्य का रूप है । इस प्रकार प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित सघनता' के आधार पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

श्रृंखलित सघनता के कारण प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' प्रभावत्मकता रूपी विशेषता से युक्त होकर 'प्रभावत्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' उपर्युक्त सभी विशेषताओं से युक्त होने के कारण असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । वास्तव में यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'सौन्दर्य है । यह 'सौन्दर्य' ही यहाँ आनन्दप्रदान करने की अपनी विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । यह 'आनन्दप्रद अर्थ' इस कविता के रूप में 'कलानन्द' की अनुभूति कराने मे समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । यहॉ किसी के परोपकारी आदरणीय और महिमामंडित रूप को आश्चर्य तथा आदर के साथ स्वीकार करने की इच्छा जीवन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । साथ ही किसी की परोपकार से युक्त महिमा भी जीवन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । फलस्वरूप प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अर्थात् 'कलामूल्यात्मक अर्थ' अपने आप 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

तीव्र भावाश्रय के कारण प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' लयबध नाद सौन्दर्य से युक्त होकर बहुत रमणीय बन गया है । इस दृष्टि से प्रस्तुत कविता की १ली और २री पक्ति के अंत मे 'इटी' की आवृत्ति; ३री और ४थी तथा ६ठी पंक्ति के अंत मे 'ल जाए' की आवृत्ति; ७वीं, ८वीं तथा ९वीं पंक्ति के अंत में 'है' की आवृत्ति , १ ली पंक्ति मे 'र, म, क आ ई, ए, ट' की आवृत्ति , २री पक्ति में 'र, ई' की आवृत्ति, ३री पक्ति मे 'ल, जाए, प की आवृत्ति; ४थी पंक्ति मे 'त, जाए, र, ज, क' की आवृत्ति, ५वीं पंक्ति मे 'ओ, ई, क' की आवृत्ति ; छठी पंक्ति मे 'आए, जाए, आ, ए' की आवृत्ति; ७वीं पंक्ति मे 'फसले, ती, र' की आवृत्ति; ८वीं पक्ति मे 'सौ बार, ए, न' की आवृत्ति; ९वी पंक्ति में 'ई, स, आ, ज, त' की आवृत्ति; 'सूर्य' पद के बदले 'सूरज' पद का प्रयोग और सुबोधक पदावली का प्रयोग महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार कवि 'अज्ञेय' की प्रस्तुत कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर

महत्वपूर्ण बन गयी है ।

(१५) साँझ होते ही न जाने छा गई कैसी उदासी ?
क्या किसी की याद आई, ओ विरह-व्याकुल प्रवासी ?
अस्त रवि-सी हो गई क्या श्रान्त म्लान विलुप्त आशा ?
क्या अभी से सोच कल की ली बसा मन में निराशा ?
पड़ गई बुझते दिवस की भग्न उर पर म्लान छाया,,
गेह जाते देख पक्षी या कही विश्राम भाया ?
ओ निराश्रित ! नियति शासित ! व्यथित क्यों जब तक मही है,
धूलि-कण, तृण को सदा जो आसरा देती रही है ?
देख ऊपर कुन्द-तारक-पुंज से नभ-उर खिला है
जहॉं फूटे भाग्य-से घन को सदा आश्रय मिला है ।
माधवी की गंध मे हो अंध अब क्यो झपी पलकें ?
याद आई क्या प्रिया की सुरभि-सिंची शिथिल अलकें ?
क्यो उदित-शशि-म्लान-मुख को देख अब छाई उदासी ?
विरह-विधुरा शशिप्रिया की याद आई क्या प्रवासी ?
प्राण तन मे है, हृदय मे है प्रिया का ध्यान जब तक,
प्रवासी ! जीवित रहेगा तू सदा बन स्नेह-दीपक !
जल, प्रिया की याद में जल चिर लगन बनकर, प्रवासी !
स्नहे की बन ज्योति जग में, दूर कर उर की उदासी !

-नरेन्द्र शर्मा (साँझ होते ही)

कवि नरेन्द्र शर्मा की यह कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त है । इस कविता (कलाकृति) की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, वे वाक्य इस प्रकार है -

सॉझ होते ही न जाने कैसी उदासी छा गयी (है) ? ओ विरह व्याकुल प्रवासी, क्या (तुझे) किसी की याद आयी (है) ? क्या (तेरी) आशा श्रान्त, म्लान, विलुप्त रवि के समान अस्त हो गयी (है) ? क्या (तूने) अभी से सोच कल की निराशा मन में बसा ली (है) ? पक्षी (को) घर जाते देख या कहीं (तुझे) विश्राम भाया (है), इसलिए (तेरे) भग्न उर पर बुझते दिवस की म्लान छाया पड़ गयी (है) ? ओ निराश्रित ! नियति शासित (प्रवासी) ! (तू) क्यो व्यथित होता है, जब तक (यह) धरती है, जो धूलि-कण (और) तृण को सदा आसरा देती रही है ? (ओ प्रवासी, जरा) ऊपर (तो) देख, (कैसे) मद तारक-समूह से (उस) नभ का उर खिला है, जहॉं फूटे भाग्य के समान मेघ को सदा आश्रय मिला है । (ओ प्रवासी !) अब (तेरी) पलकें माधवी की गंध में अंध होकर क्यों झपी (हैं) ? क्या (तुझे अपनी) प्रिया की सुगंध-सिंची शिथिल अलके याद आयी (हैं) ? (ओ प्रवासी,) अब उदित चंद्रमा के मलिन मुख को देखकर क्यो उदासी छायी (है) ? (हे) प्रवासी, क्या (तुझे) विरह-व्याकुल शशिप्रिया की याद आयी (है) ? (ए) प्रवासी ! जब तक तन मे प्राण है (और) हृदय मे प्रिया का ध्यान है (तब तक) तू स्नेह दीपक बनकर जीवित रहेगा । (हे) प्रवासी (तू) जल

(अपनी) प्रिया की याद में चिर प्रेम बनकर जल ! (तू इस) जग में प्रेम की ज्योति बनकर (अपने) उर की उदासी दूर कर !

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी कविता (कलाकृति) में व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) भावात्मक अर्थ :- किसी कारण से जिस किसी को अपने घर से दूर अन्यत्र रहना पडा है, वह प्रवासगत होने से 'प्रवासी' बन गया है । अपनी प्रिया से दूर होने के कारण वह 'विरह से व्याकुल प्रवासी बन गया है । प्रवास मे सायकाल होते ही (अपने अकेलेपन मे) अपने दूरस्थ घरवालो की उनमें भी अपनी प्रिया (पत्नी) की तीव्र याद आना स्वाभाविक है । फलस्वरूप प्रवासी के चेहरे पर उदासी छा जाना भी स्वाभाविक है । तभी तो यहॉ विरह-व्याकुल प्रवासी के चेहरे पर उदासी छा गयी है । किसी हितैषी ने देखा कि प्रवासी का चेहरा उदासीग्रस्त हुआ है । तब हितैषी के सामने प्रश्न उठता है कि प्रवासी के चेहरे पर न जाने कैसी उदासी छा गयी है ? उस उदासी का कारण जानने की उत्सुकता को लेकर हितैषी ने प्रवासी से अनेक प्रश्न पूछे हैं । हितैषी के प्रत्येक प्रश्न मे अनुमित उत्तर छिपा हुआ है । कुछ अनुमित उत्तरो का सिलसिला इस प्रकार है- किसी की याद आयी हुई होगी, इसलिए प्रवासी विरह से व्याकुल होकर उदास हुआ होगा, या आज ही कल की किसी चिंताजनक बात के बारे में सोचते हुए आशा छोड़कर उसने अपने मन में निराशा बसा ली होगी; या अपने घर या कहीं के प्रिय विराम की याद आयी हुई होगी, या प्रिया की सुगंध-सिची शिथिल अलकों की याद आयी हुई होगी, या विरह-व्याकुला प्रिया की याद आई हुई होगी । अंत में हितैषी का निश्चय हुआ कि अपनी प्रिया की ही याद आयी होगी, इसलिए यह निराश्रित तथा नियति शासित प्रवासी हृदय से उदास हुआ है । अपने इस प्रकार के निश्चय के कारण ही हितैषी ने शुभकामना व्यक्त की है कि प्रवासी जब तक अपने हृदय में प्रिया का ध्यान रखेगा तब तक वह स्नेह-दीपक बनकर सदा जीवित रहेगा ।

(आ) विचारात्मक अर्थ :- अपनों को कहीं भी न भूलने का और उनको सदा याद करने का विचार महत्वपूर्ण है । इसी कारण से ही इस कविता में प्रवासी का अपनों को याद करना महत्वपूर्ण है । अपनो को याद करने पर ही प्रवासी अपनों से मिलने के लिए प्रयत्न करने लग सकता है । वास्तव मे यह अपनापन ही तो मनुष्य-जीवन का महत्वपूर्ण आधार है । मित्रता भी इसी 'अपनापन' का ही एक रूप है । इसलिए हितैषी अपने उदास हुए मित्र से उदासी के कारणों के बारे में पूछता रहता है । इस कविता में ऐसी ही हुआ है । इस कविता में अत्यधिक महत्वपूर्ण विचार यह है कि किसी भी स्थिति में अपनों के बारे मे विशेषकर अपनी प्रिया के बारे में, अपने प्रेम-दीप को जलाए रखना चाहिए । इसमे प्रेम की सार्थकता है ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- इस कविता में विशेष श्रोता के रूप में 'प्रवासी' की कल्पना की गयी है और प्रवासी से उसकी उदासी का कारण जानने वाले तथा प्रवासी को निराशा से मुक्त करने के उद्देश्य से प्रवासी को दिलासा देने वाले के रूप में प्रश्नकर्ता हितैषी की भी कल्पना की गयी है । वास्तव मे हितैषी के प्रश्नयुक्त कथन के रूप में प्रस्तुत कविता का सृजन हुआ है । यहाँ अत्यधिक महत्वपूर्ण कल्पना यह है कि प्रश्नयुक्त कथन

का प्रयोग करने वाला वक्ता अर्थात् हितैषी और प्रवासी दोनों एक ही व्यक्ति के दो रूप है। अत यहाँ जो वक्ता रूपी हितैषी है, वही प्रवासी है । यहाँ यह कल्पना अत्यंत रमणीय है कि उदासी तथा निराशा से ग्रस्त प्रवासी ही हितैषी के रूप मे अपने से ही प्रश्न पूछता है और साथ ही अपने को दिलासा भी देता है । दिलासा देने के लिए ही यहाँ धूलि-कण तथा तृण को सदा आसरा देने वाली मही की बात कही गयी है और सायकाल मे मंद तारक-पुज से प्रकाशमान हुए उस नभ की भी बात कही गयी है, जो फूटे भाग्य के समान मेघ को सदा आश्रय देता रहता है । अत प्रवासी को आशा का त्याग नहीं करना चाहिए। यहाँ प्रवासी को 'नियति शासित' मानने की कल्पना बड़ी अर्थपूर्ण है ।

इस प्रकार प्रस्तुत कविता में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' है ।

प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र प्रवास में भी अपनो को याद करते हुए उनसे मिलने की प्रवासी की तीव्र इच्छा है । वास्तव में प्रवासी की इस प्रकार की इच्छा किसी भी स्थल के और किसी भी काल के किसी भी प्रवासी की इच्छा हो सकती है । इसी सभाव्यता रूपी विशेषता के कारण इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में अपनों की याद में तथा विशेषकर अपनी प्रिया की याद में उदास एव निराश हुए प्रवासी का अस्पष्ट-सा दृश्य बिम्ब उभरा है । साथ ही प्रश्नयुक्त कथन का प्रयोग करने वाले वक्ता के रूप में हितैषी का भी कुछ अस्फुट-सा दृश्य बिम्ब उभरा है । यहाँ साँझ, अस्त हो रहा रवि, बुझता दिवस, भग्न उर, गेह (घर), गेह जाते पक्षी, कोई विश्राम, धूलि-कण तथा तृण युक्त मही, कुन्द-तारक-पुंज से युक्त नभांगन, घन, माधवी प्रिया, शिथिल अलकें, उदित शशि-म्लान-मुख, विरह-विधुरा शशिप्रिया, तन, स्नेह-दीपक ज्योति, जग ये सभी उल्लेख साँझ का विशिष्ट दृश्य बिम्ब उभरने में सहायक हुए हैं । इस प्रकार की दृश्य बिम्बात्मकता रूपी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ अपने आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है । इस सन्दर्भ में घ्राण्य बिम्ब सूचित करने वाले 'माधवी की गंध' तथा 'सुरभि-सिंची' ये दोनो उल्लेख भी महत्वपूर्ण हैं ।

प्रस्तुत कविता मे बिम्बात्मकता के कारण रूपात्मकता को महत्व का स्थान मिला है। इसी कारण से इस कविता में उदास एवं निराश प्रवासी की रूपात्मकता हितैषी वक्ता की रूपात्मकता साँझ (संध्या/सांयकाल) के आगमन की रूपात्मकता, अस्त हो रहे श्रान्त एव म्लान रवि की रूपात्मकता, घर की ओर जा रहे पक्षी की रूपात्मकता, किसी प्रिय विश्राम की रूपात्मकता, भग्न उर की रूपात्मकता, बुझते दिवस की रूपात्मकता, आसरा देने वाली धरती की रूपात्मकता, आसरा पाने वाले धूलि कण तथा तृण की रूपात्मकता मन्द तारक-समूह एवं उससे युक्त नभांगन की रूपात्मकला, नभ में आश्रित बनकर रहने वाले घन (मेघ) की रूपात्मकता, गंधित माधवी की रूपात्मकता, प्रिया और उसकी सुगध-सिची शिथिल अलको की रूपात्मकता, उदित शशि-म्लान मुख की रूपात्मकता, विरह-व्याकुला शशिप्रिया की रूपात्मकता प्राणयुक्त तन की रूपात्मकता,, स्नेह-दीपक (प्रेम दीप) की ———— दीप ज्योति की ———— तथा जगत की ———— इसलिए

महत्वपूर्ण है कि उससे साँझ की अर्थपूर्ण संपूर्ण रूपात्मकता उभर आती है । इसी रूपात्मकला रूपी विशेषता के बल पर प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप रूपात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अभिव्यक्त है और संपूर्ण कविता अपेक्षित वाक्यो के सयोग के रूप में अभिव्यक्ति (कलाकृति) है । इसका परिणाम यह हुआ है कि यहाँ पर 'कलार्थ' और पूरी 'कविता' (वाक्य-संयोग रूपी कलाकृति) में 'एकरूपता की स्थापना हुई है । तभी तो प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी एकरूपता रूपी विशेषता के आधार पर 'एकरूप अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के आधार पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । इस 'मौलिक अर्थ' में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ की महत्वपूर्ण समरूपता 'कलार्थ' बनकर रही है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के आधार पर आप से आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण संभाव्य अर्थ निकल सकते हैं । कविता की १ली और २री पंक्ति में जो प्रश्न उपस्थित किए गये हैं उनसे कुतूहलवर्धक अर्थबोध होता है । एक अर्थबोध यह होता है कि जिसे प्रश्न पूछे जा रहे हैं, वह प्रवासी है और प्रवास के कारण वह विरह व्याकुल है । वह किसी कार्यवश प्रवास में है । दिन तो कामकाज मे निकल जाता है । कामकाज की व्यस्तता में तो अपने दूरस्थ घर वालों की याद नही आती। लेकिन संध्या समय कामकाज से मुक्त होने पर एकांत में प्रवासी को अपने घरवालो की याद आती होगी। इसी कारण से कोई हितैषी शाम के वक्त प्रवासी को उदास देखकर प्रश्न पूछने लगा है । पहले प्रश्न से अर्थबोध होता है कि प्रवासी किसी प्रकार की उदासी से ग्रस्त है । कहीं किसी की याद आयी है; इसलिए तो प्रवासी उदास नहीं है न? ऐसा सोचकर ही हितैषी ने दूसरा प्रश्न किया है और उस प्रवासी को 'विरह-व्याकुल 'माना है। दूरस्थित अपने की याद आने से प्रवासी का विरह-व्याकुल होना नितांत स्वाभाविक है । लेकिन प्रश्नकर्ता रूपी हितैषी प्रवासी की उदासी को लेकर कुछ अन्य कारणो का भी अनुमान करने लगता है ।

जिस पर दिनभर की यात्रा से थंके हुए, मलिन (निरूत्साही) हुए तथा विलुप्त होने लगे हुए सूर्य का अस्त हो जाता है, उसी तरह दिन भर के कामकाज के पश्तात् भी असफल रहे हुए प्रवासी का भी थकान तथा म्लान की दशा में कल के अनपेक्षित परिणाम के बारे में आज ही सोचकर और आशा को छोडकर निराशा से ग्रस्त होना बिल्कुल स्वाभाविक है । इसी तरह प्रश्नकर्ता हितैषी का प्रवासी की उदासी के कारण के बारे मे अनुमान करते रहना स्वाभाविक है । इस क्रम में प्रश्नकर्ता प्रवासी को 'निराश्रित' तथा नियति शासित' भी कहता है । वैसे प्रवासी निराश्रित हो नहीं सकता । क्योंकि इस धरती पर वह कहीं न कहीं अपने लिए (प्रवास में) आसरा पा ही सकता है । लेकिन वह प्रवासी नियति शासित' अवश्य हो सकता है । क्योंकि नियति ही तो मनुष्य को जीवित रहने के लिए क्या क्या करने को विवश कर देती है इसलिए ही मनुष्य को के निमित्त

अपनों से दूर प्रवास को स्वीकार करना पड़ता है । अतः इस प्रवासी का 'नियति शासित होना बिल्कुल स्वाभाविक है । प्रश्नकर्ता हितैषी अचानक देखता है कि प्रवासी माधवी की गंध में उन्मत्त होकर झपकी ले रहा है । तब प्रश्नकर्ता हितैषी का निश्चय हो जाता है कि प्रवासी अपनी दूरस्थित विरह-व्याकुला प्रिया को ही याद करके ही उदास एवं निराश हुआ है । अपनी प्रिया के प्रति प्रवासी के गहरे प्रेम को देखकर प्रश्नकर्ता हितैषी प्रवासी को दिलासा देने के विचार से ही कहता है कि जब तक तेरी देह मे प्राण है और तेरे हृदय मे प्रिया का ध्यान है, तब तक तू स्नेह-दीपक बनकर जीवित रहेगा । प्रिया की याद में स्नेह-दीपक के रूप मे जलने से और प्रेम की ज्योति बनकर रहने से अपने आप तेरे अंतर की उदासी मिट जायगी । यहाँ दिलासा देते हुए प्रवासी को प्रेम की शक्ति के साथ परिचित कराया गया है । इस प्रकार प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के बल पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

'श्रृंखलित सघनता' के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' में ऐसी प्रभावात्मकता रूपी विशेषता आयी है, जिससे 'कलार्थ' अपने आप 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' उपर्युक्त सभी विशेषताओं से संपन्न होने के कारण असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यथार्थ में यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'सौन्दर्य' है । यह 'सौन्दर्य' ही इस कविता में आनन्द प्रदान करने की अपनी विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है ।

यहाँ 'आनन्दप्रद अर्थ' प्रस्तुत कविता के रूप में 'कलानन्द' की अनुभूति कराने में समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । प्रवास मे प्रवासी रूपी प्रेमी को अपनी प्रिया की याद में स्नेह-दीपक के रूप में जलते रहने और हृदय की उदासी को मिटाने वाली प्रेम की ज्योति बनकर रहने की इच्छा होना, जीवन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । इस प्रकार की विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अर्थात् 'कलामूल्यात्मक अर्थ' अपने आप ही 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

तीव्र भावाश्रय के कारण इस कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' लयबद्ध नाद सौन्दर्य से युक्त होकर अधिक रमणीय बन गया है । इस दृष्टि से १ली और २री पंक्ति के अंत में 'आसी' की आवृत्ति; ३री तथा ४थी पंक्ति 'स, क, ल, म', ५वीं पंक्ति में 'न, आ,' ६ठीं पंक्ति में 'ए, ई, आ', ७वीं पंक्ति में 'नि, आ, इ, त, क', ८वीं पंक्ति के अंत में 'आशा' की आवृत्ति; ५वीं एवं ६ठी पंक्ति के अंत में 'आया' की आवृत्ति; ७वीं और ८वीं पंक्ति के अंत में 'ही है' की आवृत्ति; ९वी तथा १०वीं पंक्ति के अंत में 'इला है' की आवृत्ति , ११वीं और १२वीं पंक्ति के अंत में 'लकें' की आवृत्ति; १३वीं, १४वीं, १७वीं तथा १८वीं पंक्ति के अंत में 'आसी' की आवृत्ति ; १५वीं और १६ वीं पंक्ति के अंत में 'क' की आवृत्ति; १ली पंक्ति में 'ह, ए, ई स,' २री पंक्ति में 'क, ई, आ, व,' ३री पंक्ति में 'स, ई, आ, ल,' ४थी पंक्ति में 'क, ण, स, आ, र ई,' ९वीं पंक्ति मे 'उ, क, र', १० वीं पंक्ति में 'ए, आ,' ११वीं पंक्ति में 'ई, ध, अ,' १२वीं पक्ति में 'आ, क, स, इ, ल,' १३वी पंक्ति में 'इ, श म, ख, आ, ई,' १४वीं पंक्ति मे 'व, र, श, आ, इ, ई' १५वीं पंक्ति में 'ण, न, में है, आ, य,' १६वीं पंक्ति मे 'ई व त आ स'

१७वी पंक्ति मे 'ज, ल, आ, न,' १८वीं पंक्ति में 'न, ज, र क' की आवृत्ति तथा अत्यंत सर पदावली का प्रयोग महत्वपूर्ण है ।

इस प्रकार कवि नरेन्द्र शर्मा की प्रस्तुत कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्या होकर आस्वाद्य बन गयी है ।

(१६) ज़हर तो कुछ भी नहीं, जान मेरी लेने के लिए
अदा है तेरी काफी, जान मेरे लेने के लिए !
क्या कहूँ मै तुझे हंसगामिनी या गजगामिनी ?
चाल भी है तेरी काफी, जान मेरी लेने के लिए !
है लचकती तू या देती झटका मेरे मन को जोर से ?
लचकन है तेरी काफ़ी, जान मेरी लेने के लिए !
है देखती तू तिरछा या चीरती कटार से दिल मेरा ?
नज़र है तेरी काफी, जान मेरी लेने के लिए !
है मुस्काती तू नाज़ से या फाँसती जाले में मुझे ?
मुस्कान है तेरी काफ़ी, जान मेरी लेने के लिए !
शर्मीली कहूँ तुझे या कहूँ लाडली मस्तानी ?
शर्म भी है तेरी काफ़ी, जान मेरी लेने के लिए !
जानता न 'ज्ञानराज,' तू क्यों है ऐंठबाज़ चतुर शिकारी ?
ऐंठ भी है तेरी काफ़ी, जान मेरी लेने के लिए !

-डॉ. ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड 'राजवंश' (अदा है तेरी काफी)

कवि डॉ. ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड 'राजवंश' की प्रस्तुत कविता 'कलार्थरूपी ौन्दर्य' से व्याप्त है । इस कविता (कलाकृति) की रचना जिन वाक्यों के संयोग से हुई है, । वाक्य इस प्रकार हैं -

(अगर तू मेरी जान लेना ही चाहती है, तो) मेरी जान लेने के लिए जहर तो कुछ ी नहीं (है) ! मेरी जान लेने के लिए तेरी अदा (ही) काफी है !

क्या मैं तुझे हंसगामिनी या गजगामिनी कहूँ ? (क्योंकि) जान मेरी लेने के लिए तेरी ाल भी काफ़ी है !

तू लचकती है या मेरे मन को जोर से झटका देती (है) ? (क्योंकि) जान मेरी लेने ‍े लिए तेरी लचकन (भी) काफ़ी है !

तू (मेरी ओर) तिरछा देखती है या मेरा दिल कटार से चीरती (है) ? (क्योंकि) ान मेरी लेने के लिए तेरी नज़र (भी) काफ़ी है ! तू (मुझे देखकर) नाज से मुस्काती है । मुझे जाल में फाँसती (है) ? (क्योंकि) जान मेरी लेने के लिए तेरी मुस्कान (भी) काफी !

(मै) तुझे शर्मीली कहूँ या लाडली मस्तानी कहूँ ? (क्योंकि) मेरी जान लेने के लिए री शर्म भी काफ़ी है !

'ज्ञानराज' नही जानता कि तू ऐंठबाज़ चतुर शिकारी क्यों है ? (वास्तव में) मेरी

जान लेने के लिए तेरी ऐंठ भी काफ़ी है !

उपर्युक्त वाक्य-संयोग रूपी कविता (कलाकृति) में व्याप्त 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है-

(अ) भावात्मक अर्थ : - इस कविता मे प्रेमी और प्रेमिका इन दोनों का पारस्परिक प्रेम-भाव व्यक्त हुआ है । दोनों भी एक -दूसरे को अपना प्रेम-भाव जताने के लिए बड़ी चतुराई से काम ले रहे है । प्रेमिका तो ऐसी चतुराई से काम लेती है कि बेचारे प्रेमी का दिल बार बार घायल होने लगता है । इसी कारण से प्रेमी प्रेमिका से एक-एक प्रश्न पूछता जा रहा है और स्वयं ही उत्तर भी देता जा रहा है ।

(आ) विचारात्मक अर्थ :- इस कविता में महत्वपूर्ण विचार यह है कि अपने प्रेम की सफलता के लिए प्रेमी और प्रेमिका दोनों को भी बड़ी समझदारी से एक-दूसरे को पहचान लेना आवश्यक होता है । ऐसा करना दोनों के लिए भी हितकर होता है ।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ :- यहाँ उत्तम पुरुष, एक वचन, पुल्लिंग सर्वनाम 'मैं' के रूप में स्वयं कवि ने अपनी कल्पना की है और मध्यम पुरुष, एक वचन, स्त्रीलिंग सर्वनाम 'तू' के रूप में अपनी प्रेमिका की कल्पना की है । संपूर्ण 'कविता' कवि रूपी प्रेमी का रमणीय (कुतूहलवर्धक) कथन बन गयी है । इस कथन रूपी कविता में प्रेमी के द्वारा स्वयं ही प्रश्न उठाना और स्वयं ही उसका उत्तर देने की कल्पना बहुत रोचक है । प्रेमी की यह कल्पना अत्यंत रमणीय है कि प्रेमिका की प्रत्येक क्रिया को अपने लिए घायल करने वाली क्रिया मानना । तभी तो प्रेमी ने अपनी प्रेमिका में 'चतुर शिकारी' की कल्पना की है ।

इस प्रकार प्रस्तुत कविता में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' का केन्द्र प्रेमी और प्रेमिका के द्वारा अपना प्रेम-भाव एक-दूसरे को बड़ी चतुराई से जताने की इच्छा है । वास्तव में यह इच्छा किसी भी स्थल के और किसी भी काल के प्रेम-कर्ताओं की इच्छा हो सकती है । इसी संभाव्यता रूपी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' आप से आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में 'ऐंठबाज़ चतुर शिकारी' के रूप मे प्रियतमा का दृश्य बिम्ब उभरा है । इस दृष्टि से प्रियतमा का हंस या हाथी की गति से चलना, चलते हुए लचकना, प्रेमी की ओर तिरछी नज़र से देखना, मुस्काना, शर्माना तथा ऐंठबाज (अकड़बाज़) बनना महत्वपूर्ण है । इस कविता मे प्रियतमा की विभिन्न अदाओं से घायल होते रहे बेचारे प्रेमी का भी दृश्य बिम्ब (बोलने वाले के रूप में) उभरा है । इस प्रकार की बिम्बात्मकता रूपी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' बिम्बात्मक रूपी दृश्यमानता अर्थात् रूपात्मकता के कारण 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है । इस दृष्टि से यहाँ प्रियतमा की चलचित्र जैसी क्रियाएँ महत्वपूर्ण हैं । फलस्वरूप इस कविता में 'रूपात्मक अर्थ' को प्रभावशाली बनाने

वाली चलचित्र-सी रूपात्मकता आ गयी है । इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अभिव्यक्त है और पूरी कविता अपेक्षित वाक्यों के संयोग के रूप में अभिव्यक्ति (कलाकृति) है । इससे यहाँ 'कलार्थ' और 'कविता' (वाक्य-संयोग रूपी कलाकृति) में 'एकरूपता' की स्थापना हुई है । इसीलिए प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'एक रूप अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के कारण 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । साथ ही प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'श्रृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के आधार पर 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसी विशेषता के कारण प्रस्तुत कविता मे व्याप्त 'कलार्थ' से सबंधित कुछ संभाव्य अर्थ निकल सकते हैं । प्रियतमा की प्यार भरी अदाएँ (मोहक चेष्टाएँ) अपने प्रेमी को अधिक से अधिक घायल बनाने के लिए पर्याप्त (काफी) होती है; इसके लिए ज़हर की आवश्यकता नहीं होती । इस दृष्टि से यहाँ 'जान मेरी लेने के लिए' पदबंध का अर्थ होता है - 'मुझे घायल बनाने के लिए ।' यहाँ 'मुझे' रूप से 'प्रेमी को' इस रूप का अर्थबोध होना स्वाभाविक है । इस प्रकार की वास्तविकता के कारण अपने प्रेमी को अधिकाधिक घायल करने के लिए प्रियतमा की हंस या हाथी जैसी डौलदार एवं मंदगति चाल; नखरेबाज लचकन; चुलबुली तिरछी नजर; मदमाती मुस्कान तथा मनमोहक शर्म पर्याप्त है । प्रेमी को घायल करने के रूप में प्रेमी का शिकार करने के लिए इन अदाओं रूपी शस्त्रों के बल पर ही यहाँ प्रियतमा 'ऐंठबाज चतुर शिकारी' बन गयी है । वास्तव में प्रेमी को घायल करने वाली प्रियतमा की ऐंठ (अकड़) कुछ और ही है । प्रेम में ऐसा होना स्वाभाविक ही है । तभी तो प्रेम-सम्बन्ध अत्यधिक मनोरम एवं सुखद बना रहता है। इस प्रकार प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित सघनता रूपी विशेषता के आधार पर अपने आप 'श्रृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित सघनता के कारण प्रभावात्मकता रूपी विशेषता से युक्त होकर 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी श्रृंखलित सघनता के कारण प्रभावात्मकता रूपी विशेषता से युक्त होकर 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

इस कविता में व्याप्त 'कलार्थ' उपर्युक्त सभी विशेषताओं से सम्पन्न होने के कारण असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'सौन्दर्य' है । यह 'सौन्दर्य' ही आनन्दप्रदान करने की अपनी विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है । यह 'आनन्दप्रद अर्थ' प्रस्तुत कविता के रूप में 'कलानन्द' की अनुभूति कराने में समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है । प्रेम करने वालों का एक-दूसरे को अपना प्रेम-भाव जताने की इच्छा रखना और उसी के अनुकूल भावबोधक क्रियाएँ करते रहना एक प्रकार का शाश्वत मूल्य है । इसीलिए प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' अर्थात् 'कलामूल्यात्मक अर्थ' अपने आप महत्त्वपूर्ण 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

तीव्र भावाश्रय के कारण प्रस्तुत कविता में व्याप्त 'कलार्थ' विशिष्ट लयबद्धता, गेयता, सगीतात्मकता, श्रुतिमधुरता तथा नादसौन्दर्य से युक्त होकर अधिकाधिक रमणीय बन गया है । इस दृष्टि से प्रस्तुत कविता में १ली २री ४थी ६ठी ८वीं १२वीं तथा १४वीं इन सब

पंक्तियों के अंत में 'जान मेरी लेने के लिए 'पदबंध की आवृत्ति; ५वी, ७वीं तथा ९वी इन पंक्तियों के आरंभ में 'है' क्रियापद की आवृत्ति; २री, ४थी, ६ठी, ८वीं, १०वीं, १२वीं तथा १४वीं इन पंक्तियों के प्रारंभिक पदबंध में 'है तेरी काफी' पदबंध की आवृत्ति; ३री पक्ति मे 'क' और 'गामिनी' पद की आवृत्ति; ५वीं पंक्ति में 'त, ई, क, म, र. ए, ओ' की आवृत्ति, ७वीं पंक्ति में 'त, ई, र, आ' की आवृत्ति; ९वीं पंक्ति में 'म, उ, स, आ, त, ए' की आवृत्ति ; ११वी पंक्ति में 'ई, कहूँ, ल, त आ' की आवृत्ति; १३वीं पंक्ति में 'आ, न, ज, र, क' की आवृत्ति तथा सपूर्ण कविता में सहज सुन्दर भाषा का प्रयोग महत्वपूर्ण है ।

इस प्रकार कवि डॉ. ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड 'राजवंश' की प्रस्तुत कविता 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर सदैव के लिए आस्वाद्य बन गयी है, उत्कृष्ट बन गयी है ।

डॉ. ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड 'राजवंश' की 'अदा है तेरी काफ़ी' नामक प्रस्तुत कविता में जो 'संगीतात्मकता से संपन्न नाद-सौन्दर्य' है, वह इस कविता की गज़ल-सदृश्य वाक्य-संयोजन रूपी रचना में है ।

इस कविता की रचना चौदह पंक्तियों में पूर्ण हुई है । गज़ल की रचना एक से अधिक शेरों के सहयोग से होती है । प्रत्येक 'शेर' की रचना दो पंक्तियों के आधार पर होती है । इसलिए गज़ल जितनी पंक्तियों में पूर्ण होती है उन पंक्तियों की संख्या सम होती है । 'अदा है तेरी काफ़ी' यह कविता भी चौदह पंक्तियों में पूर्ण होकर सम संख्या की पंक्तियों में ही पूर्ण हुई है दो पंक्तियों के परिमाण के आधार पर प्रस्तुत कविता के शेर-सदृश्य सात भाग हैं । पहला भाग 'मतला' के समान अर्थात् गज़ल के पहले शेर के समान है । इसीलिए प्रस्तुत कविता की पहली दोनों पंक्तियों में 'ई' (प्रथम पंक्ति में 'नहीं' शब्द में और द्वितीय पंक्ति में 'काफ़ी' शब्द में) 'काफ़िया' का पालन हुआ है । तत्पश्चात् चौथी, छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं तथा चौदहवीं पंक्ति में भी 'काफी' शब्द के साथ 'ई' काफ़िया का पालन हुआ है ।

इस कविता की पहली दोनों पंक्तियों में 'ई' काफ़िया के बाद अंत में 'जान मेरी लेने के लिए' इस रदीफ़ का पालन हुआ है । तत्पश्चात् चौथी,छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं तथा चौदहवीं पंक्ति में भी 'ई' काफ़िया के बाद अंत में 'जान मेरी लेने के लिए' रदीफ़ का पालन हुआ है । इस कविता के 'मक़ता-सदृश्य अंतिम भाग में स्वयं कवि का 'ज्ञानराज' यह नाम प्रयुक्त हुआ है । इस तरह प्रस्तुत कविता गज़ल सदृश्य होने के कारण भी इसमें व्याप्त 'कलार्थरूपी सौन्दर्य' बहुत ही रमणीय है ।

९. तात्पर्य - यहाँ तक उदाहरण के रूप में सोलह पद्य-कृतियों में व्याप्त 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' का विवेचन किया गया है । इस विवेचन से 'तात्पर्य' के रूप में कुछ विशेष बातें समझ में आ जाती हैं ।

(१) मुक्तक रूपी पद्य-कृति अर्थात् काव्यकृति अर्थात् कलाकृति 'वाक्यों के संयोग से ही अस्तित्व में आ जाती है । इसका अर्थ यह हुआ कि 'वाक्यो का संयोग' है, तो मुक्तकरूपी पद्य-कृति है और वाक्यो का संयोग नहीं है, तो मुक्तक रूपी पद्य-कृति भी नहीं है ।

(२) मुक्तक रूपी पद्य-कृति 'अपेक्षित वाक्यों के संयोग' से ही अस्तित्व में आ जाती है । मुक्तक रूपी पद्य-कृति का सृजन करने वाला स्रष्टा, निर्माता,, रचयिता,, रचनाकार, कलाकार, मुक्तककार अर्थात्, कवि के रूप में विशेष वक्ता या लेखक होता है। यह विशेष वक्ता या लेखक अपने मानस में उभरे हुए 'कलार्थ' को अपेक्षित तथा यथायोग्य वाक्यों के संयोग से ऐसा रूप प्रदान करता है ,जिससे अपने आप पद्य-कृति, काव्यकृति अर्थात् कलाकृति का सृजन हो जाता है । इस प्रकार यहाँ पर 'अपेक्षित वाक्यों के संयोग' का अर्थ यह है कि पद्य-कृति अर्थात् अभिव्यक्ति के रूप में 'कलार्थ' को अभिव्यक्त करने के लिए कलाकार जितने वाक्यों के संयोग की अपेक्षा कर सकता है उतने ही वाक्यों का संयोग/साथ ही 'अपेक्षित वाक्यों के संयोग' का दूसरा एक सकारात्मक अर्थ यह है कि कलाकार अभिव्यक्ति (पद्य-कृति) के रूप में 'कलार्थ' को अभिव्यक्त करने के लिए जिन वाक्यों के संयोग की अपेक्षा कर सकता है, उन वाक्यों का संयोग/इस प्रकार मुक्तक रूपी पद्य-कृति अर्थात् काव्यकृति अर्थात् कलाकृति का 'अपेक्षित वाक्यो का संयोग' बनकर रहना ही समुचित होता है ।

(३) जो मुक्तक रूपी पद्य-कृति अर्थात् कलाकृति 'अपेक्षित वाक्यों का संयोग' बनकर रहती है, उसका प्रत्येक वाक्य 'कलार्थ' की दृष्टि से अर्थपूर्ण होता है । वास्तव में 'कलार्थ' की दृष्टि से 'अपेक्षित वाक्यों के संयोग' में से प्रत्येक वाक्य को अर्थपूर्ण होना अत्यावश्यक होता है । इसका अर्थ यह हुआ कि मुक्तक रूपी पद्य-कृति अर्थात् कलाकृति अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यों के संयोग के रूप में ही अस्तित्व में आकर 'कलार्थ' से व्याप्त होकर रहती है ।

(४) मुक्तक रूपी पद्य-कृति अर्थात् कलाकृति 'पूर्ण रूप से 'कलार्थ' से व्याप्त रहती है । इसीलिए पद्य-कृति रूपी कलाकृति के भीतर जो भी 'वाक्यार्थ' होता है, 'पदार्थ' होता है, 'पद-बंधार्थ' होता है तथा 'शब्दार्थ' होता है उन सबका लक्ष्य 'कलार्थ' को बनाए रखना ही होता है । उन सब को कलार्थमय बनकर रहना अनिवार्य होता है । उन सबकी सार्थकता कलार्थमय बनकर रहने में ही है । इसका अर्थ यह हुआ कि पद्य-कृति रूपी कलाकृति अर्थात् अभिव्यक्ति 'कलार्थ' एकरूप बनकर रहते हैं । इससे यही स्पष्ट होता है कि अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण 'वाक्यों का संयोग' कलार्थ से व्याप्त होकर 'एक सश्लिष्ट वाक्य' के रूप में ही 'कलाकृति' अर्थात् 'काव्यकृति' अर्थात् 'मुक्तक पद्य-कृति' बनकर रहता है ।

(५) 'एक संश्लिष्ट वाक्य' के रूप में जो मुक्तक रूपी पद्य-कृति (कलाकृति) बनी रहती है, उसमें कभी सरल वाक्यों का ही संयोग बना रहता है, कभी सरल वाक्य और मिश्र वाक्य का संयोग बना रहता है, तो कभी सरल वाक्य, मिश्र वाक्य तथा संयुक्त वाक्य का सयोग बना रहता है । इसका अर्थ यह है कि मुक्तक रूपी पद्य-कृति के बने रहने के लिए तीनों भी वाक्य-प्रकार 'कलार्थ' से व्याप्त होकर 'एक संश्लिष्ट वाक्य' बनकर रह जाते हैं । अतः मुक्तक रूपी पद्य-कृति (कलाकृति) के बने रहने के लिए या तो तीनों प्रकार के वाक्यों या दो प्रकार के वाक्यों या एक ही प्रकार के वाक्यों का संयोग अनिवार्य होता है ।

(६) 'कलार्थ' से व्याप्त मुक्तक रूपी पद्य-कृति (कलाकृति) के अस्तित्व के लिए जो अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यों का संयोग' उपयोग मे आता है वह वाक्य

संयोग जिन मूलभूत घटकों पर आधारित होता है, वे मूलभूत घटक इस प्रकार के है अप्रत्यय कर्ता रूपी प्रधान उद्देश्य, सप्रत्यय कर्ता रूपी अप्रधान उद्देश्य, अप्रत्यय मुख्य कर्म रूपी विधेयांग, सप्रत्यय गौण कर्म रूपी विधेयांग, विशेष्य-विशेषण रूपी उद्देश्यांग अथवा विधेयांग, विधेय-विशेषण रूपी विधेयाग, कर्तृपूर्तिरूपी विधेयाग, कर्मपूर्ति रूपी विधेयांग क्रियाविशेषण रूपी विधेय विस्तारक विधेयांग और क्रियापद रूपी मुख्य विधेय/ ये मूलभूत घटक ही अपने अपने विशिष्ट अर्थ का बोधक बने रहने के लिए वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ बने रहते हैं । मुक्तक रूपी पद्य-कृति मे वाक्यार्थ, पदार्थ पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ का लक्ष्य 'कलार्थ' को बनाए रखना ही होता है । दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि मुक्तक रूपी पद्य-कृति में वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ ही संश्लिष्ट होकर 'कलार्थ' बना रहता है ।

(७) मुक्तक रूपी पद्य-कृति में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप में वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ का ही 'संश्लिष्ट रूप' बना रहता है, जिसके परिणामस्वरूप पूरी पद्य-कृति (कलाकृति) भी 'एक संश्लिष्ट वाक्य' का रूप धारण कर लेती है । इस प्रकार की वास्तविकता के कारण पूरी पद्य-कृति में से किसी वाक्य, किसी पद, किसी पदबन्ध या किसी शब्द को हटाया जा नहीं सकता । यदि पूरी पद्य-कृति में से किसी वाक्य, किसी पद, किसी पदबन्ध या किसी शब्द को अलग कर दिया गया, तो 'कलार्थ का संश्लिष्ट रूप' सुरक्षित नहीं रहेगा । तब 'कलार्थ' के संश्लिष्ट रूप' में ऐसी त्रुटि उत्पन्न हो जाएगी, जिससे 'कलार्थ' कुछ अनपेक्षित असंगत तथा विशृंखल अर्थ बन जाएगा । अतः 'कलार्थ' को वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ के आधार पर 'संश्लिष्ट रूप' धारण करके ही पूरी पद्य-कृति मे व्याप्त रहना अनिवार्य है ।

(८) 'कलार्थ' अपने मूल रूप मे भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का 'समन्वित रूप' होता है । मुक्तक रूपी पद्य-कृति के भीतर वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ की संश्लिष्टता में ही भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ 'समन्वित रूप' धारण करके अर्थात् 'कलार्थ' बनकर व्याप्त रहते हैं । इसका अर्थ यह है कि चाहे भावात्मक अर्थ हो,, चाहे कल्पनात्मक अर्थ हो, चाहे विचारात्मक अर्थ हो, चाहे इन तीनों अर्थों का समन्वित रूप हो, चाहे समन्वित रूप वाला 'कलार्थ' हो; इन सबका मूल आधार वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ की संश्लिष्टता ही होती है ।

(९) पद्य-कृति (कलाकृति) में व्याप्त 'कलार्थ' ही अपनी संभाव्यता के बल पर 'विश्वात्मक अर्थ' बना रहता है; अपनी बिम्बात्मकता के बल पर 'बिम्बात्मक अर्थ' बना रहता है; अपनी रूपात्मकता के बल पर 'रूपात्मक अर्थ' बना रहता है , अपनी एकरूपता के बल पर 'एकरूप अर्थ' बना रहता है ; अपनी मौलिकता (नवीनता) के बल पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बना रहता है ; अपनी 'शृंखलित सघनता' के बल पर 'शृंखलित सघन अर्थ' बना रहता है और अपनी प्रभावात्मकता के बल पर 'प्रभावात्मक अर्थ' बना रहता है । अपनी विभिन्न विशेषताओं के बल पर विभिन्न अर्थ बनकर रहने की अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता के कारण 'कलार्थ' अपने आप असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है । यहाँ पर महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि पद्य-कृति (कलाकृति) के भीतर 'कलार्थ' का विश्वात्मक अर्थ

बिम्बात्मक अर्थ, रूपात्मक अर्थ, एकरूप अर्थ, मौलिक अर्थ, श्रृंखलित सघन अर्थ, प्रभावात्मक अर्थ तथा 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहने का भी मूल आधार वाक्यार्थ, पदार्थ पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ की संश्लिष्टता ही है ।

(१०) पद्य-कृति में (कलाकृति मे) 'कलार्थ' का 'सौन्दर्य रूपी अर्थ बनकर रहने का सच्चा अर्थ है उसका 'सौन्दर्य' बनकर रहना । पद्य-कृति (कलाकृति) में यह 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' ही अपनी आनन्द प्रदान करने की विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बना रहता है; अपनी 'कलानन्द' की अनुभूति कराने की विशेषता (क्षमता) के बल पर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है और मनुष्य संबंधी किसी महत्वपूर्ण शाश्वत बात को लेकर जीवन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बनकर रहने की अपनी विशेषता के बल पर 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है । यहाँ पर भी यह महत्वपूर्ण है कि 'कलार्थ' का 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' के रूप में 'सौन्दर्य' बनकर रहना; 'सौन्दर्य' का आनन्दप्रद अर्थ, कलामूल्यात्मक अर्थ तथा जीवनमूल्यात्मक अर्थ बनकर रहना, इन सब का भी मूल आधार वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ की संश्लिष्टता ही है ।

(११) कलाकार (कवि) की भावात्मकता, विचारात्मकता तथा कल्पनात्मकता से अनुप्राणित 'कलार्थ' ही पद्य-कृति (कलाकृति) में वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ के संश्लिष्ट रूप मे असाधारण, असामान्य, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक, रमणीय, आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्यरूपी अर्थ' यानी 'सौन्दर्य' ही बना रहता है । इससे पद्य-कृति' उत्तम, उत्कृष्ट, प्रभावात्मक, महत्वपूर्ण तथा आस्वाद्य बनी रहती है ।

(१२) पद्य-कृति मे तीव्र भावाश्रय के कारण सुकोमल ध्वनि-प्रयोग होता है, ध्वनियों तथा पदो की भी आवृत्ति होती है और सुबोध पदावली का प्रयोग होता है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि पद्य-कृति मे प्रगीतात्मक गत्यात्मकता, लयात्मकता तथा संगीतात्मकता आ जाती है और 'कलार्थ' विशिष्ट नाद-सौन्दर्य से युक्त होकर अधिक रमणीय बना रहता है । ऐसी स्थिति में 'कलार्थ' के रूप में संश्लिष्ट होकर रहने वाले वाक्यार्थ, पदार्थ, पदंबधार्थ तथा शब्दार्थ भी अधिक रमणीय बने रहते हैं ।

(१३) कलाकार (कवि) अपनी कल्पना-शक्ति के बल पर पद्य-कृति में व्याप्त 'कलार्थ' को 'संश्लिष्ट रूप' प्रदान करने वाले वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ मे मानवेतर जीवों (पशुओं, पक्षियों) को लेकर तथा जीवेतर पदार्थों (प्रकृति के विभिन्न अंगों आदि) को भी लेकर 'मानवीय व्यवहार' और 'मानवीय गुणों' की स्थापना करने में सफल हो जाता है । इससे 'कलार्थ' बहुत अधिक रमणीय बना रहता है ।

(१४) बिम्बात्मकता तथा रूपात्मकता इन विशेषताओं के बल पर वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ का 'संश्लिष्ट रूप' यानी 'कलार्थ' आप ही आप पद्य-कृति में चित्रात्मकता एवं चलचित्रात्मकता से युक्त होकर बहुत रमणीय बना रहता है ।

(१५) श्रृखलित सघनता विशेषता के आधार पर वाक्यार्थ, पदार्थ पद-बंधार्थ तथा शब्दार्थ का 'संश्लिष्ट रूप' यानी 'कलार्थ' अनेक सभाव्य अर्थो का बोधक बनकर पद्य-कृति मे अत्यंत रमणीय बना रहता है ।

(१६) मुक्तक रूपी पद्य-कृति (कलाकृति) का उद्देश्य एवं विधेय इन दो मूल आधारभूत घटनों की संश्लिष्टता के रूप में संघटित वाक्यों का संयोग बनकर रहना ; पूरी पद्य-कृति का अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यो के संयोग के आधार पर 'एक सश्लिष्ट वाक्य' बनकर रहना, उसमे वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ के 'संश्लिष्ट रूप' का 'कलार्थ' बनकर रहना , 'एक संश्लिष्ट वाक्य' रूपी भाषिक संघटन मे अपनी विभिन्न विशेषताओं से संयुक्त होकर 'कलार्थ' का 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' यानी 'सौन्दर्य ही बनकर रहना और इस रीति से मुक्तक रूपी पद्य-कृति (कलाकृति) में प्राणतत्व के रूप मे आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' का प्रतिष्ठापित होना काव्य-कला के क्षेत्र में अतिशय महत्व रखता है ।

इस प्रकार 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त हुई मुक्तक रूपी पद्य-कृति अर्थात् काव्य-कृति अर्थात् कला-कृति सदैव के लिए आस्वाद्य एवं महत्वपूर्ण बनकर रहती है ।

१०. कथाश्रित साहित्यकृति और 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य'

ऊपर जिस 'तात्पर्य' के रूप में जिन कुछ विशेष बातों का निर्देश किया गया है उनमें से एकाध-दूसरी बात को छोड़कर लगभग सभी बातें कथाश्रित साहित्यकृति पर भी लागू होती हैं । 'कथाश्रित साहित्यकृति' वह साहित्यकृति होती है, जो किसी न किसी प्रकार की कथा (कथावस्तु) के आधार पर रचित होती है । कथा किसी पात्र के साथ तथा विशिष्ट देश-काल-वातावरण के साथ संबंध रखने वाली होती है। इसी कारण से 'कथा' शब्द का उच्चारण करते ही 'कथा' के साथ जुड़े किसी पात्र और विशिष्ट देश-काल-वातावरण का भी अर्थबोध होता है ।

'कथा' शब्द का उच्चारण करने पर यह भी अर्थबोध होता है कि वह कुछ प्रसगो तथा कुछ घटनाओं के आधार पर बनी हुई होती है । जब कथा कितने भी प्रसंग और कितनी भी घटनाओं के साथ संबंध रखती है तब वह उसी विस्तृत तथा विश्रृंखल अवस्था मे साहित्यकृति की रचना करने में उपयोग में नहीं आ सकती । 'कलार्थ' की दृष्टि से जो प्रसग तथा जो घटनाएँ अत्यावश्यक हैं, उन्हीं का चयन तथा संयोजन करने से ऐसी कथा बन जाती है, जो 'कथावस्तु' का रूप धारण करके साहित्यकृति की रचना का मुख्य आधार बन जाती है । इस प्रकार यहाँ पर 'कथाश्रित साहित्यकृति' का अर्थबोध यह होता है कि कथावस्तु के आधार पर रचित साहित्यकृति ।

जो साहित्यकृति मुख्य रूप से कथावस्तु के आधार पर रचित होती है, उस साहित्यकृति में जो भी कुछ होता है, वह सब कथावस्तु रूपी सूत्र के साथ गूँथा हुआ रहता है । वैसे तो कथावस्तु का केन्द्र 'कलार्थ' ही होता है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि कथावस्तु का अधिक से अधिक अंश 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त रहता है । वास्तव में कथाश्रित साहित्यकृति में 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने के लिए जो जो प्रसंग और जो जो घटनाएँ अत्यावश्यक होती हैं उन्ही के सुसघटन के रूप मे ही कथावस्तु की रचना की जाती है । इससे कथावस्तु 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर ही 'कथाश्रित साहित्यकृति' का मुख्य आधार बन जाती है । तभी तो उस साहित्यकृति को 'कथाश्रित साहित्यकृति' कहा जाता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति में 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने के लिए कथावस्तु जिस प्रकार अत्यावश्यक प्रसंगों तथा अत्यावश्यक घटनाओं का चयन करती है उसी प्रकार कुछ पात्रों का भी चयन करती है । उन पात्रो में से कोई एक पात्र 'मुख्य पात्र' होता है । मुख्य पात्र कोई पुरुष होता है अथवा कोई स्त्री होती है । मुख्य पात्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पात्र होता है । मुख्य पात्र के सन्दर्भ मे ही अन्य पात्रों का महत्त्व होता है । इन सभी पात्रों की संख्या 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने के लिए जितनी अत्यावश्यक होती है, उतनी ही होती है ।

लेकिन कथाश्रित साहित्यकृति मे 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने के लिए पात्रों की अत्यावश्यक संख्या के साथ उनकी चरित्र संबंधी अर्थात् स्वभाव सबधी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ भी अत्यावश्यक होती हैं । विशेषकर जो मुख्य पात्र होता है उसकी चरित्रसंबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ तो बहुत आवश्यक होती हैं । वास्तव मे मुख्य पात्र की चरित्रसबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के सन्दर्भ में ही अन्य पात्रों की भी चरित्रसबंधी विशेषताओं का कुछ महत्त्व होता है। कभी-कभी कथाश्रित साहित्यकृति मे मुख्य पात्र का सम्मान एक से अधिक पात्रो को मिला रहता है । उस स्थिति में कथाश्रित साहित्यकृति में 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने के लिए उन मुख्य पात्रों की चरित्र संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ अत्यावश्यक बनी रहती हैं । जब मुख्य पात्रों की चरित्र संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ अत्यावश्यक बनी रहती हैं, तब इन्ही अत्यावश्यक विशेषताओं के सन्दर्भ में ही अन्य पात्रों की भी चरित्रसंबंधी कुछ विशेषताएँ अत्यावश्यक बनी रहती हैं । मुख्य पात्रों तथा अन्य पात्रो की चरित्र संबंधी महत्त्वपूर्ण कुछ विशेषताएँ भी कथाश्रित साहित्यकृति मे 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने के लिए अत्यावश्यक बनी रहती हैं ।

कथाश्रित साहित्यकृति में अत्यावश्यक पात्रों की जो अनुकूल या प्रतिकूल 'क्रियाएँ' तथा 'बातें' होती हैं, उन सब के मूल मे उन पात्रों की चरित्रसंबंधी महत्त्वपूर्ण तथा अत्यावश्यक विशेषताएँ सक्रिय हुई रहती हैं । तभी तो अत्यावश्यक पात्र सम्पूर्ण कथाश्रित साहित्यकृति मे विभिन्न क्रियाएँ तथा विभिन्न बातें करते हुए रहते हैं । अत्यावश्यक पात्रों का अपनी-अपनी चरित्र संबंधी विशेषताओं के अनुसार विभिन्न क्रियाएँ तथा बातें करते रहना भी कथाश्रित साहित्यकृति मे 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने के लिए अत्यावश्यक हैं ।

कथाश्रित साहित्यकृति में 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने के लिए कथावस्तु जिस प्रकार अत्यावश्यक प्रसंगो, अत्यावश्यक घटनाओं तथा अत्यावश्यक कुछ पात्रो का चयन करती है, उसी प्रकार 'अत्यावश्यक विशिष्ट देश-काल-वातावरण' का भी चयन करती है । कथावस्तु से संबंधित घटनाएँ विशिष्ट देश-काल-वातावरण के सन्दर्भ मे ही घटती रहती हैं और पात्रों की क्रियाएँ तथा बातें भी होती रहती है ।

कथावस्तु की घटनाएँ और पात्र दोनों परस्पराश्रित होते है । कभी कथावस्तु की घटनाएँ पात्रों की क्रियाओं तथा बातों को उकसाती रहती हैं, तो कभी पात्रों की क्रियाएँ और बातें कथावस्तु से संबंधित घटनाओं के घटने का कारण बन जाती हैं। इस तरह कथावस्तु और पात्र दोनो कथाश्रित साहित्यकृति में परस्परावलंमी बने रहते हैं ।

कथावस्तु और पात्र दोनों मिलकर विशिष्ट प्रदेश के और विशिष्ट काल के विशिष्ट

वातावरण के साथ अभिन्न संबंध रखते हैं । वास्तव में प्रदेश-विशेष की जो विशिष्टताएँ होती हैं, उनका प्रभाव वहाँ के विशिष्ट वातावरण पर पड़ा रहता है । साथ ही काल-विशेष की भी जो विशेषताएँ होती हैं, उनका भी प्रभाव वहाँ के विशिष्ट वातावरण पर पड़ा रहता है । इस प्रकार प्रदेश-विशेष की विशिष्टताओ से तथा काल-विशेष की भी विशिष्टताओं से प्रभावित विशिष्ट वातावरण धार्मिक वातावरण हो सकता है; सांस्कृतिक वातावरण हो सकता है; आर्थिक वातावरण हो सकता है; पौराणिक वातावरण हो सकता; ऐतिहासिक वातावरण हो सकता है या किसी भी प्रकार का वातावरण हो सकता है । ये सभी प्रकार के वातावरण विशिष्ट रीति-रिवाजो से, विविध समस्याओं से तथा संघर्ष से भी युक्त होते हैं । विशिष्ट रीति-रिवाज, विविध समस्याएँ तथा संघर्ष इन सभी का प्रभाव कथावस्तु की घटनाओ की विशिष्टताओं तथा पात्रो की चरित्रसबंधी विशेषताओं पर पड़ा रहता है । इस प्रकार की वास्तविकता के कारण 'कथाश्रित साहित्यकृति' मे पात्रों की रहन-सहन, वेशभूषा, केशभूषा, अलंकारभूषा, बोल-चाल आदि पर विशिष्ट वातावरण का प्रभाव पड़ा रहता है । पात्रो के विचारों, इरादों, उनकी इच्छाओं, आकांक्षाओं तथा कल्पनाओं पर भी विशिष्ट वातावरण का प्रभाव पड़ा रहता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति में विशिष्ट वातावरण से न कथावस्तु की घटनाएँ अलग रह सकती हैं, न पात्र अलग रह सकते हैं । विशिष्ट वातावरण के साथ घटनाओं तथा पात्रों का अनुकूल संबंध अथवा प्रतिकूल संबंध बना रहता है । घटनाओं के सन्दर्भ में 'पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया' के फलस्वरूप विशिष्ट वातावरण के साथ का अनुकूल संबंध परिवर्तित होकर अनुकूल संबंध बन सकता है अथवा प्रतिकूल संबंध परिवर्तित होकर प्रतिकूल संबंध बन सकता है । विशिष्ट वातावरण के साथ चाहे अनुकूल संबंध हो, चाहे प्रतिकूल संबंध हों, वह संबंध कुछ बनने के लिए, कुछ करके दिखाने के लिए, अपना प्रभाव व्यक्त करने के लिए पात्रों की दृष्टि से एक प्रकार की कसौटी बनकर रहता है । वह कसौटी मुख्य पात्र की दृष्टि से तो बहुत महत्त्वपूर्ण होती है ।

स्पष्ट है कि कथाश्रित साहित्यकृति में कथावस्तु, पात्र और विशिष्ट वातावरण का संघटन बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है और यह संघटन ही कथाश्रित साहित्यकृति में 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने मे अत्यावश्यक बना रहता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति के रूप में महाकाव्य, खंडकाव्य और गीतिनाटक भी 'पद्य कलाकृति' बनकर रहते हैं । कथाश्रित साहित्यकृति के रूप में उपन्यास, कहानी, एकांकी, नाटक आदि 'गद्य कलाकृति' बनकर रहते हैं ।

कथाश्रित साहित्यकृति चाहे पद्य कलाकृति हो, चाहे गद्य कलाकृति हो वह तो 'भाषा के रूप' में ही अस्तित्व में आती है । कथाश्रित साहित्यकृति में जो कथावस्तु, पात्र और विशिष्ट वातावरण का अत्यत महत्त्वपूर्ण संघटन बना रहता है, वह तो 'भाषा के रूप' में ही बना रहता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति का 'भाषा के रूप' में अस्तित्व मे आने का अर्थ यह है कि वाक्यों के संयोग के रूप में ही कथाश्रित साहित्यकृति का अस्तित्व में आना। इसका अर्थ यह है कि वाक्यों का संयोग है, तो कथाश्रित साहित्यकृति है और वाक्यो का संयोग नहीं है, तो कथाश्रित साहित्यकृति भी नहीं है ।

कथाश्रित साहित्यकृति अपेक्षित वाक्यो के संयोग से ही अस्तित्व में आती है। कथाश्रित साहित्यकृति की रचना करने वाला रचनाकार, कलाकार, कथाकार, नाटककार अर्थात् साहित्यकार के रूप मे विशेष वक्ता या लेखक होता है । वह विशेष वक्ता या लेखक अपने मानस में उभरे हुए 'कलाकारार्थ' के अपेक्षित और यथोचित वाक्यों के संयोग से ऐसा रूप प्रदान करता है, जिससे अपने आप कथाश्रित साहित्यकृति का सृजन हो जाता है । साहित्यकार अभिव्यक्त्य 'कलार्थ' की अभिव्यक्ति के लिए जिन वाक्यों की और जितने वाक्यों की अपेक्षा करता है, उन्ही वाक्यों तथा उतने ही वाक्यों के संयोग का प्रयोग करता है और कथाश्रित साहित्यकृति अस्तित्व मे आ जाती है । इसलिए कथाश्रित साहित्यकृति का 'अपेक्षित वाक्यो का संयोग' बनकर रहना स्वाभाविक है ।

जो कथाश्रित साहित्यकृति 'अपेक्षित वाक्यों का संयोग' बनकर रहती है, उसका प्रत्येक वाक्य 'कलार्थ' की दृष्टि से अर्थपूर्ण होता है । वास्तविकता तो यह है कि 'कलार्थ' की दृष्टि से 'अपेक्षित वाक्यों के संयोग' में से प्रत्येक वाक्य को अर्थपूर्ण होना अत्यावश्यक होता है । इसका अर्थ यह है कि कथाश्रित साहित्यकृति अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यो के रूप में ही अस्तित्व में आती है और 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर रहती है । कथावस्तु, पात्र और विशिष्ट वातावरण का सुसंघटन अपेक्षित, अत्यावश्य तथा अर्थपूर्ण वाक्यो के संयोग के रूप में ही कथाश्रित साहित्यकृति बनकर रहता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति पूर्ण रूप से 'कलार्थ' से व्याप्त रहती है । इसी विशेषता के कारण कथाश्रित साहित्यकृति में जो भी वाक्यार्थ होता है, जो भी पदार्थ होता है, जो भी पदबंधार्थ होता है तथा जो भी शब्दार्थ होता है, उन सब का लक्ष्य 'कलार्थ' को बनाए रखना ही होता है । तभी तो उन सब के संयोग के रूप में जो 'कलार्थ' बनकर रहता है, वह आरम्भ में अभिव्यक्त्य होता है, लेकिन अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यों के संयोग के रूप में अभिव्यक्त होने पर वह 'कलार्थ' कथाश्रित साहित्यकृति के साथ एकरूप होकर रहता है । इस स्थिति में सम्पूर्ण कथाश्रित साहित्यकृति 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' बनकर रहती है, जिससे 'कलार्थ' व्याप्त हुआ रहता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति का 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' के रूप में बने रहने का अर्थ है उसमें सैकड़ो, हजारो वाक्यों के संयोग के रूप मे सरल वाक्यों, मिश्र वाक्यों तथा संयुक्त वाक्यो के संयोग का बने रहना । स्पष्ट है कि कथाश्रित साहित्यकृति के बने रहने के लिए तीनों भी वाक्य प्रकार सैकडों, हजारों की संख्या में 'कलार्थ' से व्याप्त होकर 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' बने रहते हैं ।

'कलार्थ' से व्याप्त कथाश्रित साहित्यकृति के अस्तित्व के लिए जो अपेक्षित अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यों का संयोग उपयोग में आता है, वह वाक्य-संयोग जिन मूलभूत घटकों पर आधारित होता है, वे मूलभूत घटक इस प्रकार के है- अप्रत्यय कर्ता रूपी प्रधान उद्देश्य, सप्रत्यय कर्ता रूपी अप्रधान उद्देश्य, अप्रत्यय मुख्य कर्म रूपी विधेयांग, सप्रत्यय गौण कर्म रूपी विधेयांग, विशेष्य-विशेषण रूपी उद्देश्यांग अथवा विधेयाग, विधेय-विशेषण रूपी विधेयांग, कर्तृपूर्ति रूपी विधेयाग, कर्मपूर्ति रूपी विधेयाग रूपी विधेयाग और क्रियापद रूपी मुख्य विधेय इस प्रकार

के मूलभूत घटक ही अपने अपने विशिष्ट अर्थ का बोधक बने रहने के लिए वाक्यार्थ, पदार्थ पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ बने रहते हैं । कथाश्रित साहित्यकृति में भी वाक्यार्थ, पदार्थ पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ का लक्ष्य 'कलार्थ' को बनाए रखना ही होता है । वास्तव मे कथाश्रित साहित्यकृति मे वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ ही संश्लिष्ट होकर 'कलार्थ' बना रहता है।

कथाश्रित साहित्यकृति मे व्याप्त 'कलार्थ' अपने यथार्थ रूप में वाक्यार्थ, पदार्थ पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ का ही 'संश्लिष्ट रूप' बना रहता है, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण कथाश्रित साहित्यकृति भी 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' का रूप धारण कर लेती है । इस प्रकार की स्थिति के कारण सम्पूर्ण कथाश्रित साहित्यकृति में किसी भी वाक्य को, किसी भी पद को, किसी भी पदबंध को तथा किसी भी शब्द को अपेक्षित, अत्यावश्यक एवं अर्थपूर्ण बनकर रहना अनिवार्य होता है । तभी सभी वाक्य, सभी पद, सभी पदबंध और सभी शब्द कथाश्रित साहित्यकृति मे 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखते हुए 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' बनकर रहेंगे । वास्तव में 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' बनकर रहने में ही कथाश्रित साहित्यकृति की समीचीन सार्थकता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति में व्याप्त 'कलार्थ' अपने मूल रूप में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का 'समन्वित रूप' होता है । वास्तव में वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ की संश्लिष्टता के रूप मे ही कथाश्रित साहित्यकृति में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप आप ही आप 'कलार्थ' बनकर रहता है । यथार्थता तो यह है कि कथाश्रित साहित्यकृति में वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ की संश्लिष्टता ही भावात्मक अर्थ का भी मूल आधार होती है; विचारात्मक अर्थ का भी मूल आधार होती है; कल्पनात्मक अर्थ का भी मूल आधार होती है; इन तीनों अर्थों के समन्वित रूप का भी मूल आधार होती है और तीनों अर्थो के समन्वित रूपवाले 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' का भी मूल आधार होती है ।

कथाश्रित साहित्यकृति में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी संभाव्यता के आधार पर 'विश्वात्मक अर्थ' बना रहता है; अपनी कथावस्तु, पात्र और विशिष्ट वातावरण की महत्त्वपूरण संघटना रूपी बिम्बात्मकता के आधार पर 'बिम्बात्मक अर्थ' बना रहता है, अपनी कथावस्तु, पात्र और विशिष्ट वातावरण की महत्त्वपूर्ण संघटना रूपी रूपात्मकता के आधार पर 'रूपात्मक अर्थ' बना रहता है; अपनी अभिव्यक्त्यता और कथाश्रित, पात्राश्रित तथा विशिष्ट वातावरणाश्रित अभिव्यक्ति की एकरूपता के आधार पर 'एकरूप अर्थ' बना रहता है; अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के आधार पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बना रहता है· अपनी 'कलार्थ' से संबंधित एक से अधिक अर्थों का बोध कराने वाली श्रृंखलित सघनता के आधार पर 'श्रृखलित सघन अर्थ' बना रहता है और अपनी प्रभावात्मकता के आधार पर 'प्रभावात्मक अर्थ' बना रहता है । अपनी भिन्न-भिन्न विशेषताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न अर्थ बनकर रहने की अपनी सब से अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता के कारण 'कलार्थ' आप ही आप असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बना रहता है । यहाँ पर महत्त्वपूर्ण यथार्थता यह भी है कि कथाश्रित

साहित्यकृति मे 'कलार्थ' का विश्वात्मक अर्थ, बिम्बात्मक अर्थ, प्रभावात्मक अर्थ तथा 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहने का भी मूल आधार वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ की संश्लिष्टता ही है । कथाश्रित साहित्यकृति मे 'कलार्थ' का 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बनकर रहने का सही अर्थ है, उस 'कलार्थ' का सौन्दर्य' बनकर रहना । कथाश्रित साहित्यकृति में यह 'सौन्दर्य' ही (सौन्दर्य रूपी अर्थ ही) अपनी आनन्द प्रदान करने की विशेषता के आधार पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बना रहता है; अपनी 'कलानन्द' की अनुभूति कराने की विशेषता (क्षमता) के आधार पर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है और मनुष्य से संबंधित किसी महत्त्वपूर्ण शाश्वत बात को लेकर जीवन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बनकर रहने की अपनी विशेषता के आधार पर 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बना रहता है । यहाँ पर भी यही महत्त्वपूर्ण है कि 'कलार्थ' का 'सौन्दय रूपी अर्थ' के रूप में 'सौन्दर्य' बनकर रहना; सौन्दर्य' का आनन्दप्रद अर्थ, कलामूल्यात्मक अर्थ तथा जीवनमूल्यात्मक अर्थ बनकर रहना; इन सब का भी मूल आधार वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ की संश्लिष्टता ही है।

साहित्यकार की भावात्मकता, विचारात्मकता तथा कल्पनात्मकता से परिपुष्ट 'कलार्थ' ही कथाश्रित साहित्यकृति मे वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ के संश्लिष्ट रूप में असाधारण, असामान्य, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक, रमणीय,, आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवन मूल्यात्मक 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' यानी 'सौन्दर्य' ही बना रहता है। इसके परिणामस्वरूप कथाश्रित साहित्यकृति उत्तम, उत्कृष्ट, प्रभावात्मक, महत्वपूर्ण तथा आस्वाद्य बनी रहती है ।

महाकाव्य, खंडकाव्य जैसी पद्यमय कथाश्रित साहित्यकृति में तीव्र भावाश्रय के कारण सुकोमल ध्वनि-प्रयोग होता है; ध्वनियों तथा पदों (और शब्दों) की भी आवृत्ति होती है और सुबोध पदावली का प्रयोग होता है । इससे पद्यमय कथाश्रित साहित्यकृति में गीतात्मक गत्यात्मकता, लयात्मकता तथा संगीतात्मकता आ जाती है और 'कलार्थ' विशिष्ट नाद-सौन्दर्य से युक्त होकर अधिक रमणीय बना रहता है। इस स्थिति में 'कलार्थ' के रूप में संश्लिष्ट होकर रहने वाले वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ भी अधिक रमणीय बनकर रहते हैं ।

साहित्यकार अपनी 'कल्पना-शक्ति' के आधार पर कथाश्रित साहित्यकृति में व्याप्त 'कलार्थ' को संश्लिष्ट रूप प्रदान करने वाले वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ में कथावस्तु की घटनाओ, पात्रों की चरित्र संबंधी विशेषताओं के आधार पर क्रियाओं एवं बातो और विशिष्ट वातावरण के साथ मानवेतर जीवों के और जीवेतर पदार्थों के मानव जैसे गुणो तथा व्यवहारों की भी स्थापना करने में सफल हो जाता है । इससे 'कलार्थ' अत्यधिक रमणीय बना रहता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति में कथावस्तु, पात्र तथा विशिष्ट वातावरण के महत्वपूर्ण सघटन के रूप मे बिम्बात्मकता तथा रूपात्मकता के आधार पर वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ का संश्लिष्ट रूप यानी 'कलार्थ' अपने आप चित्रात्मकता एवं चलचित्रात्मकता से युक्त होकर अत्यंत रमणीय बना रहता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति में शृंखलित सघनता के बल पर वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ का 'संश्लिष्ट रूप' यानी 'कलार्थ' कई संभाव्य अर्थो का बोधक बनकर बहुत

रमणीय बना रहता है ।

कथाश्रित साहित्यकृति का उद्‌देश्य तथा विधेय इन दो मूल आधारभूत घटकों की संश्लिष्टता के रूप में संघटित वाक्यों का संयोग बनकर रहना , संपूर्ण कथाश्रित साहित्यकृति का अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यों के संयोग के बल पर 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' बनकर रहना, उस 'संश्लिष्ट महावाक्य' में वाक्यार्थ, पदार्थ, पदबंधार्थ तथा शब्दार्थ के 'संश्लिष्ट रूप' का 'कलार्थ' बनकर रहना; 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' रूपी 'भाषिक संघटन' मे अपनी भिन्न-भिन्न विशेषताओं से युक्त होकर 'कलार्थ' का आप ही आप 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' यानी 'सौन्दर्य' ही बनकर रहना और इस प्रकार से कथाश्रित साहित्यकृति में प्राणतत्व के रूप में आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' का प्रतिष्ठित होना साहित्य-कला के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व रखता है ।

यहाँ पर ज्ञात होता है कि 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त हुई कथाश्रित साहित्यकृति निरंतर आस्वाद्य और महत्वपूर्ण बनकर रहती है । नाटककार मोहन राकेशलिखित 'लहरो के राजहंस' नाटक एक ऐसी कथाश्रित साहित्यकृति है, जो 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर सदैव के लिए आस्वाद्य तथा महत्वपूर्ण बनकर रही है ।

११. मोहन राकेश का लहरों के राजहंस नाटक -

नाटककार मोहन राकेश लिखित 'लहरों के राजहंस' नाटक का शीर्षक ऐसे निश्चयार्थ, कर्तृवाच्य, कर्तृपूरकीय अकर्मक तथा कर्तरी प्रयोग के वाक्य का अर्थबोधक है, जो वाक्य 'लहरों के राजहंस' इस कर्तृपूरकीय विधेय-विशेषण से युक्त है । लहरों के राजहंस' इस कर्तृपूरकीय विधेय-विशेषणात्मक शीर्षक से जिस निश्चयार्थ, कर्तृवाच्य, कर्तृपूरकापेक्षी अकर्मक तथा कर्तरी प्रयोग के वाक्य का अर्थबोध होता है, वह वाक्य इस प्रकार है -

'नन्द और सुन्दरी 'लहरों के राजहंस' है ।'

'नन्द' व्यक्तिवाचक पुल्लिग संज्ञा है, जो इस वाक्य का प्रधान उद्‌देश्यरूपी अप्रत्यय कर्ता है । 'सुन्दरी' व्यक्तिवाचक स्त्रीलिग संज्ञा है, जो इस वाक्य का प्रधान उद्‌देश्यरूपी अप्रत्यय कर्ता है । 'और' संयोजक समुच्चयबोधक है, जिसके योग से 'नन्द' और 'सुन्दरी दोनों संज्ञाएँ मिलकर एक साथ इस वाक्य का प्रधान उद्‌देश्यरूपी अप्रत्यय कर्ता बन गये हैं ।

'हैं' यह क्रिया (पद) अस्तित्वबोधक, बहुवचनात्मक तथा कर्तृपूर्ति के लिए विधेय-विशेषण की अपेक्षा करने वाली अकर्मक है । इसीलिए प्रस्तुत वाक्य में 'है' इस (मुख्य विधेय रूपी) क्रिया (पद) ने प्रधान उद्‌देश्यरूपी 'नन्द और सुन्दरी' इन अप्रत्यय कर्ताओं के विशेष अस्तित्व का बोध कराने वाले अपने विधान मे 'लहरो के राजहंस' इस कर्तृपूरकीय (विधेयांग रूपी) विधेय-विशेषण का उपयोग किया है ।

'लहरो के राजहंस' इस कर्तृपूरकीय विधेय विशेषण पदबंध मे दो पदों का योग है। उनमे से पहला पद है 'लहरों के' । दूसरा पद है - 'राजहस' । 'लहरों के' पद (बंध) सबधकारकीय विशेषण है जिससे संबंधी रूपी विशेष्य 'राजहंस' का विशेष अर्थबोध होता है। 'लहरो के' पद (बंध) मे 'लहरें' यह बहुवचन स्त्रीलिंग संज्ञा है जो य के

इस बहुवचन पर प्रत्यय के योग के लिए 'लहरो' बन गया है । इसीलिए 'लहरों के' इस पद (बंध) से 'राजहंस' संज्ञा के बहुवचन का अर्थबोध होता है । प्रस्तुत वाक्य मे 'राजहंस यह बहुवचन पद कर्तृपूरकीय विधेय-विशेषण होने के कारण प्रस्तुत वाक्य के प्रधान उद्देश्यरूपी अप्रत्यय कर्ता 'नन्द' और 'सुन्दरी' के लिए प्रयुक्त हुआ है । अतः नन्द भी राजहंस है और सुन्दरी भी राजहस है ।

जलाशय के साथ राजहंसो का अटूट संबंध होता है । विशेषकर मंद मंद हवा के कारण जलाशय के पृष्ठ भाग पर उठने वाली लहरों के साथ राजहंसों का विशेष संबंध होता है । उस 'विशेष संबंध' का अर्थबोध कराने के लिए ही प्रस्तुत वाक्य मे बहुवचन विशेष्य 'राजहंस' के पूर्व 'लहरों के' संबंधकारकीय विशेषण प्रयुक्त हुआ है । मंद मंद हवा के कारण जलाशय के पृष्ठ भाग पर जो लहरें उठती है, उन्हीं के कारण जलाशय के पृष्ठ भाग पर तिरते रहे राजहंसो की स्थिति कुछ अस्थिर एवं चंचल-सी बनी रहती है । उस स्थिति में राजहंस एक ही जगह पर डॉवांडोल बने रहते है, उनसे आगे जाना भी नहीं बनता और पीछे जाना तो कतई नही बनता । अतः 'लहरों के राजहंस' इस कर्तृपूरकीय विधेय-विशेषणात्मक पदबंध से 'नन्द' और 'सुन्दरी' की अस्थिर, चंचल एवं दोलायमान मनःस्थिति का अर्थबोध होता है । इस प्रकार की वास्तविकता को ध्यान में रखकर अकर्मक, निश्चयार्थ, कर्तरी प्रयोग का कर्तृपूरकीय एक वाक्य इस प्रकार बनता है - 'नन्द और सुन्दरी मन से अस्थिर, चंचल एवं दोलायमान हैं ।'

इस कर्तृपूरकीय वाक्य में 'मन से अस्थिर, चंचल एवं दोलायमान 'यह संपूर्ण पदबंध विशेष्य रूपी नन्द और सुन्दरी के विषम में विशेष जानकारी देने वाला विधेय-विशेषण रूपी कर्तृपूरकीय पदबंध है, जो 'लहरों के राजहंस' इस विधेय विशेषण रूपी कर्तृपूरकीय पदबंध का पर्यायवाची है ।

नन्द और सुन्दरी 'लहरों के राजहंस' इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं । नन्द पति है और सुन्दरी पत्नी है । दोनों कपिलवस्तु के उस राजघराने से संबंधित हैं, जिस राजघराने में राजकुमार सिद्धार्थ अर्थात् गौतम बुद्ध ने जन्म लिया है । अतः नन्द और सुन्दरी के दाम्पत्य-जीवन में राजसी वैभव की कोई कमी नहीं है । फिर भी अपने दाम्पत्य जीवन में नन्द और सुन्दरी मन से 'लहरों के राजहंस' के समान अस्थिर, चंचल एवं दोलायमान हैं। 'लहरों के राजहस' इस संपूर्ण नाटक में नन्द और सुन्दरी के अपने मन से अस्थिर, चंचल एवं दोलायमान होने को ही दिखाया गया है । इसका अर्थ यह है कि 'लहरों के राजहंस' यह पूरा नाटक ही विधेय-विशेषण रूपी कर्तृपूर्ति से युक्त 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' बन गया है ।

'लहरों के राजहंस' नाटक में संवाद आदि रूपो में जितने भी वाक्यों का प्रयोग हुआ है और उन सभी के वाक्यार्थों, पदार्थो, पदबंधार्थो तथा शब्दार्थो का लक्ष्य नन्द और सुन्दरी की अस्थिर, चंचल एवं दोलायमान मनःस्थिति को अधिक से अधिक स्पष्ट करने वाला कर्तृपूर्ति रूपी विधेय-विशेषण बन जाना रहा है । परिणामस्वरूप 'लहरों के राजहंस' यह नाटक एक 'कथाश्रित साहित्यकृति के रूप मे 'एक संश्लिष्ट महावाक्य' बन गया है, जो 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त हुआ है।

एक कथाश्रित साहित्यकृति के रूप मे सैकड़ों वाक्यो के संयोग से रचित 'लहरो के राजहंस' नाटक मे व्याप्त 'त्रिविध कलार्थ रूपी सौन्दर्य' इस प्रकार है -

(अ) **भावात्मक अर्थ :** - मोहन राकेश रचित 'लहरों के राजहंस' नाटक मे नन्द और सुन्दरी प्रमुख पात्र हैं । दोनों का नाता पति-पत्नी का है । नन्द पति है और सुन्दरी पत्नी है । इन दोनों का दाम्पत्य-जीवन राजसी वैभव से सम्पन्न है। परन्तु नन्द और सुन्दरी दोनों भी मन से अस्थिर, चंचल, दोलायमान, अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त, आन्तरिक संघर्ष से पीड़ित, अत्यन्त व्याकुल और चिंतित हैं । दोनों भी अनिर्णयात्मक मन:स्थिति मे कभी इस ओर झुकते रहते हैं, तो कभी उस ओर झुकते रहते हैं । निर्णय न कर सकने की मानसिक समस्या मे उलझे हुए नन्द और सुन्दरी चिंतित व्याकुल और चंचल बन गये हैं । इससे उनका दाम्पत्य-प्रेम धोखे से आने लगा और दाम्पत्य-जीवन क्लेशदायक बनने लगा । फलस्वरूप नन्द और सुन्दरी का अपने अपने ढग का आन्तरिक सघर्ष बढने लगा ।

नन्द अपने दाम्पत्य-प्रेम को लेकर पत्नी सुन्दरी के साथ सुखी जीवन जीने की तीव्र इच्छा रखता है । सुन्दरी भी अपने दाम्पत्य-प्रेम को लेकर पति नन्द के साथ सुखद जीवन जीने की तीव्र इच्छा रखती है । परन्तु नन्द और सुन्दरी की इच्छा-पूर्ति में सुन्दरी के मन की चिन्ता बाधा बनने लगती है । सुन्दरी अपने मन की चिंता को मिटाने के लिए जिस उपाय से काम लेने लगती है, वह उपाय तो चिंता को मिटाने के बदले चिंता को बढ़ाने वाला ही सिद्ध होने लगता है । फलतः नन्द और सुन्दरी का दाम्पत्य-जीवन अधिक से अधिक क्लेशदायक बनने लगता है ।

अपने बडे भाई गौतम बुद्ध के विषय में तथा उनकी पत्नी देवी यशोधरा के विषय में नन्द के अन्तःकरण मे नितान्त आदर भाव है । नन्द की यही बात सुन्दरी के मन की चिन्ता का कारण बन गयी है ।

एक समय का राजकुमार सिद्धार्थ अब गौतम बुद्ध बनकर कपिलवास्तु आये है और संध्या होते ही नदी-तट पर निर्वाण और अमरत्व का उपदेश देते हैं । कपिलवास्तुनिवासी बड़े उत्साह से गौतम बुद्ध का उपदेश सुनने के लिए नदी-तट पर जाते है । जिन पर गौतम बुद्ध के उपदेश का प्रभाव पड़ता है, वे भिक्षु के रूप में या भिक्षुणी के रूप में दीक्षित हो रहे हैं । कल तो स्वयं यशोधरा भी भिक्षुणी बनने वाली है । ऐसी स्थिति मे सुन्दरी को चिन्ता लगी रही है कि कहीं मेरा पति नन्द गौतम बुद्ध के उपदेश के प्रभाव मे आकर भिक्षु बन गया तो ? फिर मेरे दाम्पत्य-जीवन का क्या होगा ? मुझे तो भिक्षुणी बनना बिल्कुल पसन्द नहीं है । फिर नन्द के भिक्षु बनने पर मेरा क्या होगा ? मैं तो किसी भी स्थिति में अपने दाम्पत्य-जीवन को सुरक्षित रखना चाहती हूँ । इस प्रकार की चिन्ता से मुक्त रहने के लिए सुन्दरी एक उपाय से काम लेने के प्रयत्न में लगी रहती है ।

सुन्दरी को आकर्षक यौवन के साथ अपूर्व सुन्दरता और विलक्षण चातुरी दैवी देन के रूप मे मिली है । इसीलिए सुन्दरी लोगों की दृष्टि मे एक यक्षिणी है । स्वयं नन्द भी सुन्दरी को मानवी मानने को तैयार नही होता । क्योंकि नन्द को लगता है कि सुन्दरी का जैसा रूप है, वैसा रूप मानवी का नहीं होता । अपनी इस प्रकार की मान्यता को लेकर ही नन्द सुन्दरी के रूप-पाश से अपने को सर्वदा बँधा हुआ रखना बहुत पसन्द करता है। वास्तव में अपनी इस प्रकार की पसन्द तथा चाह को लेकर नन्द सुन्दरी के सामने ब

बनकर रहता है और सुन्दरी दबंग बनकर रहती है । अपने दब्बूपन के कारण नन्द सुन्दरी की कही हुई बात को अपने लिए बहुत महत्त्वपूर्ण मानता रहता है, वह सुन्दरी की इच्छा मे कभी बाधा बनकर रहना नहीं चाहता । इसी कारण से सुन्दरी हर समय नन्द को यक्षिणी के समान अपने रूप तथा चातुर्य के जादू से चलाती रहती है और ऐसा करने मे सुन्दरी सतोषजनक स्वाभिमान का अनुभव करती है ।

सुन्दरी अपने अपूर्व रूप (सौन्दर्य) और विलक्षण चातुर्य को लेकर संतोषजनक स्वाभिमान का अनुभव करते हुए विश्वास करती है कि पत्नी का अपूर्व रूप पति का दाम्पत्य-जीवन में रमा रखने में समर्थ होता है । सुन्दरी का यही विश्वास अपनी सेविका अलका से बात करते समय इस प्रकार व्यक्त हुआ है - "देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को बाँधकर अपने पास रख सकता, तो क्या वे आज राजकुमार सिद्धार्थ ही न होते ? गौतम बुद्ध बनकर नदी-तट पर लोगों को उपदेश दे रहे होते ?" (पृष्ठ ४३) "राजकुमार सिद्धार्थ क्यों चुपचाप एक रात घर से निकल पड़े थे ? बात बहुत साधारण सी है अलका ! नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है ।" (पृष्ठ ४३, लहरों के राजहंस, विद्यार्थी संस्करण, ई. स १९६८, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६) अपने इस प्रकार के विश्वास को लेकर ही सुन्दरी अपने पति नन्द को गौतम बुद्ध के उपदेश से बचाने के लिए और उसे अपने साथ दाम्पत्य-जीवन में रमा रखने के लिए एक सक्षम उपाय के रूप में अपने अपूर्व रूप (सौन्दर्य) और विलक्षण चातुर्य का आधार लेती है । संयोग से सुन्दरी अपने प्रयत्न में कुछ मात्रा में सफल भी होती रहती है, लेकिन वह अपने मन की चिन्ता से पूर्णतया मुक्त नही हो पाती । ऐसी डॉवाडोल मनःस्थिति मे सुन्दरी कुछ अतिरेक से काम लेती रहती है, जिसके विपरीत परिणाम के रूप में नन्द का मन उचटता रहता है ।

अपना पति नन्द भिक्षु न बन जाय, इसके लिए सुन्दरी जिस उपाय से काम लेती है, उसमें सुन्दरी से अतिरेक यह होता है कि देवी यशोधरा भिक्षुणी बनने वाली है, इसलिए सुन्दरी देवी यशोधरा, गौतम बुद्ध और उनके निर्वाण तथा अमरत्व के उपदेश के विषय मे बहुत कडुवे शब्दों में अनादर का भाव व्यक्त करती है । प्रतिदिन संध्या समय नदी-तट पर जाकर गौतम बुद्ध के उपदेश देते रहने पर, उपदेश सुनने के लिए नदी-तट पर लोगों के जाते रहने पर और उपदेश के प्रभाव में आकर किसी के भिक्षु अथवा भिक्षुणी के रूप में दीक्षित होते रहने पर सुन्दरी तीखे शब्दो मे प्रहार करती है । यहाँ तक कि कल देवी यशोधरा भिक्षुणी बनने वाली है, इस बात को लेकर सुन्दरी यशोधरा तथा गौतम बुद्ध को चिढ़ाने के उद्देश्य से आज संध्या समय अपने यहाँ कामोत्सव का आयोजन करती है और उसमे सम्मिलित होने के लिए राजघराने से संबंधित पुरूष-मडली को निमंत्रित कर देती है । कामोत्सव में सम्मिलित होने वाली पुरूष-मंडली के लिए सुन्दरी विशेष मदिरा-पान की व्यवस्था कर देती है । लेकिन गौतमबुद्ध के उपदेश के प्रभाव के कारण कपिलवस्तु का एक भी राज-पुरूष सहभागी नही होता । कामोत्सव का आयोजन असफल होने से सुन्दरी के मन की चिन्ता तथा उद्विग्नता बहुत बढ़ जाती है ।

सुन्दरी का धृष्टतात्मक अतिरेक नन्द को प्रिय नहीं लगता । सुन्दरी के द्वारा देवी यशोधरा तथा गौतम बुद्ध के प्रति अनादर का भाव व्यक्त करना और कामोत्सव का

अनावश्यक आयोजन करना नन्द को अच्छा नहीं लगता । यह सब नन्द को व्यर्थ लगता है । लेकिन सुन्दरी को इन सब व्यर्थ की बातों से परावृत्त कराने का साहस नन्द में नहीं है । नन्द अपनी व्याकुल मनःस्थिति के साथ सुन्दरी की व्यर्थ की बातों से अपने आपको अलग रखने के प्रयत्न में रहता है ।

वास्तविकता यह भी है कि नन्द किसी भी स्थिति में सुन्दरी को प्रसन्न रखने की कोशिश में लगा रहता है । वह सुन्दरी को निराश देखना पसन्द नहीं करता । लेकिन नन्द सुन्दरी की प्रसन्नता के लिए अपने बड़े भाई गौतम बुद्ध के प्रति अनादर का भाव रखना नहीं चाहता । नन्द एक ओर अपनी प्रिय पत्नी सुन्दरी से अटूट प्रेम करता है, तो दूसरी ओर विरागी गौतम बुद्ध का भी आदर करता है । नन्द अच्छी तरह जानता है कि वैराग्य उसकी दिशा नहीं है । नन्द तो पत्नी सुन्दरी के साथ अपने दाम्पत्य-जीवन में रमे रहने को ही अपनी दिशा समझता रहता है । लेकिन दुर्भाग्य नन्द के साथ कुछ अलग ही खिलवाड़ करता है ।

जब सुन्दरी अपने शृंगारकोष्ठ में नन्द के हाथों में दर्पण थमाकर चन्दनलेप से अपने माथे पर विशेषक बनाने लगी थी, ठीक उसी समय स्वयं गौतम बुद्ध उनके द्वार पर भिक्षार्थ भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के साथ आये थे और नन्द या सुन्दरी से बिना भिक्षा पाये लौट गये थे । गौतम बुद्ध का इस तरह लौट जाना नन्द के मन को बहुत विचलित कर देता है । नन्द को लगता है, उससे प्रमाद हुआ है । इस प्रमाद के लिए क्षमा-याचना करने तथा अपने यहाँ आतिथ्य स्वीकार करने के लिए गौतम बुद्ध से अनुरोध करने के विचार से नन्द थोड़ी देर के लिए सुन्दरी की अनुमति पाकर नदी-तट की ओर चला जाता है । लेकिन वहाँ नन्द की इच्छा के विरुद्ध गौतम बुद्ध के कहने पर भिक्षु आनन्द नन्द के सिर के केश कटवाते हैं और उसे भिक्षु के रूप में दीक्षा दिलवाते हैं । यह सब नन्द की इच्छा के विरुद्ध होता है । क्योंकि उसकी प्रकृति भिक्षु बनने के विरुद्ध है । उसकी प्रकृति तो अपनी पत्नी के साथ अपने दाम्पत्य-जीवन में रमे रहने की है । इसीलिए नन्द दीक्षित कराते समय विरोध करना चाहता था, पर वैसा नहीं कर पाया । अपने मन की विरोधात्मक अवस्था को लेकर उद्विग्न नन्द भिक्षु आनन्द से कहता है -

"तथागत के आदेश से तुमने मेरे केश काट दिए । बड़े भाई के सम्मान के कारण मैं उन क्षणों के लिए विमूढ़- सा हो रहा, बलपूर्वक विरोध नहीं कर सका । परन्तु उसके बाद मैं अपना उत्तर उन्हें दे आया था ।" (पृष्ठ १३३-१३४)" स्वर्ग और नरक, वैराग्य और विवेक, शील और संयम, आर्यसत्य और अमृत-मैं जानता हूँ वाणी के छल से तुम मुझे किस ओर ले जाना चाहते हो । मैं तथागत के सामने कह चुका हूँ और अब फिर से कहे देता हूँ कि वह दिशा मेरी नहीं है, कदापि नहीं है ।" (पृष्ठ १२५) यह बिल्कुल सही है कि वैराग्य नन्द की दिशा नहीं है और प्रकृति भी नहीं है ।

नन्द की दिशा या प्रकृति तो अपनी पत्नी सुन्दरी के साथ सुखपूर्वक जीते रहने की है । तभी तो नन्द अपनी मुण्डित स्थिति में भी पत्नी सुन्दरी के पास लौट आ जाता है और सोयी हुई सुन्दरी को देखते हुए कहता है, 'मेरे हृदय में तुम्हारे लिए अब भी वही अनुराग है आँखों में तुम्हारे रूप की अब भी वही छाया है ।" (पृष्ठ १४०)

लेकिन नन्द के मुण्डित स्थिति में लौटने से सुन्दरी के स्वाभिमान को, आत्मसम्मान

को तथा विश्वास को बहुत बडी ठेस लग जाती है । सुन्दरी को तो सपने में भी नही लगता था कि उसके अपूर्व रूप-पाश से और विलक्षण चातुर्य से बँधा हुआ नन्द कभी मुण्डित स्थिति में दिखायी देगा ! सुन्दरी को लगता था कि उसका पति नन्द अपनी अपूर्व रूपवाली पत्नी के अनुराग में ही रमा रहेगा और भिक्षु के रूप में दीक्षित होने की बात का खुलकर विरोध करेगा । नन्द का भिक्षु के रूप मे दीक्षित होते समय खुलकर विरोध न करना और फिर पत्नी सुन्दरी के रूपाकर्षण को लेकर घर लौट आना यह सब विपरीत देखकर सुन्दरी का स्वाभिमान, आत्मसम्मान तथा विश्वास टूटकर चूर-चूर हो जाता है । हृदय से अत्यन्त व्याकुल होकर सुन्दरी अलका से कहती है, 'वे नहीं आये, अलका ! जो लौटकर आया है, वह व्यक्ति कोई दूसरा ही है . . .।' (पृष्ठ १४८) ऐसा कहकर सुन्दरी नन्द से मिलना भी पसन्द नही करती ।

अपने पति सुन्दरी के इस प्रकार के उपेक्षा भरे व्यवहार को देखकर नन्द बहुत उद्विग्न होकर स्वयंसे कहता रहता है, 'परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि मैं कोई दूसरा कैसे हूँ ? मात्र इसलिए कि किसी ने हठ से मेरे केश काट दिये है ?' (पृष्ठ १४८)' तब नहीं लगा था, पर अब लगता है कि केश काटकर उन्होंने मुझे बहुत अकेला कर दिया है । घर से - - - और अपने-आपसे भी अकेला ! जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने मुझे असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है ।' (पृष्ठ १४८) अपनी इस प्रकार की अत्यन्त विचलित और असहाय स्थिति में नन्द तथागत की ओर निकल जाता है और निकल जाते समय सेवक श्वेताग से कह देता है कि मै तथागत से पूछना चाहता हूँ कि उन्होंने मेरे केशो का क्या किया है ? और यदि कुछ नही किया, तो क्या मेरे केश मुझे लौटाये जा सकते हैं ? मेरी पत्नी को उन केशों की आवश्यकता है । श्वेतांग के मुख से नन्द की इस प्रकार की बात सुनकर सुन्दरी हृदय से अत्यधिक घायल होकर अपने ही से कहती रहती है,'इतना ही समझ पाए है वे ?'(पृष्ठ १५३), 'इससे अधिक कभी समझ भी नही पाएँगे ये - - -कभी नहीं समझ पाएंगे !'(पृष्ठ १५४)

वास्तव मे बात केवल केशों के काटे जाने की नहीं है । यहाँ जो बात राजकुमार नन्द के सिर के केश काटे जाने की है, वह तो उसका भिक्षु के रूप में दीक्षा लेने का लक्षण है । इसीलिए राजकुमारी सुन्दरी के सामने भयंकर समस्या यह उपस्थित हुई है कि अब अपने दाम्पत्य-जीवन का क्या होगा ? पत्नी सुन्दरी की यह समस्या पति नन्द अपनी अन्यमनस्कता में समझ नहीं पाया है । वह तो केवल इतना ही समझ रहा कि उसके मुण्डित होने के कारण सुन्दरी उसे कोई दूसरा व्यक्ति कह रही है ।

इस प्रकार नन्द और सुन्दरी की डॉवाडोल मन स्थिति अपनी-अपनी चिंता को चरम-सीमा पर पहुँचा देती है, जिससे उनके दाम्पत्य-जीवन की सुरक्षितता के बारे में अनेक प्रश्न उठते है । इसी कारण से ही अपनी मुण्डित स्थिति में नन्द अपने ही प्रिय घर मे परायापन का अनुभव करता रहा और सुन्दरी भी अपने प्रिय कक्ष के सूनेपन से घबराकर कहती रही, 'लगता है आज घर अपना घर नहीं रहा - - -।'(पृष्ठ १५१)

इस नाटक में आरम्भ से अन्ततक भावात्मकता की दृष्टि से नन्द और सुन्दरी दोनों अस्थिर, चंचल, दोलायमान, व्याकुल एवं चिंतित रहे हैं ।

(आ) **विचारात्मक अर्थ :** - मोहन राकेशकृत 'लहरों के राजहंस' नाटक में अत्यन्त

महत्व का विचार यह है कि पति-पत्नी के हित के लिए गृहस्थी अर्थात् दाम्पत्य-जीवन का अटूट बनकर रहना अत्यावश्यक है । पति-पत्नी में से किसी भी एक का किसी भी रूप मे अलग होना गृहसौख्य की दृष्टि से बहुत घातक है । अपनी गृहस्थी को इस प्रकार के सकट से बचाने के लिए और अपने ग्राहस्थ्य-जीवन मे सौख्य को बनाए रखने के लिए सुन्दरी बहुत सतर्क है । इसलिए ही पत्नी सुन्दरी अपने पति नन्द को गौतम बुद्ध के उपदेश से दूर रखने की कोशिश में लगी रहती ।

इस नाटक में यह भी एक महत्वपूर्ण विचार है कि अपनी गृहस्थी मे ही पति को रमा रखने के लिए पत्नी का रूप बहुत उपयोगी होता है । क्योकि हर पुरूष पति के रूप मे अपनी स्त्री अर्थात् अपनी पत्नी के प्रति विषयासक्त रहता ही है और पत्नी के रूप के प्रभाव के फलस्वरूप अधिक से अधिक विषयासक्त बनता रहता है और अपनी पत्नी से कुछ ज्यादा ही प्रेम करता रहता है । इससे गृहस्थी सुरक्षित भी रहती है और उसमे सौख्य भी बना रहता है । इसी विचार को सुँन्दरी ने अच्छी तरह समझ लिया है । भाग्य से सुन्दरी को अपूर्व रूप (सौन्दर्य) मिला है और विलक्षण चातुर्य भी मिला है । सुन्दरी तो अपने अपूर्व रूप पर और विलक्षण चातुर्य पर गर्व करती है । इसीलिए पत्नी सुन्दरी अपनी गृहस्थी को सुरक्षित रखने के लिए और अपनी गृहस्थी में सौख्य को बनाए रखन के लिए अपने पति नन्द को हर समय अपने अपूर्व रूप के तथा विलक्षण चातुर्य के जादू से चलाती रहती है। इसके फलस्वरूप ही पति नन्द अपनी सुन्दरी के प्रति अधिक से अधिक विषयासक्त बना रहता है, सुन्दरी से अत्यधिक प्रेम करता रहता है और अपनी गृहस्थी में पत्नी सुन्दरी के साथ सुखपूर्वक रमा रहना चाहता है । इस विचार से ही नन्द अपने बडे भाई गौतम बुद्ध के प्रति आदर का भाव रखते हुए भी अपने को गौतम बुद्ध के वैराग्यसंबंधी उपदेश से दूर रखने का प्रयत्न करता रहता है ।

प्रस्तुत नाटक में यह भी एक महत्व का विचार है कि अपनी गृहस्थी को और गृहसौख्य को सुरक्षित रखन के लिए पति-पत्नी मे से कोई भी एक ना समझी और धृष्टतायुक्त अतिरेक का शिकार हो जाता है तो गृहस्थी तथा गृहसौख्य का सुरक्षित रहना असभव हो जाता है । इस नाटक में गौतम बुद्ध के वैराग्य संबंधी उपदेश से अपने पति नन्द को दूर रखने के प्रयत्न में सुन्दरी अपने रूपपाश से नन्द को अधिकाधिक बॉधकर रखने के लिए नासमझी तथा धृष्टतापूर्वक अतिरेक का शिकार हो जाती है । इसीलिए सुन्दरी यह समझ नहीं पाती कि वैराग्य नन्द की प्रकृति नहीं है, गृहस्थ बनकर रहना ही नन्द की प्रकृति है । तभी तो नन्द हर समय सुन्दरी के रूपपाश में उलझकर सुन्दरी के सहवास में लंपट तथा लीन बना रहता है । नन्द की इस प्रकार की विषयासक्ति को ध्यान मे न रखते हुए सुन्दरी नन्द के साथ नासमझी तथा धृष्टतायुक्त अतिरेक से काम लेती रहती है । इसी के दुष्परिणाम के रूप मे नन्द और सुन्दरी एक-दूसरे के लिए पराये से बन जाते है गृहस्थी और गृहसौख्य को सुरक्षित रखने के लिए असमर्थ-से बन जाते हैं ।

इस नाटक में यह भी एक महत्वपूर्ण विचार है कि जो बात अपनी प्रकृति के प्रतिकूल होती है, उसका स्वीकार किसी भी कीमत पर नही करना चाहिए । यदि यह बात किसी से लादी जाने लगती है, तो डटकर उसका सामना करना चाहिए और उस प्रतिकूल बात से अपने को दूर रखना चाहिए ऐसा करने से ही अपना स्वत्व सुरक्षित रह सकता

है । किसी के आगे कमजोर बनकर रहने से और अपने पर लादी जाने वाली प्रतिकूल बात को स्वीकार करने से अपना बहुत बड़ा नुकसान हो सकता है । नन्द के साथ ऐसा ही हो जाता है । आसक्ति, विषयासक्ति, प्रवृत्ति, राग, तृष्णा, आकर्षण और गृहस्थी ही नन्द की प्रकृति है । विरक्ति, अनासक्ति, निवृत्ति, विराग, वितृष्णा, अनाकर्षण तथा वैराग्यनन्द की प्रकृति नहीं है । लेकिन नन्द अपनी सच्ची प्रकृति की रक्षा के लिए डटकर सामना करने को पसन्द करने के बदले गौतम बुद्ध के सामने कमजोर बना रहता है और भिक्षु के रूप मे दीक्षित हो जाता है । इससे नन्द न घर का बनकर रह सकता है, न विहार का बनकर रह सकता है । नन्द स्वयं भी संकट मे फँस गया और पत्नी सुन्दरी को भी उसने संकट मे फँसा दिया । नन्द ने बहुत बड़ा नुकसान उठा लिया ।

प्रस्तुत नाटक मे यह भी एक महत्व का विचार है कि कभी किसी पर प्रतिकूल बात लादी नहीं जानी चाहिए । यदि किसी पर प्रतिकूल बात बलपूर्वक लादी जाती है, तो उस व्यक्ति का बहुत बड़ा नुकसान हो जाता है । नन्द के साथ ऐसा ही होता है । वास्तव मे नन्द की प्रकृति भिक्षु बनने के प्रतिकूल है और गृहस्थ के रूप में ही जीने के अनुकूल है । इस प्रकार की वास्तविकता पर ध्यान देने के बदले गौतम बुद्ध का आदेश देना और उस आदेश के अनुसार भिक्षु आनन्द के द्वारा नन्द के सिर के केशो को कटवाना और नन्द को भिक्षु के रूप में दीक्षित करवाना समुचित नहीं रहा ! क्योंकि इससे गृहस्थ नन्द का बहुत बड़ा नुकसान हो जाता है।

नन्द जब तक विषयासक्त है; जब तक नन्द के हृदय मे अपनी पत्नी सुन्दरी के लिए अटूट अनुराग है और जबतक नन्द की आँखों मे अपनी प्रिय पत्नी सुन्दरी के अपूर्व रूप की छाया सुरक्षित है तब तक नन्द को भिक्षु के रूप में दीक्षित करवाना कहाँ तक उचित है ? लादे गये भिक्षुत्व के कारण गृहस्थ नन्द, गृहिणी सुन्दरी, इन दोनों की गृहसथी आदि के बारे में कितने प्रश्न उपस्थित हुए हैं ! इस कारण से ही मन से अत्यंत विचलित हुए नन्द की यह प्रतिक्रिया बहुत विचारणीय है - "जीने की इच्छा को कितने-कितने प्रश्नो ने एक -साथ घेर लिया है !" (पृष्ठ १४९) ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक मे अतिशय महत्वपूर्ण विचारात्मकता व्यक्त हुई है।

(इ) कल्पनात्मक अर्थ : - नाटककार मोहन राकेश ने अपनी ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा अर्थात् कल्पनाशक्ति का पूर्णतया प्रयोग करके ही 'लहरों के राजहंस' इस नाटक रूपी कलाकृति अर्थात् कथाश्रित साहित्यकृति की रचना की है । प्रस्तुत नाटक में इतिहास का आधार नाममात्र है । बाकी सब नाटककार की कल्पना का ही विस्तार है ! नन्द, सुन्दरी यशोधरा, राजकुमार सिद्धार्थ, तथागत, गौतम बुद्ध, भिक्षु आनन्द, कपिलवास्तु केवल ये नाम ऐतिहासिक है । बाकी सब कुछ काल्पनिक है ।

श्वेतांग, श्यामाग, अलका, शशांक, मैत्रेय, निहारिका ये सभी पात्र काल्पनिक है । इन पात्रो से संबधित सभी घटनाएँ भी काल्पनिक हैं । सुन्दरी का कक्ष और वहाँ का वातावरण काल्पनिक है । श्वेताग और श्यामांग इन राजकर्मचारियो का कामोत्सव के आयोजन के कार्द मे तथा आपस में बाते करने मे व्यस्त रहना काल्पनिक है । सुन्दरी द्वारा कामोत्सव का आयोजन भी काल्पनिक है । कामोत्सव के आयोजन को लेकर सुन्दरी का महत्वाकांक्षी बनना भी काल्पनिक है । इसलिए सुन्दरी का ऐसा सोचना भी काल्पनिक है

कि कामोत्सव में सहभागी होकर कपिलवास्तु के राजपुरूष रात भर मदिरा पीने में, भोजन करने में और नगर वधू चन्द्रिका का नृत्य देखने में व्यस्त रह जाएंगे और वर्षो तक इस प्रसंग को याद करते रहेगे । इस प्रकार के प्रभाव के कारण एक भी राजपुरूष गौतम बुद्ध के उपदेश के प्रभाव में नहीं आएगा और भिक्षु भी नही बनेगा । इस संदर्भ में सुन्दरी और अलका का संवाद भी काल्पनिक है । श्यामांग का सोचते रहना और कुछ प्रलाप करते रहना भी काल्पनिक है । कल प्रात. देवी यशोधरा भिक्षुणी के रूप मे दीक्षा ग्रहण करने वाली है, इस बात को लेकर सुन्दरी और अलका का संवाद काल्पनिक है । अपने पति नन्द को अपने रूपपाश मे उलझाकर रखने के लिए सुन्दरी का रूपगर्विता बनना काल्पनिक है । सुन्दरी का मानी बनकर जीना पसन्द करना भी काल्पनिक है । राजकुमार सिद्धार्थ का गौतम बुद्ध बन जाने के मूल मे कारण के रूप में सुन्दरी के द्वारा देवी यशोधरा के रूपाकर्षण-अभाव को स्वीकार करना काल्पनिक है । गौतम बुद्ध का उपदेश सुनने के लिए कपिलवास्तु के लोगों के नदी-तट की ओर उमड़ पड़ने को सुन्दरी के द्वारा नवीनता का तात्कालिक आकर्षण मानना भी काल्पनिक है । सुन्दरी को निर्वाण और अमरत्व से संबंधित बुद्ध के उपदेश का अप्रिय लगना और उसके विरुद्ध मनोहर काम-केलि से युक्त गार्हस्थ्य-जीवन का प्रिय लगना भी काल्पनिक है । कमलताल के हंसो के क्रन्दन का सुनाई देना भी काल्पनिक है । श्यामांग का विक्षिप्त सा होना और उसे सजा के रूप में दक्षिण के अंधकूप में रखना भी काल्पनिक है । सुन्दरी को आदेश देना प्रिय लगता है, यह भी काल्पनिक है । सुन्दरी का अलका को बहुत चाहना भी काल्पनिक है । सुन्दरी के कक्ष में नन्द का अन्यमनस्क स्थिति मे प्रवेश करना और दोनो के संवाद का चलते रहना भी काल्पनिक है । नन्द का आखेट की बात करना और मन से व्याकुल होते रहना भी काल्पनिक है । सुन्दरी की कही हुई बात का नन्द के लिए बहुत महत्त्व रखना भी काल्पनिक है । सुन्दरी के सामने नन्द का दुर्बल बनकर रहना, निमंत्रित राजपुरूषों का कामोत्सव में सहभाग न लेना, निराश सुन्दरी का विक्षुब्ध तथा अव्यवस्थित हो जाना और नन्द का व्याकुल बनकर रहना, यह सब काल्पनिक है ।

नन्द का सोई हुई सुन्दरी के बालों को बड़े प्यार से सहला देना; नन्द का रात्रभर व्यथित मनःस्थिति में जागते रहना, सुन्दरी के कक्ष का अस्तव्यस्त होना, नन्द का सुन्दरी पर कभी क्रोध न करना; प्रातः काल में सुन्दरी का स्वयं ही अपना श्रृंगार-प्रसाधन करते रहना और उसमें नन्द की सहायता लेते रहना, सुन्दरी के आदेशानुसार नन्द का सूखा चन्दन-लेप भिगो ले आना; दर्पण मे देखकर अपने माथे पर चन्दनलेप का विशेषक बनाने के लिए सुन्दरी का नन्द के हाथों मे दर्पण थमाकर नन्द को अपने सामने खड़ा करना, भिक्षुओं और भिक्षुणियों के समवेत स्वर का नन्द के द्वार पर एकाएक रुक जाना और विचलित हुए नन्द के हाथों मे से दर्पण का नीचे गिरकर टूट जाना ; अलका के द्वारा नन्द तथा सुन्दरी को यह मालूम होना कि स्वयं गौतम बुद्ध बिना भिक्षा पाए नन्द के द्वार से लौट गये ; सुन्दरी की अनुमति लेकर नन्द का अपने प्रमाद के लिए क्षमा-याचना करने के विचार से गौतम बुद्ध की ओर निकल जाना; यह सब काल्पनिक ही है ।

नन्द के लौटने की प्रतीक्षा में सुन्दरी का दिनभर बिना प्रसाधन का रहना, अपने स्वाभिमान को और न छलने के विचार से सुन्दरी का नन्द के लौटने की प्रतीक्षा करना ही

छोड़ देना; श्वेतांग के निवेदन से यह ज्ञात होना कि कैसे नन्द के न चाहने पर भी भिक्षु आनन्द के रूप में उसे दीक्षित करवाया, मुण्डित स्थिति में नन्द का घर लौट आना और भिक्षु आनन्द के सामने अपने मन के विक्षोभ को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना, भिक्षु के रूप में भी नन्द के हृदय मे सुन्दरी के लिए पहले जैसे ही अनुराग का होना और उसकी ऑखों में सुन्दरी के रूप की पहले जैसी ही छाया का होना; सुन्दरी को नन्द का लौटना किसी दूसरे व्यक्ति का लौटना लगना, सुन्दरी की इस प्रकार की प्रतिक्रिया से नन्द का सुन्दरी से मिले बिना उद्विग्न स्थिति में अपने केशो की खोज के लिए तथा गौतम बुद्ध से कई प्रश्नो के उत्तर पाने के लिए घर से बाहर निकलना और गौतम बुद्ध की ओर जाना सुन्दरी का अकेले रह जाना और उसको अपने ही घर का 'अपना घर' न लगना ; यह सब काल्पनिक है ।

इस प्रकार 'लहरों के राजहंस' नाटक की कथावस्तु का विस्तार काल्पनिक है, संपूर्ण चरित्र-चित्रण काल्पनिक है और भावप्रधान पारिवारिक वातावरण भी काल्पनिक है। इन सभी के माध्यम से कल्पनात्मक अर्थ के रूप में नन्द और सुन्दरी के गार्हस्थ्य-जीवन के बारे में, पति तथा गृहस्थ के रूप में नन्द की जीने की इच्छा के बारे में तथा पत्नी तथा गृहिणी के रूप में सुन्दरी की जीने को इच्छा के बारे में कई भयंकर प्रश्न उपस्थित हुए हैं। जो नन्द अपनी पत्नी सुन्दरी के साथ सुखपूर्वक गार्हस्थ्य-जीवन जीने की तीव्र इच्छा रखता है उस पर बलपूर्वक वैराग्य का लादा जाना, दुष्परिणाम का ही कारण हो सकता है । तभी तो नन्द और सुन्दरी की स्थिति अत्यन्त दयनीय बन जाती है । किसी भी गृहस्थ के साथ ऐसा होना अन्यायकारक ही है । जब तक गृहस्थ में अपनी पत्नी के साथ अपनी गृहस्थी में रमे रहने की तीव्र इच्छा है, तब तक किसी के भी द्वारा उस गृहस्थ पर वैराग्य का लादा जाना बिल्कुल ठीक नहीं है ।

कल्पनात्मक अर्थ की दृष्टि से यह भी महत्वपूर्ण है कि गृहस्थी में पत्नी के द्वारा सुन्दरी के समान अपने समझदार पति के साथ अहंकारयुक्त नासमझदारी का व्यवहार नहीं होना चाहिए । वास्तव मे गृहस्थी तभी सुख तथा हर्षोल्लास से युक्त हो सकती है, जब पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे के विषय में बहुत समझदारी का व्यवहार करते रहते है । पति-पत्नी मे से किसी एक की भी नासमझी अपने गृहसौख्य के विनाश का कारण बन सकती है ।

कल्पनात्मक अर्थ की दृष्टि से यह भी महत्वपूर्ण है कि जिससे अपना गार्हस्थ्य-जीवन धोखे मे आ सकता है, ऐसे दबाव में कभी नही आना चाहिए । नन्द से ऐसा नही हुआ, इसलिए नन्द की गृहस्थी लगभग उजड़ सी जाती है । तभी तो गौतम बुद्ध से कई प्रश्न पूछने और उनसे उत्तर पाने के लिए नन्द के अपने घर से बाहर निकल जाने की कल्पना महत्वपूर्ण है ।

यहाँ पर स्पष्ट यह होता है कि 'लहरों के राजहंस' नाटक मे भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप 'कलार्थ' के रूप में व्याप्त है । इस नाटक में अर्थात् कथाश्रित साहित्यकृति में व्याप्त 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप मे आनन्दप्रद, कलामूल्यात्मक तथा जीवनमूल्यात्मक 'सौन्दर्य' है ।

मोहन राकेशकृत 'लहरों के राजहंस' नाटक मे व्याप्त (त्रिविध) 'कलार्थ' का केन्द्र

नन्द और सुन्दरी की गृहस्थ-गृहिणी के रूप में ही सुख, संतोष, शाति, प्रेमालाप तथा प्रेमालिगन के साथ अपना गार्हस्थ्य-जीवन जीते रहने की तथा अपने को भिक्षुत्व रूपी या भिक्षुणीत्व रूपी वैराग्य से दूर रखने की तीव्र इच्छा है । वास्तव में नन्द और सुन्दरी की इस प्रकार की इच्छा किसी भी स्थल के और किसी भी काल के किसी भी 'पति-पत्नी' अर्थात् 'गृहस्थ-गृहिणी' की तीव्र इच्छा हो सकती है । इसी संभाव्यता रूपी विशेषता के कारण 'लहरों के राजहंस' नाटक में व्याप्त 'कलार्थ' आप ही आप 'विश्वात्मक अर्थ' बन गया है ।

'लहरो के राजहंस' नाटक में नन्द और सुन्दरी की विभिन्न क्रियाओं तथा विभिन्न बातों के माध्यम से नन्द और सुन्दरी का विशिष्ट-विशिष्ट दृश्य-बिम्ब उभरा है । श्वेताग श्यामांग, अलका तथा भिक्षु आनन्द का भी दृश्य-बिम्ब उनकी क्रियाओं तथा बातों के माध्यम से ही उभरा है । इन सबका विशिष्ट-विशिष्ट दृश्य-बिम्ब के रूप में ही विशिष्ट-विशिष्ट अर्थबोध होता है । इस नाटक में नन्द का जो दृश्य-बिम्ब उभरा है, उससे ही नन्द के अपनी पत्नी सुन्दरी के प्रति अत्यन्त कामासक्त होने का, सुन्दरी की किसी भी बात को महत्वपूर्ण मानने का, अपने अत्यधिक पत्नी-प्रेम को लेकर सुन्दरी के सामने कमजोर बनकर रहने का; बडे भाई के प्रति अत्यधिक आदर-भाव को लेकर गौतम बुद्ध के सामने भी कमजोर बनकर रहने का, अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने पर भिक्षुत्व चुपचाप लादे लेने का और फिर पत्नी सुन्दरी को कोई दूसरा ही व्यक्ति लगने का; अपने ही घर में पराया बनने का तथा दुविधा मे, अंतर्द्वन्द्व में, अनिश्चय मे, अस्थिरता मे, व्याकुलता मे तड़पते हुए घर से बाहर निकल जाने का अर्थबोध हो जाता है ।

प्रस्तुत नाटक में सुन्दरी का जो दृश्य-बिम्ब उभरा है, उससे ही सुन्दरी के निश्चयात्मक होने का ; अपने ही मन की करते रहने का; किसी भी स्थिति में अपने मान तथा स्वाभिमान की रक्षा करते रहने का ; अपने आदेशकत्व को ध्यान मे रखकर राज-सेवको को आदेश देते रहने और उनसे काम करा लेते रहने का ; अपने अपूर्व रूप और विलक्षण चातुर्य के जादू से पति नन्द को विश्वासपूर्वक चलाते रहने का, भिक्षुत्व या भिक्षुणीत्व रूपी वैराग्य का, भिक्षुणीत्व प्रिय यशोधरा का तथा वैराग्य का उपदेश देने वाले गौतम बुद्ध का अनादर करते रहने का ; अपनी गृहस्थी सुरक्षित रखने के हेतु नन्द को वैराग्य से दूर रखने के प्रयत्न में लगे रहने का ; नन्द के भिक्षु बनने से टूट जाने का तथा नन्द को कोई दूसरा ही व्यक्ति समझने का और "लगता है आज घर अपना घर नही रहा"(पृष्ठ १५१) इस प्रकार की अत्यंत दु:खद अनुभूति करते हुए असहायता में तडपते रहने का अर्थबोध हो जाता है ।

राज-सेवक श्यामांग का जो दृश्य बिम्ब उभरा है, उससे श्यामांग की ऐसी पागल-सी दशा का अर्थबोध होता है, जो नन्द की आस्थिर एव व्याकुल मन-स्थिति से साम्य रखती है । राज-सेवक श्वेतांग का जो दृश्यबिम्ब उभरा है, उससे श्वेताग के कर्मनिष्ठ, आज्ञाकारी तथा नन्द और सुन्दरी की गृहस्थी की सुरक्षा के लिए चितित रहने का अर्थबोध होता है । राज-सेविका अलका का जो दृश्यबिब उभरा है, उससे अलका के कर्मठ, आज्ञाकारी कार्यतत्पर और सुन्दरी तथा नन्द की गृहस्थी की सुरक्षितता के लिए चितित रहने का अर्थबोध होता है । भिक्षु आनन्द का जो दृश्य बिब उभरा है, उससे उनके अन्तर्द्वन्द्व मे उलझे नन्द को अधिक से अधिक उलझाते ही रखने का अर्थबोध होता है ।

इस नाटक में इन सभी पात्रो की क्रियात्मक तथा संवादात्मक दृश्य बिंबात्मकता, घटनाओं के होते रहने के रूप मे कथावस्तु की दृश्य बिम्बात्मकता और पात्र तथा कथावस्तु से सबंधित पारिवारिक एवं धार्मिक वातावरण की भी दृश्य बिंबात्मकता महत्वपूर्ण है । इस प्रकार की दृश्य-बिम्बात्मकता रूपी विशेषता के कारण 'लहरो के राजहंस' नाटक में व्याप्त कलार्थ' आप से आप 'बिम्बात्मक अर्थ' बन गया है ।

'लहरों के राजहस' नाटक मे बिम्बात्मकता के कारण रूपात्मकता को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है । इस नाटक में नन्द तथा सुन्दरी इन मुख्य पात्रो की रूपात्मकता महत्वपूर्ण रही है । साथ ही अन्य पात्रों की भी रूपात्मकता; घटती घटनाओं की क्रियात्मक रूपात्मकता तथा विशिष्ट वातावरण की भी रूपात्मकता महत्वपूर्ण है । अतः रूपात्मकता रूपी विशेषता के बल पर प्रस्तुत नाटक में व्याप्त 'कलार्थ' अपने आप 'रूपात्मक अर्थ' बन गया है ।

'लहरो के राजहस' नाटक मे व्याप्त 'कलार्थ' अभिव्यक्त है और संपूर्ण नाटक अपेक्षित सैकड़ो वाक्यों के संयोग' के रूप मे अभिव्यक्ति (कलाकृति) है । इसका परिणाम यह हुआ है कि यहाँ पर 'कलार्थ' और संपूर्ण नाटक (वाक्य-संयोग रूपी कलाकृति) मे एकरूपता' की स्थापना हुई है । इसलिए इस नाटक मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी एकरूपता रूपी विशेषता के बल पर 'एकरूप अर्थ' बन गया है ।

'लहरों के राजहंस' नाटक मे व्याप्त 'कलार्थ' अपनी त्रिविध समरूपता रूपी मौलिकता (नवीनता) के आधार पर 'मौलिक अर्थ' (नवीन अर्थ) बन गया है । इस 'मौलिक अर्थ में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कलात्मक अर्थ की महत्वपूर्ण समरूपता कलार्थ' बन गयी है ।

'लहरों के राजहंस' नाटक में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'शृंखलित सघनता' रूपी विशेषता के आधार पर अपने आप 'शृंखलित सघन अर्थ' बन गया है । इसी विशेषता के कारण इस नाटक में व्याप्त 'कलार्थ' से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण संभाव्य अर्थ निकल सकते है । नाटक के आरंभ मे कार्य में व्यस्त श्वेतांग की बातो से अर्थबोध होता है कि श्वेतांग को कार्य में व्यस्त रहना प्रिया लगता है, तो श्यामांग को कार्य में व्यस्त रहने के बदले सोचते रहना बहुत प्रिय लगता है । इससे लगता रहता है कि श्यामांग के कारण शायद कार्य मे बाधा पड़ेगी । श्वेतांग के कथन से अर्थबोध होता है कि वर्षो के बाद आज सुन्दरी ने कामोत्सव का आयोजन किया है। सुन्दरी के कथन से अर्थबोध होता है कि वह अपने द्वारा आयोजित कामोत्सव को कपिलवास्तु के लोगो के मन में वर्षो तक की याद बना रखने की आकांक्षा रखती है। लेकिन श्यामांग समझ नही पा रहा है कि कामोत्सव का आयोजन तब क्यों किया गया है, जब आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का वेष धारण कर रखा है और देवी यशोधरा कल भिक्षुणी के रूप मे दीक्षा ग्रहण करने वाली है । इससे अर्थबोध यह होता है कि कपिलवास्तु के कई तरुण गौतम बुद्ध के उपदेश से प्रभावित होकर भिक्षु बन गये है और यशोधरा भी अब भिक्षुणी बनने वाली है । ऐसे वातावरण मे सुन्दरी को चिन्ता यह लगी रहना स्वाभाविक है कि कही उसका पति नन्द भी गौतम बुद्ध के प्रभाव मे आकर भिक्षु बन न जाय । लेकिन ऐसा न हो, इसके लिए सुन्दरी के पास उसके अपूर्व रूप (सौन्दर्य) का एक उपाय है क्योंकि सुन्दरी को लगता है कि पत्नी का रूपाकर्षण पति को वैराग्य की

ओर नहीं जाने दे सकता । इसीलिए सुन्दरी नन्द को अपने रूपाकर्षण में बाँधकर रखना पसंद करती है । सुन्दरी को अपनी गृहस्थी को लेकर गौतम बुद्ध की निर्वाण और अमरत्व की बात अच्छी नहीं लगती । श्यामाग के बढ़ते प्रलाप से आगे आ सकने वाले अनिष्ट का अर्थबोध होने लगता है । नन्द के अस्थिरता मे आगमन से भी आगे आ सकने वाले अनिष्ट का अर्थबोध होता रहता है । नन्द की असफल आखेट की बात से तथा अपने प्राणो की रक्षार्थ अत्यधिक दोड़ने की थकान से ही अपने आप मरे हुए मृग की बात से भी भविष्यकालीन अनिष्ट का अर्थबोध होता है । अपनी ही थकान से मरे हुए मृग की बात से नन्द की मानसिक थकान का अर्थबोध होता है । कामोत्सव का आयोजन असफल होने से अर्थबोध होता है कि अब सुन्दरी न जाने क्या कर बैठेगी ।

सुन्दरी के एक कथन से अर्थबोध होता है कि नन्द पति के रूप मे अपनी पत्नी सुन्दरी की किसी भी बात को लेकर सुन्दरी पर क्रोध नहीं करता । इस बात का सुन्दरी को खेद होता है । वास्तव में पति नन्द की समझ में आना चाहिए कि कभी-कभी पत्नी पर क्रोध करने में भी गहरा प्रेम होता है । पर नन्द सुन्दरी की इस व्यथा को समझ नहीं पाता । नन्द के सुन्दरी के श्रृंगार-प्रसाधन मे सहायता करने से अर्थबोध होता है कि विषयासक्त नन्द सुन्दरी की खुशी के लिए कुछ भी कर सकता है । सुन्दरी के द्वारा अपने बारे में 'यक्षिणी' का उल्लेख करने से अर्थबोध होता है कि सुन्दरी के प्रभाव से नन्द का छुटकारा पाना बहुत कठिन कर्म है । साथ ही गौतम बुद्ध का आदर करते रहने से भी नन्द का मुक्त होना कठिन कर्म है । इसी कारण से नन्द सुन्दरी से कुछ देर के लिए अनुमति लेकर क्षमा-याचना करने के लिए गौतम बुद्ध की ओर निकल जाता है । "हर बीतता हुआ क्षण मेरे प्रयत्न का उपहास उड़ाता था, फिर भी मै अपने अन्दर के विरोध से लड़ती रही, मन के विद्रोह को किसी तरह समझाती रही ।" (पृष्ठ १२०) सुन्दरी के इस कथन से अर्थबोध होता है कि 'पति नन्द के लौटने की प्रतीक्षा करती ही रहूँ या अब प्रतीक्षा करना बन्द करूँ ?' इस प्रकार के प्रश्न को लेकर अनिर्णयात्मक मनःस्थिति में कुछ देर तो सुन्दरी को अन्तर्द्वन्द्व का सामना करना पड़ा है,जिससे उसका स्वाभिमान आहत होता रहा । तभी तो सुन्दरी ने 'मैं अपने स्वाभिमान को और नही छल सकती ।' (पृष्ठ १२१) ऐसा कहकर नन्द के लौटने की प्रतीक्षा करना बन्द करने का निर्णय किया । इस प्रकार के निर्णय से सुन्दरी के स्वाभिमानी, मानिनी, निर्णायक तथा धैर्यवान होने का अर्थबोध होता है ।

'कुमार के विरोध करते रहने पर भी उनके केश काट दिए गए ।' (पृष्ठ १२८) श्वेतांग के इस कथन से अर्थबोध होता है कि नन्द को अपनी इच्छा के विरुद्ध भिक्षु के रूप मे दीक्षित होना पड़ा है । इससे अर्थबोध यह भी होता है कि नन्द सुन्दरी के समान धैर्यवान तथा निर्णायक नहीं है । तभी तो नन्द अपनी विक्षुब्ध मनःस्थिति में जगल की ओर चला जाता है । व्याघ्र के साथ धैर्यपूर्वक लड़ने वाला नन्द अपनी पत्नी सुन्दरी और बड़े भाई गौतम बुद्ध के सामने बहुत दुर्बल बना रहता है । इस प्रकार की नन्द की कमजोरी से अर्थबोध होता है कि स्वयं नन्द ही अपनी दुरावस्थात्मक हानि का कारण है । तभी तो वह 'वैराग्य अपनी प्रकृति नहीं है,' यह जानते हुए भी अपने पर वैराग्य चुपचाप लाद लेता है। इस कारण से ही नन्द अपने को कोसते हुए कहता है, 'उस समय मैं इतना सत्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षु आनन्द के कर्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका कि 'यह विश्वास मेरा नहीं

है। मैं तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता। (पृष्ठ १३९) इससे अर्थबोध होता है कि नन्द में अपने विश्वास की रक्षा कर सके ऐसी क्षमता तथा प्रतिरोध-शक्ति नहीं है । नन्द कुछ हद तक नासमझ भी है। उसकी समझ में यह नहीं आता कि जो सुन्दरी भिक्षुत्व रूपी वैराग्य से सख्त नफ़रत करती है, उस सुन्दरी के सामने अपने सिर मुंडे रूप को लेकर उपस्थित होना कितना अनुचित है । नन्द नासमझी मे अपने सिर मुंडे रूप को लेकर सुन्दरी के कक्ष में आता है और सोयी हुई सुन्दरी को देखते हुए कहता है, ''मेरे हृदय मे तुम्हारे लिए अब भी वही अनुराग है, आँखों मे तुम्हारे रूप की अब भी वही छाया है ।' (पृष्ठ १४०) लेकिन अब नन्द का यह कथन कुछ महत्व नहीं रखता । क्योंकि नन्द ने अपने आप को धैर्यपूर्वक बचाने के बदले चुपचाप अपना सिर मुंडवा दिया, इससे सुन्दरी के विश्वास पर बहुत बडा आघात हुआ है ।' इसी आघात से सुन्दरी तिलमिला उठती है और अलका से कहती है, 'वह आकृति एक दुःस्व नहीं - - - यथार्थ है - - मेरा अपना यथार्थ - - क्या मै उसका सामना कर सकती हू ? - - क्या एक बार इतना भी कह सकती हूँ - - कि आपने - - -आपने मेरे पास से जाकर - - यह सब कैसे हो जाने दिया - - क्यों हो जाने दिया ?' (पृष्ठ १४७) इस कथन से अर्थबोध हो रहा है कि सुन्दरी को अब इस बात का पश्चाताप हो रहा है कि उसने विश्वास के साथ नन्द को अपने पास से गौतम बुद्ध की ओर जाने देकर बड़ी भूल की है । तभी तो उसे लौटा हुआ सिर मुंडा नन्द कोई दूसरा व्यक्ति लौटा है - ऐसा लगता है ।

नन्द समझ जाता है कि सुन्दरी उसे मुंडित स्थिति में कोई दूसरा ही व्यक्ति समझ रही है । तब नन्द की नासमझी का अर्थबोध उसके इन कथनो से होता है कि - ''- - परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि मैं कोई दूसरा कैसे हूँ ? मात्र इसलिए कि किसी ने हठ से मेरे केश काट दिए हैं ?'' (पृष्ठ १४८) । ''तब नहीं लगा था, पर अब लगता है कि केश काटकर उन्होंने मुझे बहुत अकेला कर दिया है ! घर से - - -और अपने-आप से भी अकेला ! जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने मुझे असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है !'' (पृष्ठ १४९) । नन्द की समझ में यह आना आवश्यक है कि उसके केश काटे जाने का संबंध भिक्षुत्व रूपी वैराग्य के साथ है, जो उसकी और सुन्दरी की गृहस्थी के विनाश का कारण है । अतः नासमझी मे अपनी पत्नी को उन केशों की आवश्यकता है, ऐसा मानकर नन्द का अपने केशों की खोज में निकल जाना, सुन्दरी को बहुत दुःखी और बहुत व्याकुल कर देता है । इस कारण से ही अत्यधिक वेदना में और व्याकुलता मे सुन्दरी के मुंह से एक प्रश्न अपने आप व्यक्त हो जाता है, 'इतना ही समझ पाए हैं वे ?'' (पृष्ठ १५३) । सुन्दरी के इस प्रश्न से अर्थबोध होता है कि नन्द की समझ में यह आना चाहिए था कि उसकी इच्छा के विरुद्ध भी क्यो न हुआ हो, लेकिन उसके केशो के काटे जाने का सम्बन्ध उसके द्वारा स्वीकृत भिक्षुत्व रूपी वैराग्य के साथ है और इसके दुष्परिणाम के रूप में उसकी गृहस्थी के विनाश के साथ है । इतना ही नहीं, बल्कि सुन्दरी और नन्द की उस चेतना अर्थात् जीने की इच्छा के साथ नन्द के केशों के काटे जाने का सम्बन्ध जुड़ा है, जो अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच एक प्रश्नचिह्न बनकर रही है । इससे अर्थबोध यह होता है कि नन्द और सुन्दरी दोनों भी अपनी गृहस्थी स पूर्णतया उजड़कर मैं जीऊँ या न जीऊं? जीऊँ तो क्यों जीऊं और कैसे जीऊँ ?ल इस

प्रकार के अनुत्तरित प्रश्नों में उलझ गये हैं । इसका अर्थबोध यह भी होता है कि नन्द और सुन्दरी की दुरावस्था का कारण अपने-अपने ढंग से वे स्वयं ही है, दूसरा कोई नहीं है । नन्द और सुन्दरी की दुरावस्था निश्चित ही हृदयद्रावक, चिंत्य और विचारणीय लगती है।

इस प्रकार 'लहरों के राजहंस' नाटक में व्याप्त 'कलार्थ' अपनी 'शृंखलित सघनता रूपी' विशेषता के आधार पर 'शृंखलित सघन अर्थ' बन गया है ।

'शृंखलित सघनता' के कारण 'लहरों के राजहंस' नाटक में व्याप्त 'कलार्थ' में ऐसी 'प्रभावात्मकता' रूपी विशेषता आयी है, जिससे 'कलार्थ' आप ही आप 'प्रभावात्मक अर्थ' बन गया है ।

'लहरों के राजहंस' नाटक में व्याप्त 'कलार्थ' त्रिविधात्मकता, समरूपता, विश्वात्मकता बिम्बात्मकता, रूपात्मकता, एकरूपात्मकता, मौलिकता (नवीनता) शृंखलित सघनता तथा प्रभावात्मकता इन सभी विशेषताओं से संपन्न होने के कारण असाधारण, अलौकिक, विशेष, विदग्ध, ललित, चित्ताकर्षक अर्थात् रमणीय 'सौन्दर्य रूपी अर्थ' बन गया है । वास्तविकता यह है कि प्रस्तुत 'सौन्दर्यरूपी अर्थ' ही 'लहरों के राजहंस' नाटक में व्याप्त 'सौन्दर्य है । यह 'सौन्दर्य' ही इस नाटक में आनन्दप्रदान करने की अपनी विशेषता के बल पर 'आनन्दप्रद अर्थ' बन गया है ।

यहाँ पर 'आनन्दप्रद अर्थ' वास्तव में 'लहरों के राजहंस' नाटक के रूप में 'कलानन्द' की अनुभूति कराने में समर्थ होकर 'कलामूल्यात्मक अर्थ' बन गया है ।

नन्द और सुन्दरी दोनों पति-पत्नी के रूप में हर्षोल्लास के साथ जीते रहने की तीव्र इच्छा रखते हैं । नन्द और सुन्दरी दोनों तरूण, सुन्दर तथा परस्पर विषयासक्त हैं। वे कपिलवास्तु के राजवंश से संबंधित हैं, इसलिए उनके पास वैभव की कोई कमी नहीं है। परन्तु कपिलवास्तु मे राजकुमार सिद्धार्थ का आगमन गौतम बुद्ध के रूप मे हुआ है, इसी घटना ने नन्द और सुन्दरी को चिन्ता में डाल दिया है । प्रतिदिन संध्या समय नदी-तट पर गौतम बुद्ध कपिलवास्तु के लोगों को उपदेश देते हैं । प्रतिदिन कोई न कोई गौतम बुद्ध के उपदेश के प्रभाव में आकर भिक्षु तथा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करता है । परिणामस्वरूप यशोधरा भी एक दिन भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करने वाली है । इस प्रकार का धार्मिक वातावरण सुन्दरी के लिए चिन्ता का विषय बन जाता है । क्योंकि सुन्दरी अपनी तरुणावस्था तथा अपूर्व सौन्दर्य को ध्यान में रखकर तरुण तथा सुन्दर पति नन्द के साथ गृहिणी के रूप में ही जीने की तीव्र इच्छा रखती है । सुन्दरी जानती है कि नन्द उससे जितना प्रेम करता है, उतना ही वह अपने बड़े भाई गौतम बुद्ध का आदर करता है । इसीलिए सुन्दरी को चिन्ता लगी रहती है कि भूल से भी नन्द गौतम बुद्ध की ओर गया और उनके उपदेश के प्रभाव मे आकर भिक्षु बन गया तो मेरा क्या होगा ? हमारी गृहस्थी का क्या होगा ? इस प्रकार की चिंता से मुक्त होने के लिए सुन्दरी नन्द को गौतम बुद्ध से दूर रखने के उपायो मे लगी रहती है । भाग्य से नन्द की प्रकृति भी भिक्षुत्व रूपी वैराग्य के प्रतिकूल तथा गृहस्थी के अनुकूल है। इसीलिए नन्द और सुन्दरी दोनों भी हर्षोल्लास से जीने और अपनी गृहस्थी को सुरक्षित रखने की तीव्र इच्छा रखते हैं । नन्द और सुन्दरी की इस प्रकार की तीव्र इच्छा मनुष्य के गार्हस्थ्य जीवन की दृष्टि से नितान्त महत्वपूर्ण है । इस प्रकार की विशेषता के कारण 'लहरों के राजहंस' नाटक में व्याप्त 'कलार्थ' अर्थात् 'कलामूल्यात्मक अर्थ' आप से आप 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बन गया है, जिसके कारण यह नाटक जीवन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण बना है ।

एक अक, एक दृश्य तथा अन्य कुछ विशेषताओं के कारण 'लहरो के राजहंस' नाटक एकदम अभिनेय हुआ है, जिससे इस नाटक मे व्याप्त 'कलार्थ' अत्यधिक रमणीय बना है ।

नाटककार मोहन राकेश ने अपने मानस मे उभरे 'कलाकारार्थ' को 'लहरो के राजहंस' नाटक (कलाकृति=कलात्मक अभिव्यक्ति) के रूप मे अभिव्यक्त करने के लिए नितांत अर्थपूर्ण, परिष्कृत, सजे-सँवरे, सुलझे हुए तथा यथोचित शब्दों का सहज सुन्दर प्रयोग करके सरल वाक्यो, मिश्र वाक्यों तथा संयुक्त वाक्यो के 'वाक्यार्थों' के समन्वित रूप में विश्वात्मक रूप मे, बिम्बात्मक रूप में, रूपात्मक रूप मे, एकरूपात्मक रूप मे मौलिकतात्मक (नवीनतात्मक) रूप मे, शृंखलित सघनतात्मक रूप में, प्रभावात्मक रूप में आनन्द प्रदानात्मक रूप में, कलामूल्यात्मक रूप मे तथा जीवनमूल्यात्मक रूप में 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' बनाने मे विलक्षण एवं प्रशंसनीय सफलता पायी है इसी कारण से संपूर्ण 'लहरो के राजहंस' नाटक मे संवादो का स्वरूप अतिशय रमणीय बना है। रमणीयता अर्थात् सौन्दर्य इस नाटक के संवादों का प्राणतत्व है ।

इस प्रकार मोहन राकेश का नाटक 'लहरो के राजहंस' अपने आप 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर एक उत्कृष्ट कलाकृति बन गया है । वह सदैव आस्वाद्य नाटक बन गया है । वह बहुत ही शृंखलित सघन अर्थमय बन गया है और युवा पति-पत्नी के गार्हस्थ्य-जीवन के हित की दृष्टि से मार्गदर्शक बन गया है ।

यहॉ पर यह भी स्पष्ट होता है कि मोहन राकेशकृत 'लहरों के राजहंस' नाटक 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' से व्याप्त होकर एक उत्तम कथाश्रित साहित्यकृति बन गया है । कथाश्रित साहित्यकृति के रूप में 'लहरो के राजहंस' नाटक में नन्द और सुन्दरी से संबंधित महत्वपूर्ण कथावस्तु है । साथ ही जो 'कलार्थ' की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अत्यावश्यक है उतनी ही घटनाओं के प्रभावोत्पादक और कुतूहलवर्धक सघटन के रूप मे कथावस्तु की रचना हुई है । कथावस्तु के सघटन में नन्द और सुन्दरी की मुख्य कथा है, जो नाम मात्र कपिलवस्तु स्थल और बुद्ध काल के साथ सम्बन्ध रखती है । मुख्य कथा का सम्पूर्ण विकास नाटककार मोहन राकेश की कल्पना-शक्ति का सभाव्य एवं रमणीय विलास है । साथ ही नन्द की अस्थिर एवं व्याकुल मनःस्थिति को व्यंजित करने की दृष्टि से पूरक बनकर रही श्यामाग की गौण कथा भी मोहन राकेश की कल्पना-शक्ति का अर्थपूर्ण विलास ही है । स्पष्ट है कि 'कलार्थ' से व्याप्त कथावस्तु पर आधृत होकर ही 'लहरो के राजहंस' नाटक एक उत्कृष्ट कलाकृति अर्थात् एक उत्तम कथाश्रित साहित्यकृति बन गया है ।

'लहरों के राजहस' नाटक कथाश्रित साहित्यकृति होने के कारण उसमे कथावस्तु स संबधित पुरुष पात्रों तथा स्त्री पात्रों को महत्वपूर्ण स्थान मिला है । इस नाटक मे छह पुरुष पात्र हैं और उनमें से 'नन्द' नामक पुरुष पात्र मुख्य पात्र है । इस नाटक में तीन स्त्री-पात्र हैं और उनमें से 'सुन्दरी' नामक स्त्री पात्र मुख्य पात्र हैं । नन्द कपिलवास्तु का राजकुमार और राजकुमार सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का छोटा सौतेला भाई है । यही नन्द उस सुन्दरी का पति है, जो स्वयं राजकुमारी है। नन्द और सुन्दरी पति-पत्नी हैं और इन दोनों के राजसेवको के रूप मे श्वेतांग, श्यामांग, शशांक तथा राजसेविकाओं के रूप मे अलका और नीहारिका का अस्तित्व है । नन्द और सुन्दरी के एक हितैषी के रूप में राजपुरुष

मैत्रेय का अस्तित्व है । गौतम बुद्ध के आदेशानुसार नन्द को भिक्षु के रूप मे दीक्षित कराने वाले एक महत्वपूर्ण भिक्षु के रूप में 'भिक्षु आनन्द' का अस्तित्व है । इससे ज्ञात होता है कि 'लहरों के राजहंस' नाटक में इन सभी पात्रो की संख्या 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने के लिए जितनी अत्यावश्यक थी, उतनी ही है ।

'लहरों के राजहंस' नाटक मे अर्थात् कथाश्रित साहित्यकृति में मुख्य पुरूष पात्र नन्द और मुख्य स्त्री पात्र सुन्दरी इन दोनों के विशिष्ट-विशिष्ट चरित्र की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ भी इस नाटक में 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने मे अत्यावश्यक बनकर रही है । इस दृष्टि से नन्द का स्वभाव से डरपोक, दुर्बल, अनिर्णयात्मक अस्थिर, नासमझ तथा व्याकुल होना महत्वपूर्ण है और सुन्दरी का स्वभाव से धैर्यशील निर्णयात्मक, अहंकारी, मानी, स्वाभिमानी तथा कुछ नासमझ होना महत्वपूर्ण है । नन्द और सुन्दरी का अपनी-अपनी चरित्र संबंधी विशेषताओं के अनुसार विभिन्न क्रियाएँ तथा विभिन्न बातें करते रहना भी इस नाटक में 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने मे अत्यावश्यक बनकर रहा है ।

'लहरो के राजहंस' नाटक मे अर्थात् इस कथाश्रित साहित्यकृति में बुद्धकालीन सांस्कृतिक तथा धार्मिक वातावरण भी 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने मे अत्यावश्यक बनकर रहा है । गौतम बुद्ध के भिक्षुत्व रूपी वैराग्य या भिक्षुणीत्व रूपी वैराग्य के उपदेश से प्रभावित वातावरण के सन्दर्भ में गृहस्थ नन्द और गृहिणी सुन्दरी की प्रतिक्रियाएँ और प्रतिकूल बातें महत्वपूर्ण रही हैं । इसी विशिष्ट वातावरण के सन्दर्भ में ही नन्द और सुन्दरी के विचार, इरादे, उनकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ तथा कल्पनाएँ महत्वपूर्ण रही हैं । इसी विशिष्ट वातावरण के अनुरूप ही नन्द और सुन्दरी के साथ-साथ अन्य पात्रों की भी वेशभूषा, केशभूषा, अलंकारभूषा, बोल-चाल तथा रहन-सहन विश्वसनीय रहा है । इसी विशिष्ट वातावरण की प्रतिकूलता ने नन्द और सुन्दरी की गृहस्थी के टिककर रहने के बारे में गम्भीर समस्या को जन्म दिया है । उनकी गृहस्थी को भिक्षुत्व रूपी या भिक्षुणीत्व रूपी वैराग्य चुनौती दे रहा है । इसीलिए विशेषकर सुन्दरी को अपनी गृहस्थी को सुरक्षित रखने की इच्छा से प्रेरित होकर प्रतिक्रियात्मक पैंतरा अपनाना पड़ता है और नन्द को भी प्रतिक्रियात्मक पैंतरा अपनाने के लिए प्रेरित करना पड़ता है । इसी प्रतिक्रियात्मक पैंतरे का ही एक भाग सुन्दरी द्वारा कामोत्सव का आयोजन रहा है और दूसरा भाग सुन्दरी द्वारा नन्द को अपनी गृहस्थी में रमा रखने का हर तरह से भरसक प्रयत्न करना । इस प्रकार 'लहरों के राजहंस' नाटक मे विशिष्ट वातावरण बहुत प्रभावशाली बनकर रहा है ।

सारांस यह कि एक कथाश्रित साहित्यकृति के रूप में 'लहरों के राजहंस' नाटक मे कथावस्तु, पात्र और विशिष्ट वातावरण का संघटन ही 'कलार्थ' यानी 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' को बनाए रखने मे बहुत ही अत्यावश्यक बनकर रह गया है। इससे प्रस्तुत नाटक का शीर्षक बहुत अर्थबोधक बना है ।

१२. जीवन में 'कलार्थ' का महत्व

जो 'कलार्थ' साहित्यकृति में व्याप्त होकर अपने स्वाभाविक रूप में त्रिविधात्मक अर्थ, समरूपात्मक अर्थ, विश्वात्मक अर्थ, बिम्बात्मक अर्थ, रूपात्मक अर्थ एक रूप अर्थ, मौलिक अर्थ (नवीन अर्थ), शृंखलित सघन अर्थ, प्रभावात्मक अर्थ, सौन्दर्यात्मक अर्थ,

आनन्दप्रद अर्थ तथा कलामूल्यात्मक अर्थ बनकर रहता है ; वही 'कलार्थ' जीवन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बनकर रहता है । इसका अर्थ यह है कि जीवन मे जीवनमूल्यात्मक अर्थ' के रूप में 'कलार्थ' का महत्व अति विशेष है ।

साहित्यकृति में 'जीवनमूल्यात्मक अर्थ' बनकर रहने वाला 'कलार्थ' जीवन की किसी बात का, किसी घटना का, जीवन के किसी प्रसंग का, किसी पहलू का या किसी विषय का विशेष अर्थ समझाने में और आनन्द प्रदान करने में सक्षम बना रहता है । इससे 'कलार्थ' अपने आप 'सहृदयार्थ बन जाता है और उस स्थिति मे सहृदय आनन्दनिमग्न होकर जीवन के बारे में, अपने बारे में, समाज के बारे में, लोगों के बारे में, मानवेतर जीवों के बारे मे, आत्मा-परमात्मा के बारे में तथा अन्य कई बातों के बारे में अपनी सद्बुद्धि (प्रज्ञा) अर्थात् विवेक शक्ति से विचार करने लगता है और हितकर अर्थात् मगंल निर्णय करने के प्रयत्न में लगा रहता है ।

साहित्यकृति में व्याप्त 'कलार्थ' के इस प्रकार के प्रतिफलन से मनुष्य के जीवन मे साहित्यकृति तथा साहित्यकार को चिरकाल तक आदर का स्थान मिल जाता है ।

महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि साहित्यकृति में व्याप्त रहने वाला 'कलार्थ' अपने मूल रूप में 'कलाकारार्थ' होता है । 'कलाकारार्थ के मूल मे कलाकार (कवि/साहित्यकार) का हृदय सक्रिय बना रहता है, उसकी बुद्धि (प्रज्ञा/विचार करने वाली शक्ति/विवेक शक्ति) सक्रिय बनी रहती है, साथ ही उसकी कल्पना (प्रतिभा/नयी नयी बातें सोचने वाली शक्ति) भी सक्रिय बनी रहती है*। इन तीनों की 'एकत्रित सक्रियता' के फलस्वरूप ही कलाकार के मानस में ऐसा 'त्रिविध अर्थ' उभरता है, जो भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का समरूप, समन्वित रूप, समन्वयात्मक रूप या संश्लिष्ट रूप होता है। इस प्रकार कलाकार (साहित्यकार) के मानस में उभरने वाला एकीकृत 'त्रिविध अर्थ' कलाकार का अपना अर्थ बनकर रह जाता है । इसी 'त्रिविध अर्थ' को ही 'कलाकारार्थ' (साहित्यकारार्थ) यानी कलाकार (साहित्यकार) का अपना अर्थ कहना समुचित है ।

'कलाकारार्थ' ही (साहित्यकारार्थ) ही कलाकार की (साहित्यकार की) महत्वपूर्ण इच्छा के अनुसार 'कला-सृजक-प्रयोजन' (साहित्य-सृजक-प्रयोजन) के रूप मे अभिव्यक्त्य बना रहता है और अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यों के संयोग के रूप में अभिव्यक्त होकर एक विशेष अभिव्यक्ति के रूप में 'कलाकृति' (साहित्यकृति) बन जाता है और उसी में व्याप्त रहने वाला 'कलार्थ' (साहित्यार्थ) बन जाता है । पूरी कलाकृति (साहित्यकृति) 'कलार्थ' से (साहित्यार्थ से) व्याप्त रहती है, जो 'कलार्थ (साहित्यार्थ) अपने मूल रूप में और कुछ नहीं, बल्कि 'कलाकारार्थ' ही (साहित्यकारार्थ ही) होता है । जिस क्षण कलाकार (साहित्यकार) जीवन की किसी विशिष्ट अनुभूति से प्रभावित हो जाता है और उसका संवेदनशील हृदय आंदोलित हो जाता है, उसी क्षण कलाकार (साहित्यकार) के हृदय में अनुरूप भाव उद्दीप्त हो जाता है । तब कलाकार (साहित्यकार) अपने हृदय से 'भावुक' बन जाता है और उद्दीप्त भाव को लेकर विशिष्ट भाव-स्थिति में डूबा रह जाता है। कलाकार (साहित्यकार) की इस प्रकार की 'भावात्मकता' ही कलाकार (साहित्यकार) की महत्वपूर्ण इच्छा के अनुसार 'भावात्मक अर्थ' बन जाती है ।

जिस क्षण कलाकार की (साहित्यकार की) विशिष्ट भाव-स्थिति कलाकार (साहित्यकार)

की महत्वपूर्ण इच्छा के अनुसार भावात्मक अर्थ बन जाती है, उसी क्षण से कलाकार (साहित्यकार) की बुद्धि प्रभावक जीवनानुभूति के विषय में विचार करने को प्रेरित हो जाती है । तब कलाकार (साहित्यकार) अपनी बुद्धि से 'विचारक' बन जाता है और किसी विशेष विचार को लेकर विशिष्ट बुद्धि-स्थिति में मग्न हो जाता है । कलाकार (साहित्यकार) की इस प्रकार की 'विचारात्मकता' ही कलाकार (साहित्यकार) की महत्वपूर्ण इच्छा के अनुसार 'विचारात्मक अर्थ' बन जाती है ।

जिस क्षण कलाकार (साहित्यकार) की विशिष्ट बुद्धि-स्थिति कलाकार (साहित्यकार) की महत्वपूर्ण इच्छा के अनुसार विचारात्मक अर्थ बन जाती है, उसी क्षण से कलाकार (साहित्यकार) की कल्पना प्रभावक जीवनानुभूति के सन्दर्भ मे नयी नयी बातों का उदभावन करने को प्रेरित हो जाती है । तब कलाकार (साहित्यकार) अपनी कल्पना से 'कल्पक' बन जाता है और नयी नयी बातो को लेकर विशिष्ट कल्पना-स्थिति में रमा रहता है । कलाकार (साहित्यकार) की इस प्रकार की 'कल्पनात्मकता' कलाकार की (साहित्यकार की) महत्वपूर्ण इच्छा के अनुसार 'कल्पनात्मक अर्थ' बन जाती है ।

इस प्रकार कलाकार (साहित्यकार) अपने हृदय, अपनी बुद्धि तथा अपनी कल्पना के बल पर एक ही प्रभावक जीवनानुभूति को लेकर क्रमशः भावुक, विचारक तथा कल्पक बनकर रहता है । इससे कलाकार (साहित्यकार) के मानस में भावात्मकता, विचारात्मकता तथा कल्पनात्मकता भी उभर आती है । फलस्वरूप कलाकार (साहित्यकार) की महत्वपूर्ण इच्छा के अनुसार कलाकार (साहित्यकार) के मानस में भावात्मकता से भावात्मक अर्थ, विचारात्मकता से विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मकता से कल्पनात्मक अर्थ का एकीकृत तथा समन्वित रूप 'त्रिविध कलाकारार्थ' बनकर उभर आता है । यह 'त्रिविध कलाकारार्थ' यानी 'कलाकारार्थ' ही कलाकार के लिए विलक्षण, असामान्य, असाधारण, अलौकिक, विशेष, चित्ताकर्षक, रमणीय, सुन्दर और आनन्दप्रद बना रहता है । इसी कारण से 'कलाकारार्थ' जीवन की दृष्टि से महत्वपूर्ण बनकर कलाकृति (साहित्यकृति/अभिव्यक्ति) का रूप धारण कर उसके अंग-अंग में व्याप्त होकर जीवन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण 'कलार्थ' बनकर रहता है ।

वास्तव में 'कलाकारार्थ' (साहित्यकारार्थ) अपने मूल रूप में ही जीवन की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता ही है । लेकिन यह भी सही है कि 'कलाकारार्थ' (साहित्यकारार्थ) जीवन की दृष्टि से कम-अधिक मात्रा में महत्वपूर्ण बना रहता है । इसका कारण यह है कि निसर्गतः ही कलाकार (साहित्यकार) के 'भावुक' बनकर रहने की मात्रा कम-अधिक हो सकती है; उसके 'विचारक' बनकर रहने की भी मात्रा कम-अधिक हो सकती है और उसके 'कल्पक' बनकर रहने की भी मात्रा कम-अधिक हो सकती है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि जीवन की दृष्टि से 'कलाकारार्थ' (साहित्यकारार्थ) और 'कलार्थ' (साहित्यार्थ) के महत्वपूर्ण बनकर रहने की भी मात्रा कम-अधिक हो सकती है ।

जिस 'कलाकारार्थ' (साहित्यकारार्थ) और 'कलार्थ' (साहित्यार्थ) में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ तथा कल्पनात्मक अर्थ का किसी भी प्रकार का असंतुलन बना रहता है वह जीवन की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण बना रहता है । लेकिन जिस 'कलाकारार्थ' (साहित्यकारार्थ) और 'कलार्थ' (साहित्यार्थ) मे भावात्मक अर्थ विचारात्मक अर्थ तथा

कल्पनात्मक अर्थ का उत्कृष्ट सन्तुलन बना रहता है, वह निश्चित रूप से जीवन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण बना रहता है । इस सन्दर्भ मे कलाकार (साहित्यकार) का विशिष्ट व्यक्तित्व विचारणीय होता है ।

कलाकार (साहित्यकार) का विशिष्ट व्यक्तित्व अत्यन्त सवेदनशील हृदय के बल पर जीवन की विभिन्न अनुभूतियो से भाव-पुष्ट बना रहता है ; चिन्तनशील-मननशील प्रगल्भ बुद्धि (प्रज्ञा) के बल पर विविध विचारों से सम्पन्न बना रहता है और प्रौढ़ कल्पना के बल पर नयी नयी बातो से समृद्ध बना रहता है । इससे कलाकार (साहित्यकार) दूरद्रष्टा तथा भविष्यद्रष्टा बन जाता है । दूरद्रष्टा तथा भविष्यद्रष्टा बने हुए कलाकार (साहित्यकार) के मानस में उभरने वाला 'कलाकारार्थ' और इसी कलाकारार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति बनकर रहने वाला 'कलार्थ जीवन की दृष्टि से अतिशय महत्वपूर्ण बनकर रहता है, जिससे 'सहृदयार्थ' के रूप में जीवन का चिंत्य, नया, मौलिक, रमणीय एवं आनन्दप्रद अर्थबोध हो जाता है । कभी-कभी इस प्रकार का अर्थबोध प्रचलित लेकिन मनुष्यता की दृष्टि से घातक जीवनमूल्य को जोरदार धक्का देने की और उसके स्थान पर मनुष्यता की दृष्टि से मंगल (हितकर) नये जीवनमूल्य की स्थापना करने की प्रेरणा देता रहता है । इससे कलाकृते (साहित्यकृति) मनुष्य के जीवन का उत्तम मार्गदर्शक बन जाती है और अपने आप में वह एक श्रेष्ठ, अमर तथा कालजयी कलाकृति (साहित्यकृति) बनकर रहती है ।

मनुष्य के जीवन का 'उत्तम मार्गदर्शक' बने रहने की दृष्टि से ही महात्मा कबीर का पद्य-साहित्य, सन्त तुलसीदास का पद्य-साहित्य, सन्त सूरदास का पद्य-साहित्य, मीरॉबाई का पद्य-साहित्य, विद्यापति का पद्य-साहित्य, बिहारी का पद्य-साहित्य, रहीम का पद्य-साहित्य, प्रेम चन्द का गद्यात्मक उपन्यास-साहित्य तथा कहानी-साहित्य, नागार्जुन का गद्य-साहित्य तथा पद्य-साहित्य, मोहन राकेश का गद्यात्मक नाटक-साहित्य तथा कहानी-साहित्य, जगदीशचन्द्र माथुर का नाटक-साहित्य, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का नाटक-साहित्य, ज्ञानदेव अग्निहोत्री का नाटक-साहित्य तथा अन्य अनेक हिन्दी साहित्यकारों का पद्य-साहित्य तथा गद्य-साहित्य उल्लेखनीय है ।

महत्वपूर्ण वास्तविकता यह है कि जो भी साहित्यकृति मनुष्य के जीवन का उत्तम मार्गदर्शक बने रहने की क्षमता रखती है, उसमें ऐसा उत्तम तथा सन्तुलित 'कलार्थ' व्याप्त रहता है, जो अपने मूलरूप में उत्तम तथा सन्तुलित 'कलाकारार्थ' की ही कलात्मक अभिव्यक्ति होता है ।

जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला,' सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा,अज्ञेय, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, टॉल्स्टॉय, मैक्सिम गोर्की, दोस्तोव्हस्की, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, खलील जिब्रान आदि सुविख्यात साहित्यकारो की कोई साहित्यकृति मनुष्य के जीवन की दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसमें ऐसा उत्तम तथा सन्तुलित 'कलार्थ' व्याप्त होता है, जो अपने मूल रूप में उत्तम तथा सन्तुलित 'कलाकारार्थ' की ही कलात्मक अभिव्यक्ति होता है ।

हिन्दी के महात्मा कबीर आदि सन्तो का साहित्य, मराठी के ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, एकनाथ आदि सन्तों का साहित्य तथा अन्य किसी भी भाषा के सन्तों का साहित्य मनुष्य के जीवन की दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसमें ऐसा उत्तम तथा सन्तुलित

'कलार्थ' व्याप्त होता है, जो अपने मूल रूप में उत्तम तथा सन्तुलित 'कलाकारार्थ' की ही कलात्मक अभिव्यक्ति होता है ।

उत्तम तथा सन्तुलित 'कलाकारार्थ' तथा उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति रूपी 'कलार्थ' अपने स्वाभाविक रूप में सहृदय के हृदय को, उसकी बुद्धि को तथा उसकी कल्पना को एक साथ प्रभावित करता है । इससे सहृदय अपने जीवन के हित (मांगल्य) की दृष्टि से अनुरूप विचार करने तथा निर्णय करने को प्रेरित हो जाता है । सहृदय के साथ संबंध रखने वाले इस प्रकार के प्रभाव को लेकर ही 'कलार्थ' तथा कलाकृति दोनो मनुष्य के जीवन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण बने रहते हैं ।

वैसे तो कलाकार के मानस मे उभरने वाला 'कलाकारार्थ' प्रथम केवल कलाकार रूपी व्यक्ति के साथ संबंध रखता है । लेकिन उस 'कलाकारार्थ' में स्वाभाविक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण तीन क्षमताएँ होती हैं - (१) अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यों के संयोग रूपी कलाकृति के रूप मे अभिव्यक्त होने की; (२) कलाकृति (साहित्यकृति) में व्याप्त 'कलार्थ' के रूप में विश्वात्मक बनकर रहने की, और (३) कलाकृति (साहित्यकृति) का आस्वादन करने वाले सहृदय के लिए जीवन की किसी बात का चिंत्य, नया, मौलिक, रमणीय तथा आनन्दप्रद अर्थबोध कराने वाला 'सहृदयार्थ' बनकर रहने की ।

'कलाकारार्थ' अपनी पहली क्षमता के बल पर अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यों के संयोग के रूप में कलाकृति (साहित्यकृति) का रूप धारण करने में और कलाकार (साहित्यकार) रूपी व्यक्ति से मुक्त होने में सफल हो जाता है ।

'कलाकारार्थ' अपनी दूसरी क्षमता के बल पर कलाकृति (साहित्यकृति) में व्याप्त 'कलार्थ' के रूप में विश्वात्मक अर्थात् सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनीन बन जाता है। इससे 'कलाकारार्थ' रूपी 'कलार्थ' किसी भी स्थल के, किसी भी काल के, किसी भी मानव (सहृदय) के लिए आस्वाद्य बनकर रहता है । इस प्रकार की विशेषता के आधार पर सम्भाव्यता यह बनी रहती है कि कलाकृति (साहित्यकृति) विश्व में किसी भी स्थल पर पहुँच जाय, किसी भी काल में सुरक्षित रह जाय और किसी भी मानव (सहृदय) के हाथ लग जाय, उस मानव (सहृदय) से कलाकृति (साहित्यकृति) का आस्वादन किया जाने के रूप में 'कलाकारार्थ' रूपी 'कलार्थ' का ही आस्वादन किया जाएगा । इससे कलाकृति (साहित्यकृति) व्यष्टिगत नहीं, बल्कि समष्टिगत बनकर रहती है ।

'कलाकारार्थ' अपनी तीसरी क्षमता के बल पर कलाकृति (साहित्यकृति) का आस्वादन करने वाले, किसी भी स्थल के और किसी भी काल के सहृदय के लिए जीवन की किसी बात का चिंत्य, नया, मौलिक, रमणीय तथा आनन्दप्रद अर्थबोध कराने वाला 'सहृदयार्थ' बनकर रहता है ।

अपनी दूसरी क्षमता के बल पर रूस के सुविख्यात साहित्यकार टॉलसटॉय की उपन्यासात्मक कलाकृति 'युद्ध और शान्ति' (War and Peace), दोस्तोव्हस्की की उपन्यासात्मक कलाकृति 'अपराध और दण्ड' (Crime and Punishment), मैक्सिम गोर्की की उपन्यासात्मक कलाकृति 'माँ'(Mother) अमेरिका के अर्नेस्ट हेमिंग्वे की उपन्यासात्मक कलाकृति 'एक वृद्ध और सागर' (Old man and the sea), इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध साहित्यकार शेक्सपियर की नाट्यात्मक कलाकृति 'हैमलेट' (Hamlet) नार्वे के सुविख्यात साहित्यकार इब्सेन की नाटयात्मक कलाकृति 'भूत' (The Ghost तथा 'गुडिया का घर' (Doll's

House), सीरिया के ख्यातिप्राप्त साहित्यकार खलील जिब्रान की रूपक कथात्मक साहित्यकृतियाँ, बंगाल के विश्वविख्यात साहित्यकार रवीन्द्रनाथ टैगोर की पद्यात्मक साहित्यकृति 'गीतांजलि', उत्तर प्रदेश के विख्यात कथाकार 'प्रेमचन्द' की उपन्यासात्मक साहित्यकृति 'गोदान' तथा इस देश के और अन्य देशों के विश्वविख्यात साहित्यकारो की साहित्यकृतियाँ इसलिए हमारे लिए भी और कभी भी आस्वाद्य हैं कि उनमें 'कलाकारार्थ' रूपी 'कलार्थ' की प्रतिष्ठापना हुई है ।

अपनी तीसरी क्षमता के बल पर उपर्युक्त साहित्यकृतियों में (कला-कृतियों में) व्याप्त 'कलाकारार्थ' रूपी 'कलार्थ' हमारे लिए भी जीवन की किसी बात का चिंत्य, नया मौलिक, रमणीय तथा आनन्दप्रद अर्थबोध कराने वाला 'सहृदयार्थ' बन जाता है । इसी कारण से दोस्तोव्हस्कीकृत 'अपराध और दण्ड' उपन्यास के प्रमुख पात्र रासकोल्नीकोव की समाज-विघातक विषम अर्थ-व्यवस्था तथा गरीबी को मिटाने की तीव्र इच्छा हमारी तीव्र इच्छा बन जाती है । मैक्सिम गोर्कीकृत 'माँ' उपन्यास के जनक्रांति के लिए प्रवृत्त हुए प्रमुख पात्र बेटा पवेल और उसकी मजदूर माँ निलोवना की अपने घृणित मजदूर-जीवन से मुक्त होने के लिए जुल्मी सत्ताधारियों की घातक सत्ता को संघटित जनक्रांति से समाप्तकर देने की तीव्र इच्छा हमारी तीव्र इच्छा बन जाती है । अर्नेस्ट हेमिंग्वेकृत 'एक वृद्ध और सागर' उपन्यास के प्रमुख पात्र वृद्ध मछुवे की अत्यंत प्रतिकूल स्थिति में भी निराशा तथा असफलता को भूलकर फिर से उत्साह से जीने की तीव्र इच्छा (जिजीविषा) हमारी तीव्र इच्छा बन जाती है । शेक्सपियरकृत 'हैमलेट' नाटक के प्रमुख पात्र 'हैमलेट की अपनी अनिर्णयात्मक मनःस्थिति से मुक्त होने की तीव्र इच्छा हमारी तीव्र इच्छा बन जाती है । इब्सेनकृत 'गुड़िया का घर' नाटक के प्रमुख पात्र नोरा की नारी-स्वावलंबन की तीव्र इच्छा हमारी तीव्र इच्छा बन जाती है । प्रेमचन्दकृत 'गोदान' उपन्यास के प्रमुख पात्र होरी, धनिया तथा गोबर की दयनीय किसान-जीवन के उद्धार की तीव्र इच्छा हमारी तीव्र इच्छा बन जाती है । इसका अर्थ यह है कि ये सभी साहित्यकृतियाँ (कलाकृतियाँ) अपने में व्याप्त उत्तम एवं सन्तुलित 'कलार्थ' के कारण हमारे लिए 'संस्कारशील मार्गदर्शक' बन गयी हैं ।

इस प्रकार सर्वप्रथम कलाकार (साहित्यकार) के मानस में 'कलाकारार्थ' का उभरना महत्वपूर्ण है; फिर उस 'कलाकारार्थ' का अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्य-संयोग रूपी कलाकृति (साहित्यकृति) में व्याप्त होकर 'कलार्थ' बन जाना बहुत महत्वपूर्ण है ; तत्पश्चात् उस 'कलार्थ' का एक विशिष्ट प्रभाव के रूप में सहृदय के मानस में 'सहृदयार्थ' बनकर रहना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

वास्तव मे 'कलाकारार्थ' रूपी 'कलार्थ' का एक विशिष्ट प्रभाव के रूप मे 'सहृदयार्थ' बनकर रहना ही अंतिम लक्ष्य/उद्देश्य/प्रयोजन होता है । सक्रिय 'कलाकारार्थ' अपने अंतिम लक्ष्य/उद्देश्य/ प्रयोजन की पूर्ति मे 'कलार्थ' के माध्यम से ही सफल हो जाता है ।

यहाँ पर महत्त्वपूर्ण वास्तविकता यह स्पष्ट होती है कि 'कलाकारार्थ' अपने अंतिम लक्ष्य/उद्देश्य/प्रयोजन की पूर्ति में सफल होने के लिए एक विशिष्ट प्रक्रिया के रूप में या एक विशिष्ट यात्रा के रूप में 'कलार्थ' के माध्यम से होकर ही 'सहृदयार्थ' बनकर रह सकता है । ऐसा होना ही 'कलाकारार्थ' के लिए समुचित है ।

यदि 'कलाकारार्थ' को ही प्रथम 'कलार्थ' होना और फिर 'सहृदयार्थ' होना समुचित है, तो इसका अर्थ यह है कि 'कलाकारार्थ' को सर्वप्रथम 'कलार्थ' होकर रहना अनिवार्य होता है । इस क्रिया में ही अत्यंत स्वाभाविक रूप से 'कलाकृति' (साहित्यकृति) का जन्म निहित है । इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि 'कलाकारार्थ' को 'सहृदयार्थ बनकर रहना अनिवार्य होता है और इसके लिए अपनी स्वाभाविक गति के रूप मे 'कलाकारार्थ' को 'कलार्थ' के माध्यम से होकर ही अग्रसर होना पडता है ।

यहाँ पर स्पष्ट होता है कि अपने अंतिम लक्ष्य/उद्देश्य/ प्रयोजन की पूर्ति के रूप में 'कलाकारार्थ' को 'सहृदयार्थ' बनकर रहने के लिए जो विशिष्ट यात्रा करनी पड़ती है उसकी स्वाभाविक फलनिष्पत्ति के रूप में 'कलाकारार्थ' को अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्य-संयोग के रूप में कलाकृति (साहित्यकृति) का रूप धारण-करना और उसमे 'कलार्थ' बनकर रहना अनिवार्य होता है । इसका दूसरा अर्थ यह है कि कलाकार से (साहित्यकार से) कलाकृति (साहित्यकृति) का सृजन होता ही रहता है ।

अभिप्राय यह कि मनुष्य के जीवन में उत्तम मार्गदर्शक बनकर रहने वाली सुसंस्कारक कलाकृति (साहित्यकृति) के रूप में 'कलार्थ' का महत्व सदैव बना रहता ही है ।

१३. सौन्दर्य-प्रेम : मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति

जीवन में 'सौन्दर्य' मनुष्य के आनन्द, आह्लाद, हर्ष, सुख तथा सन्तोष का मूलभूत कारण बनकर रहता है । इस प्रकार की वास्तविकता के कारण ही मनुष्य आजीवन 'सौन्दर्यप्रिय' बना रहता है । 'सौ र्यप्रिय' अर्थात् 'सौन्दर्य का प्रेमी' बनकर रहने से मनुष्य को आनन्द की अनुभूति होती रहती है । इससे मनुष्य को जीवन भर सौन्दर्य का प्रेमी बनकर रहना सुखद लगता है ।

'सौन्दर्य' शब्द भाववाचक संज्ञा है, जो किसी भी विशिष्ट दशा से संबंधित धर्म, या किसी के विशिष्ट आकार (रूप) से संबंधित धर्म, या किसी के विशिष्ट स्वभाव- संबंधी या विशिष्ट भाव-संबंधी धर्म का अर्थबोधक है ।

'सौन्दर्य' इस भाववाचक संज्ञा का मूल आधार 'सुन्दर' यह विशेषण-शब्द है । 'सुन्दर' विशेषण-शब्द के साथ भाववाचक संज्ञा बनाने वाला पर प्रत्यय 'य' अथवा 'त्व' अथवा 'ता' का योग होने से 'सौन्दर्य' अथवा 'सुन्दरत्व' अथवा 'सुन्दरता' भाववाचक संज्ञा बन जाती है । इस प्रकार 'सुन्दर' विशेषण-शब्द के साथ 'य' पर प्रत्यय का योग होने से 'सौन्दर्य' भाववाचक संज्ञा-शब्द बन गया है।

जो विशेषण-शब्द होता है, वह वाक्य मे किसी संबंधित शब्द के साथ उससे पहले या उसके बाद जुड़े रहने के विवश बना रहता है । विशेषण-शब्द वाक्य में जिस संबंधित शब्द के साथ उससे पहले या उसके बाद जुड़े रहने के लिए विवश बना रहता है, उस सबंधित शब्द को 'विशेष्य' कहा जाता है ।

वाक्य में जब विशेषण-शब्द विशेष्य के साथ उससे पहले जुड़ा रहता है, तब उस विशेषण शब्द को 'विशेष्य-विशेषण' कहा जाता है । लेकिन वाक्य मे जब विशेषण-शब्द विशेष्य के साथ उसके बाद जुड़ा रहता है, तब उस विशेषण-शब्द को 'विधेय-विशेषण' कहा जाता है ।

वाक्य में विशेषण-शब्द चाहे विशेष्य-विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ हो या विधेय-विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ हो, वह विशेषण-शब्द विशेष्य (शब्द) की किसी प्रकार की विशेषता का अर्थबोधक बना रहता है और तब अर्थबोध यह होता है कि विशेष्य साधारण नहीं है, बल्कि कुछ विशेष यानी असाधारण है । इसका अर्थ यह है कि विशेषण-शब्द से विशेष्य के 'विशेष अस्तित्व' यानी कुछ 'असाधारण अस्तित्व' का अर्थबोध होता है ।

'सुन्दर' विशेषण-शब्द भी संबंधित विशेष्य के साथ उससे पहले या उसके बाद जुड़कर उस विशेष्य के 'विशेष अस्तित्व 'यानी' असाधारण अस्तित्व का अर्थबोधक बन जाता है । इसका अर्थ यह है कि 'सुन्दर' विशेषण-शब्द में सबंधित विशेष्य के 'विशेष' यानी 'असाधारण' होने का अर्थबोध कराने की 'क्षमता' पहले से ही निहित होती है । 'सुन्दर' विशेषण-शब्द की इसी क्षमता का अर्थबोध कराने के लिए ही उसके साथ 'य', 'त्व' अथवा 'ता' पर प्रत्यय जोड़ दिया जाता है और 'सौन्दर्य' 'सुन्दरत्व' अथवा 'सुन्दरता' भाववाचक संज्ञा की रचना की जाती है । अतः सौन्दर्य, सुन्दरत्व अथवा सुन्दरता भाववाचक संज्ञा अपने स्वाभाविक रूप में 'सुन्दर' इस विशेषण मे निहित क्षमता का अर्थबोधक बन जाती है ।

यहाँ पर एक महत्वपूर्ण वास्तविकता यह स्पष्ट होती है कि 'सौन्दर्य' शब्द भाववाचक संज्ञा के रूप में 'सुन्दर' इस विशेषण-शब्द में निहित उस 'क्षमता' का अर्थबोधक है, जिस क्षमता के आधार पर 'सुन्दर' विशेषण अपने से संबंधित विशेष्य के असाधारण होने के भाव का यानी विशेष होने के भाव का अर्थबोध कराने में समर्थ बना रहता है । इसका अर्थ यह है कि 'सुन्दर' विशेषण संबंधित विशेष्य के असाधारण यानी विशेष होने के भाव का अर्थबोध कराते हुए यही स्पष्ट कर देता है कि संबंधित विशेष्य असाधारण यानी विशेष होने के रूप में 'सुन्दर' ही है अर्थात् सौन्दर्य से युक्त ही है । इससे एक सूत्र को इस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है । सुन्दर + य = सौन्दर्य = असाधारण, विशेष, सुन्दर अर्थात सौन्दर्य का विशेष्य । (विशेषण + पर प्रत्यय = भाववाचक संज्ञा = असाधारण, विशेष सुन्दर अर्थात सौन्दर्ययुक्त विशेष्य का अर्थबोध) ।

वाक्य में 'सुन्दर' विशेषण शब्द 'सापेक्ष' बना रहता है । क्योंकि वाक्य में सुन्दर विशेषण शब्द जिस किसी के सुन्दर होने के भाव का अर्थात जिस किसी के सौन्दर्य/ सुन्दरत्व /सुन्दरता रूपी विशेषता का अर्थबोध कराता है, उसी विशेष्य का अपने साथ होने की अपेक्षा रखता है । ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूप सेविशेष्य-विशेषण अपने 'परस्परावलंबी संबंध' के आधार पर दोनों भी एक-दूसरे के लिए सापेक्ष बने रहते हैं । इसका अर्थ यह है कि जब वाक्य में विशेषण-शब्द का प्रयोग किया रहता है, तब उस वाक्य मे उस विशेषण शब्द से संबंधित विशेष्य शब्द का भी प्रयोग किया रहता है । तात्पर्य यह कि वाक्य में विशेषण के होने पर विशेष्य का होना अनिवार्य है । तभी अर्थबोध यह होगा कि विशेषण अमुक-अमुक विशेष्य की विशेषता को व्यंजित कर रहा है । जैसे, वाक्य मे लड़की के सुन्दर होने के भाव का अर्थात उस लड़की के 'सौन्दर्य' का उल्लेख करना है, तो दो रीतियों से इस प्रकार किया जा सकता है-

(१) सुन्दर लडकी है ।
(२) लडकी सुन्दर है ।

पहले वाक्य में तथा दूसरे वाक्य मे भी 'लड़की' (पद) विशेष्य है । दोनों वाक्यो में 'सुन्दर' (पद) विशेषण है ।

पहले वाक्य में 'विशेष्य-विशेषण' के रूप में विशेषण 'सुन्दर' (पद) विशेष्य 'लड़की' (पद) से पहले आकर 'उस लड़की के सुन्दर होने के भाव' का अर्थात् 'उस लड़की के सौन्दर्य-गुण' का अर्थबोधक बन गया है ।

दूसरे वाक्य मे 'विधेय-विशेषण' के रूप में विशेषण 'सुन्दर' (पद) विशेष्य 'लड़की' (पद) के बाद और क्रियापद 'है' से पहले आकर 'उस लड़की के सुन्दर होने के भाव' का अर्थात् 'उस लड़की के सौन्दर्य-गुण का अर्थबोधक बना है ।

स्पष्ट है कि यहाँ पर 'सुन्दर' विशेषण विशेष्य-विशेषण के रूप में और विधेय-विशेषण के रूप में भी विशेष्य 'लड़की' के सुन्दर होने के भाव का अर्थात् उस लड़की के सौन्दर्य-गुण का अर्थबोधक बनकर रहा है । इससे प्रमाणित होता है कि वाक्य में विशेष्य से पहले आकर अथवा विशेष्य के बाद आकर विशेषण विशेष्य के विशेष होने के भाव का अर्थात् उस विशेष्य के असाधारण होने के भाव का अर्थबोधक बना रहता है ।

दूसरी एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उपर्युक्त दोनो वाक्यों में 'है' यह क्रिया 'होने के भाव' का यानी 'अस्तित्व' का अर्थबोधक है ।

यदि वक्ता लड़की के होने का ही यानी लड़की के केवल अस्तित्व का ही अर्थबोध करान चाहता है तो मूल (बीज) वाक्य का ही प्रयोग इस प्रकार करता 'लड़की है ।'

इस मूल (बीज) वाक्य में 'है' इस अकर्मक तथा स्थितिदर्शक क्रिया-रूप से लड़की के 'होने' का यानी लड़की के 'केवल अस्तित्व' का अर्थबोध होता है । 'लड़की है ।' यह मूल (बीज) वाक्य ही उपर्युक्त दोनों वाक्यों का मूल आधार है ।

यदि 'सुन्दर लड़की है ।' इस पहले वाक्य में से 'सुन्दर' इस विशेषण पद को अलग कर दिया गया तो 'लड़की है ।' यह मूल (बीज) वाक्य शेष रह जाता है। इसका अर्थ यह है कि वक्ता-(बोधक) केवल 'लड़की है ।' इस बीज वाक्य का ही प्रयोग करके अपना अर्थबोध कराने का कार्य पूर्ण कर सकता है,जिससे अर्थग्रहणकर्ता को 'लड़की के होने का' यानी 'लड़की के केवल अस्तित्व का' अर्थबोध हो जाता है।

यदि 'लड़की सुन्दर है ।' इस दूसरे वाक्य में से भी 'सुन्दर' विशेषण-पद को अलग कर दिया गया तो 'लड़की है ।' यह मूल वाक्य यानी बीज वाक्य ही शेष रह जाता है । यहाँ भी वक्ता (बोधक) केवल 'लड़की है ।' इस बीज वाक्य का ही प्रयोग करके अपना अर्थबोध कराने का कार्य पूर्ण कर सकता है,जिससे अर्थग्रहणकर्ता को 'लड़की के होने का' यानी 'लड़की के केवल अस्तित्व का 'अर्थबोध हो जाता है।

यहाँ पर एक तथ्य यह स्पष्ट होता है कि यदि अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) चाहता है तो वह 'लड़की है ।' इस 'बीज वाक्य' का ही प्रयोग करके 'लड़की के होने का' यानी लड़की के केवल अस्तित्व का अर्थबोध करा सकता है । लेकिन अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) इतने पर सन्तुष्ट नहीं रहता । क्योकि अर्थबोधक को उस 'लड़की का होना' यानी उस 'लड़की का अस्तित्व' कुछ अलग ढंग का, कुछ आकर्षक ढंग का, कुछ विशेष ढंग का कुछ असाधारण ढंग का अर्थात् प्रभावशाली ढग का लगा हुआ होता है । इसी कारण से

अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) उस लड़की के 'विशेष होने' से संबंधित यानी उस लड़की के 'असाधारण अस्तित्व' से संबंधित अपनी 'प्रभावात्मक अनुभूति' को विशेषण के साथ इस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करते हुए अभिव्यक्त करेगा -

(१) सुन्दर लड़की है । (२) लड़की सुन्दर है ।

यदि अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) उस लड़की के सुन्दर होने में यानी उस लड़की के सुन्दर अस्तित्व में 'अतिशयता' का अनुभव करेगा तो वह अपनी 'प्रभावात्मक अनुभूति' को 'सुन्दर' विशेषण से पहले 'बहुत' जैसे परिमाणवाचक विशेषण का प्रयोग करते हुए वाक्यों का प्रयोग इस प्रकार करेगा -

(१) बहुत /अधिक/अति/अतिशय सुन्दर लडकी है ।

(२) लड़की बहुत /अधिक/अति/अतिशय सुन्दर है ।

यदि अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) उस लड़की के अतिशय सुन्दर होने मे यानी उस लड़की के अतिशय सुन्दर अस्तित्व में 'और अधिक सुन्दरता' का अनुभव करेगा, तो वह अपनी 'प्रभावात्मक अनुभूति' को 'सुन्दर' विशेषण से पहले 'सादृश्यवाचक विशेषण' का प्रयोग करते हुए तथा 'उस सादृश्यवाचक विशेषण से पहले किसी यथोचित संज्ञा' का प्रयोग करते हुए वाक्यों का उपयोग इस प्रकार करेगा -

(१) फूल-सी सुन्दर लड़की है । गुलाब-सी सुन्दर लड़की है ।

(२) लड़की फूल-सी सुन्दर है । लडकी गुलाब-सी सुन्दर है ।

इन वाक्यों में अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) ने अपनी 'प्रकृति-प्रदत्त कल्पनाशक्ति' का प्रयोग किया है और उस लडकी के 'फूल के समान' (सुडौलतायुक्त तथा सुकुमारतायुक्त) सुन्दर होने का अर्थबोध कराया है, साथ ही लडकी के 'गुलाब के समान' (गौरांगयुक्त, सुघड़तायुक्त तथा कोमलतायुक्त) सुन्दर होने का अर्थबोध कराया है । यहाँ लड़की के सुन्दर होने के अर्थबोध मे 'शृखलित सघनता' आ गयी है, जिससे लड़की के सुन्दर होने के विषय मे 'एक के बाद एक' के रूप से' विभिन्न अर्थों का (यानी अनुषंगित अर्थों का) बोध होता रहता है ।

यहाँ पर मनुष्य के स्वभाव का एक महत्वपूर्ण तथ्य यह स्पष्ट होता है कि मनुष्यरूपी अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) किसी विशेषता शून्य बात से नहीं, बल्कि विशेषतायुक्त बात की विशेषता से ही प्रभावित होता रहता है । इसीलिए अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) 'अपने पर पड़े हुए प्रभाव' को वाक्य-प्रयोग के रूप में व्यक्त करते समय उस मूल बात का उल्लेख 'विशेष्य' के रूप में करता है और उसके साथ 'उस विशेष्य की प्रभावक विशेषता' का भी उल्लेख 'विशेषण' के रूप में करता है ।

विशेष्य का विशेषण बनकर रहने वाली विशेषता ही मनुष्यरूपी अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) पर विशेष्य के विशेष होने का, उसके असाधारण होने का यानी उसके असामान्य होने का प्रभाव डालती है । वास्तव मे मनुष्यरूपी अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) विशेष्य के विशेष होने से, उसके असाधारण होने से यानी उसके असामान्य होने से इसलिए प्रभावित होता रहता है कि उसकी एक सहज प्रवृत्ति पहले से ही विशेष यानी असाधारण यानी असामान्य के प्रति आकर्षित होने की होती है । इसका अर्थ यह है कि अपनी इस

प्रकार की सहज प्रवृत्ति के कारण ही मनुष्य रूपी अर्थबोधक (वक्ता या लेखक को पहले से ही विशेष यानी असाधारण यानी असामान्य का आकर्षण होता है । इसी वास्तविकता के अनुसार दूसरा महत्वपूर्ण अर्थ यह होता है कि मनुष्य रूपी अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) जिस किसी के प्रति आकर्षित हो जाता है, वह विशेष यानी असाधारण यानी असामान्य होता ही है । इससे यही प्रमाणित होता है कि मनुष्यरूपी अर्थबोधक (वक्ता या लेखक) जिस लड़की के प्रति आकर्षित हुआ है ,वह लड़की विशेष, असाधारण, असामान्य, सुन्दर, अति सुन्दर, फूल-सी सुन्दर अर्थात् गुलाब-सी सुन्दर है ।

मनुष्यरूपी अर्थबोधक (वक्ता य लेखक) के लिए उस लड़की का विशेष होना असाधारण होना, असामान्य होना, सुन्दर होना, अति सुन्दर होना, फूल-सा होना, गुलाब-सा होना और आकर्षक होना ही उस लड़की का 'सौन्दर्य' से सम्पन्न होना है । इसका अर्थ यह है कि उस लडकी के विशेष होने में ही उसका सौन्दर्य है ; उस लड़की के असाधारण यानी असामान्य होने में ही उसका सौन्दर्य है; उस लड़की के सुन्दर/अति सुन्दर/फूल-सी/गुलाब-सी होने में ही उसका सौन्दर्य है; उस लड़की के आकर्षक होने में ही उसका सौन्दर्य है ।

यह एक प्राकृतिक सत्य है कि पुरुष की तुलना में 'स्त्री का विशेष होना' 'यानी' स्त्री का सुन्दर होना । पुष्ट उरोज तथा पीन नितंब से युक्त देह का सुडौल होना; पहले से ही चेहरे का दाढ़ी-मूँछ के बिना कांतिमय, कोमल एवं मासूम होना; आवाज का मधुर और मार्दव होना ; बात करने में मिठास का होना; नेत्रों की हलचल में तथा पूरे व्यवहार में लाज का होना, चाल में लचक का होना, हो सके तो अंग का गौर होना; ये सारी विशेषताएँ तथा कुछ अन्य विशेषताएँ भी स्त्री को 'विशेष' यानी 'सुन्दर' बना देती है । इस प्रकार 'विशेष होना' यानी 'सुन्दर होना'ही स्त्री का 'सौन्दर्य' है । इसी कारण से ही स्त्री के लिए रमणी, रमा, शोभना, ललना, कामिनी आदि विशेषतासूचक नामों का प्रयोग किया जाता है ।

स्वभाव की दृष्टि से ममतामय, वात्सल्यपूर्ण, स्नेहल, सहनशील, समझदार, परिश्रमी, गृहकार्य तत्पर होना भी स्त्री का विशेष यानी सुन्दर होना है । इस प्रकार स्वभाव से भी 'विशेष होना' यानी 'सुन्दर होना' स्त्री का 'आंतरिक सौन्दर्य' है ।

स्त्री की तुलना मे पुरूष का अपने शरीर से हृष्ट-पुष्ट, मजबूत, बलवान, शक्तिशाली, सुदृढ, स्वस्थ तथा कर्मयोग्य होना और स्वभाव से पुरूषार्थी, उद्योगी, कर्मनिष्ठ, मेहनती, धैर्यवान, साहसी, पराक्रमी, परोपकारी, आत्मविश्वासी, उत्साही, प्रेमी तथा कर्तव्यदक्ष होना, पुरूष का आंतर्बाह्य विशेष यानी सुन्दर होना है । इस प्रकार 'आतर्बाह्य विशेष होना' यानी आतर्बाह्य सुन्दर होना' पुरूष का 'आतर्बाह्य सौन्दर्य' ही है ।

मूलभूत तथ्य यह है कि स्त्री हो, या पुरूष हो 'मनुष्य के स्वभाव मे एक ऐसी "सदभिरुचि' का अस्तित्व है, जो मनुष्य को विशेष होकर जीने के लिए प्रेरित करती रहती है, मनुष्य को सुन्दर बनकर रहने के लिए उत्तेजित करती रहीत है , मनुष्य को अपने अस्तित्व को गुणात्मक अस्तित्व (Qualitative Existence) 'बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित करती रहती है और इस रूप मे वह 'सदभिरुचि' मनुष्य को अपने जीवन में चित्ताकर्षक, रमणीय तथा आनन्दप्रद 'सौन्दर्य' को अत्यन्त महत्व का स्थान देने के लिए निरन्तर प्रेरणा देती रहती है । इसी विशेषता के कारण ही मनुष्य ने ही अपने जीवन को 'विशेष अस्तित्व'

यानी 'सुन्दर अस्तित्व यानी 'गुणात्मक अस्तित्व' यानी 'सौन्दर्यात्मक अस्तित्व' बना दिया है, बना दे रहा है और भविष्य मे भी बना देता रहेगा । इसके लिए ही मनुष्य अपने जीवन में सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य आदि कलाओं का विकास करता आ रहा है और आगे चलकर भी विकास करता रहेगा । अपनी सद्भिरुचि को लेकर ही मनुष्य ने मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में भी विशेष आचरण यानी सुन्दर आचरण यानी गुणात्मक (मूल्यात्मक) आचरण को महत्व का स्थान दिया है । इसी कारण से मनुष्य अन्न को विभिन्न पद्धतियों से पकाकर ग्रहण करता है; मीठा और स्वच्छ जल पीता है और कामवासना का शमन भी मर्यादा और संयम से करता है । इस प्रकार मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में भी चित्ताकर्षक, रमणीय तथा आनन्दप्रद सौन्दर्य को महत्वपूर्ण स्थान देता है । यहाँ तक कि मनुष्य का वस्त्र पहनना भी उसकी सद्भिरुचि तथा सौन्दर्यप्रियता का लक्षण है ।

अपनी सद्भिरुचि और सौन्दर्यप्रियता के कारण ही मनुष्य जीवन भर विशेष यानी सुन्दर-सुन्दर रीतियों से सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनता रहता है । मनुष्य अपने बालों को विशेष यानी सुन्दर यानी आकर्षक रखने तथा उन्हें सुन्दर-सुन्दर पद्धतियों से सँवारने के प्रयत्न में लगा रहता है । मनुष्य अपनी देह को विशेष यानी सुन्दर-सुन्दर ढंग से सुन्दर-सुन्दर अलंकारों से सजाने की कोशिक में लगा रहता है और इस कोशिश में वह फूलों, कलियों, इत्र आदि का भी उपयोग करता रहता है । मनुष्य स्नान आदि से अपने शरीर को साफ-सुथरा, आकर्षक, विशेष यानी सुन्दर बनाकर रखने का प्रयास करता है ।

अपनी सद्भिरुचि, सौन्दर्यप्रियता यानी गुणात्मकप्रियता के कारण मनुष्य सुन्दर-सुन्दर ढंग से सुन्दर-सुन्दर घरों का निर्माण करता है और उन घरों में आकर्षक, विशेष यानी सुन्दर ढंग से रहता है ।

अपनी सद्भिरुचि, गुणात्मकता तथा सौन्दर्यप्रियता को लेकर मनुष्य घर के अन्दर, समाज के भीतर, देश में तथा विश्व में अपने हित के साथ-साथ दूसरों के हित के लिए भी परोपकार का, त्याग का, समर्पण का, आत्मीयता का, प्रेम का और मानवता का विशेष यानी सुन्दर व्यवहार करता है । अपने मानवता के विशेष यानी सुन्दर व्यवहार में मनुष्य अपने समाज तथा देश के हित के लिए अपना बलिदान बड़ी खुशी से कर देता है और संस्मरणीय शहीद बन जाता है । मनुष्य अपने परिवार में त्याग के विशेष यानी सुन्दर व्यवहार में एक-दूसरे के हित के लिए उपयोग में आने का भरसक प्रयत्न करता रहता है। इसी कारण से परिवार में मनुष्य अपनी भूख से भी अधिक अपने परिवार के अन्य सदस्यो की भूख का विचार करता रहता है और स्वयं भूखा रहकर दूसरो को खिलाने में सुख का अनुभव करता रहता है । इस रूप से मनुष्य अपने परिवार में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के बदले परिवार के अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति पर खुशी से अधिकाधिक ध्यान देता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति को पीछे का क्रम देता है । मनुष्य समाज मे भी अपने समझदारी, परोपकार तथा सहयोग के विशेष यानी सुन्दर व्यवहार से एक-दूसरे का हित करता रहता है । मनुष्य अपने देश प्रेम युक्त विशेष यानी सुन्दर व्यवहार से देश-हित के लिए 'बड़ी प्रसन्नता' से अपने को कुरबान भी कर देता है । मनुष्य अपने 'उत्तरदायित्वपूर्ण' विशेष यानी सुन्दर व्यवहार से कुटुम्ब में कुटुम्बकर्ता बन जाता है, समाज

मे कर्मवीर बन जाता है और देश मे जनहितदक्ष नेता बन जाता है । इस प्रकार कुटुम्ब समाज, देश और विश्व मे भी मनुष्य के सभी सम्बन्ध उसके उत्तरदायित्वपूर्ण, स्नेहपूर्ण आत्मीयतापूर्ण, परोपकारपूर्ण यानी मानवतापूर्ण विशेष अर्थात् सुन्दर व्यवहार पर ही आधृत है ।

मनुष्य ने अपने गुणात्मक, सदभिरूचिपूर्ण, स्नेहपूर्ण, विशेष यानी सुन्दर व्यवहार के आधार पर ही अपने जीवन मे मनुष्यता की दृष्टि से 'हितकारक उत्तमोत्तम संस्कारों को स्थान दिया है और उन उत्तमोत्तम संस्कारों को सुरक्षित रखने के लिए संस्कृति का निर्माण किया है, सभ्यता का आविष्कार किया है और कलाओं का सृजन किया है ।

मनुष्य ने अपने गुणात्मक, सद्भिरूचिपूर्ण, कलापूर्ण, विशेष यानी सुन्दर व्यवहार को लेकर अपने जीवन में मानवता की दृष्टि से उत्तमोत्तम संस्कारों को जीवित रखने के लिए कई कलाओं का सृजन किया है और प्रत्येक कला मे कमाल का वैविध्य भर दिया है । वास्तुकला हो, मूर्तिकला हो, चित्रकला हो, संगीतकला हो, नृत्यकला हो, नाट्यकला हो या साहित्यकला हो मनुष्य ने प्रत्येक कला में 'अद्‌भुत वैविध्य' भर दिया है । इस सन्दर्भ मे सिनेमा, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान हुआ है, हो रहा है और होता भी रहेगा ।

इस प्रकार मानवेतर पशु-पक्षी आदि जीवों को छोड़कर 'केवल मनुष्य की ही जीवन-यात्रा सद्भिरूचिपूर्ण यात्रा के रूप में, गुणात्मक यात्रा के रूप में, मूल्यात्मक यात्रा के रूप में, मानवतापूर्ण यात्रा के रूप मे, एक विशेष यात्रा के रूप में अर्थात् एक सुन्दर यात्रा के रूप में चित्ताकर्षक, रमणीय तथा आनन्दप्रद सौन्दर्य के साथ चली आ रही है और आगे भी चलती रहेगी ।

मनुष्य के स्वभाव मे ही एक ऐसी अखंड 'सौन्दर्य-प्रेम की प्रवृत्ति' निहित है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा को निरंतर आन्तर्बाह्य सौन्दर्य के साथ जोड़ता चला आ रहा है और जोड़ता चला जा रहा है । स्वभाव की सौन्दर्य-प्रेम की प्रवृत्ति ही मनुष्य को ऐसे-वैसे जीने के बदले 'विशेष रीति से जीने' को प्रेरित करती रहती है ; साधारण या सामान्य पद्धति से जीने के बदले असाधारण या असामान्य पद्धति से जीने को उकसाती रहती है और कुरूप ढंग से जीने के बदले सुन्दर ढंग से जीने को प्रोत्साहित करती रहती है । इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि मनुष्य का जीवन सौन्दर्य से सम्पन्न होता रहता है और इसी चित्ताकर्षक एवं रमणीय सौन्दर्य के कारण मनुष्य अपने जीवन में आनन्द की अनुभूति करता रहता है ।

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि 'मनुष्य ने अपनी जीवन-यात्रा में आनन्द की अनुभूति करते रहने को सर्वोपरि स्थान दिया है ।

आनन्द की अनुभूति करने को मिलती ही रहे, इसलिए मनुष्य ने अपनी जीवन-यात्रा में उस सौन्दर्य को अत्यधिक महत्व का स्थान दिया है, जो आनन्द की अनुभूति करने की मनुष्य की इच्छा को पूर्ण करने का मूल कारण होता है ।

मनुष्य आनन्द की अनुभूति करने के हेतु इस प्रकार की इच्छा करता रहता है कि अपना जीवन सौन्दर्यमय हो अर्थात् अपना जीवन सुन्दर हो ।

मनुष्य इच्छा करता रहता है कि आनन्दानुभूति होने के निमित्त अपना जीवन सुन्दर

हो अपना जीवन सौन्दर्यमय हो अर्थात् अपने जीवन में सौन्दर्य हो । 'जीवन सुन्दर हो' या 'जीवन सौन्दर्यमय हो' का अर्थ यह है कि 'जीवन में सुन्दर होने का भाव हो' जिसे दूसरे शब्दों में 'सौन्दर्य' (सुन्दरता/सुन्दरत्व) कहा जाता है ।

वास्तविकता तो यही है कि 'सुन्दर होने का भाव ही सौन्दर्य है ।' इसी कारण से मनुष्य अपने जीवन को सुन्दर होने के भाव से यानी सौन्दर्य से युक्त करने के प्रयत्न में लगा रहता है ।

मनुष्य अपने जीवन को 'सुन्दर होने के भाव' से यानी 'सौन्दर्य' से युक्त करने के प्रयत्न में अपनी सदभिरूचि अर्थात् सौन्दर्य-प्रेम की प्रवृत्ति को सक्रिय बना देता है और अपने जीवन को 'एक गुणात्मक अस्तित्व' अर्थात् 'एक विशेष अस्तित्व' अर्थात् 'एक असाधारण (असामान्य) अस्तित्व' बनाने के प्रयत्न में जीवित रहता है।

'सुन्दर होने के भाव' में अर्थात् 'सौन्दर्य' में स्वाभाविक रूप से ही एक ऐसी 'आकर्षक-शक्ति' होती है, जो मनुष्य के चित्त को अपनी ओर आकर्षित करा ही लेती है और उसे अपने में रमा लेती है । इससे मनुष्य के लिए 'सुन्दर होने के भाव' की अनुभूति यानी 'सौन्दर्य' की अनुभूति रमणीय अर्थात् आनन्दप्रद अनुभूति बन जाती है और फलस्वरूप मनुष्य प्रसन्न चित्त से आनन्द की अनुभूति करने लगता है।

'विशेष होने' में भी अर्थात् 'असाधारण (असामान्य) होने में भी अर्थात् 'गुणात्मक होने' मे भी स्वाभाविक रूप से 'वही आकर्षण-शक्ति' रहती है, जो मनुष्य के चित्त को अपनी ओर आकर्षित करा ही लेती है और उसे अपने में रमा लेती है। इससे मनुष्य के लिए 'विशेष होने, अर्थात् 'असाधारण (असामान्य) होने अर्थात् 'गुणात्मक होने' की अनुभूति रमणीय अर्थात् आनन्दप्रद बन जाती है और परिणामस्वरूप मनुष्य प्रसन्न चित्त से आनन्द की अनुभूति करता रहता है ।

यहॉ पर मनुष्य के लिए जो अनुभूति रमणीय अर्थात् आनन्दप्रद बनी रहती है, उसी के आधार पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह ज्ञात होता है कि किसी का 'विशेष' होना किसी का 'असाधारण' (असामान्य) होना और किसी का 'गुणात्मक' होना ही तो किसी का 'सुन्दर' होना है ; किसी का 'सौन्दर्यमय' होना है और उसी में ही 'सौन्दर्य' का होना है । इसी तथ्य के आधार पर महत्वपूर्ण सूत्र इस प्रकार बनता है -

विशेष होना = असाधारण (असामान्य) होना = गुणात्मक होना = सुन्दर होना = सौन्दर्यमय होना = (उसी में) सौन्दर्य का होना = रमणीय एवं आनन्दप्रद होना ।

इस सूत्र का महत्वपूर्ण आशय यह है कि मनुष्य को आनन्द की अनुभूति होने की दृष्टि से वही महत्वपूर्ण है, जो विशेष यानी असाधारण (असामान्य) यानी गुणात्मक होने के रूप मे रमणीय अर्थात् आनन्दप्रद 'सौन्दर्य' होता है । इस प्रकार की वास्तविकता के कारण ही कलाकार के मानस में भी 'त्रिविध कलाकारार्थ' अपने आप 'विशेष' यानी असाधारण' (असामान्य) यानी 'गुणात्मक' यानी 'सुन्दर' होने के रूप मे रमणीय अर्थात आनन्दप्रद 'सौन्दर्य' बना रहता है ।

कलाकार के मानस में उभरा 'कलाकारार्थ' जब कलाकार से सृजित कलाकृति मे व्याप्त (त्रिविध) 'कलार्थ' बन जाता है, तब वह 'कलार्थ' भी अपने आप विशेष यानी

यानी गुणात्मक यानी सुन्दर होने के रूप मे अर्थात द

'सौन्दर्य' ही बना रहता है ।

कलाकृति मे व्याप्त 'कलार्थ' जब कलाकृति का आस्वादन करने वाले के मानस मे व्याप्त (त्रिविध) 'सह्रदयार्थ' बन जाता है, तब वह 'सह्रदयार्थ' भी अपने आप विशेष यानी असाधारण (असामान्य) यानी गुणात्मक यानी सुन्दर होने के रूप में रमणीय अर्थात् आनन्दप्रद 'सौन्दर्य' ही बना रहता है ।

यहाँ पर तात्पर्य के रूप में दो सूत्र इस प्रकार बनते हैं -

(१) कलाकारार्थ = कलार्थ = सह्रदयार्थ = चित्ताकर्षक यानी रमणीय यानी आनन्दप्रद 'सौन्दर्य'

(२) कलाकारार्थ (विशेष अर्थ विशिष्ट अर्थ) चित्ताकर्षक अर्थात्
कलार्थ = असाधारण (असामान्य) अर्थ = रमणीय अर्थात्
सह्रदयार्थ गुणात्मक (मूल्यात्मक) आनन्दप्रद 'सौन्दर्य'

ईश्वरी कृपा या कुदरती कृपा के रूप में केवल 'कलाकार' को ही अत्यन्त संवेदनशील तथा भावप्रवण ह्रदय मिला रहता है, उसी कलाकार को ही सत्-असत्, सुष्ट-दुष्ट, सार-असार, मंगल-अमगल, सुन्दर-असुन्दर, उचित-अनुचित, गुण-अवगुण, मानवता-अमानवता तथा प्रवृत्ति-निवृत्ति का भी सन्तुलित विचार करने वाली बुद्धि (प्रज्ञा/विचारशक्ति) भी मिली रहती है और उसी कलाकार को ही नयी-नयी विलक्षण तथा संभाव्य बाते दिखाकर उसे 'दूर द्रष्टा' या 'भविष्य द्रष्टा' बनाने वाली कल्पना भी मिली रहती है ।

इसके फलस्वरूप ही यहाँ एक महत्वपूर्ण सूत्र इस प्रकार बनता है -

भावात्मक अर्थ	+त्रिविध कलाकारार्थ	= कलाकारार्थ	=अभिव्यक्त्यअर्थ
विचारात्मक अर्थ	+त्रिविध कलार्थ	= कलार्थ	= अभिव्यक्त अर्थ
कल्पनात्मक अर्थ	+त्रिविध सह्रदयार्थ	= सह्रदयार्थ	= आनन्दानुभूति

कलाकार के मानस में उभरा 'कलाकारार्थ' ही अभिव्यक्त्य अर्थ के रूप में 'कला-सृजक-प्रयोजन' बन जाता है और अपेक्षित कलाकृति का सृजन करके उसमें व्याप्त 'कलार्थ' यानी 'अभिव्यक्त अर्थ' बन जाता है । फिर यही 'कलार्थ' कलाकृति का आस्वादन करने वाले सह्रदय के ह्रदय में अपेक्षित तथा स्वाभाविक 'सह्रदयार्थ' अर्थात् 'आनन्दानुभूति' बन जाता है । इससे एक महत्वपूर्ण बात यह स्पष्ट होती है कि 'कलाकारार्थ' और सह्रदयार्थ इन दोनो का भी केन्द्र 'कलार्थ' ही होता है । केवल 'कलार्थ' ही वास्तु रूपी या मूर्ति रूपी या चित्र रूपी अथवा संगीत रूपी अथवा काव्य (साहित्य) रूपी कलाकृति मे व्याप्त होकर 'प्रत्यक्ष अर्थ' बना रहता है ।

'कलाकारार्थ' और 'सह्रदयार्थ' दोनों भी 'अप्रत्यक्ष अर्थ' तथा 'ज्ञेय अर्थ' होते हैं । वास्तव में अभिव्यक्ति रूपी कलाकृति में व्याप्त 'प्रत्यक्ष कलार्थ' के आधार पर ही 'अप्रत्यक्ष कलाकारार्थ' ज्ञेय होता है और 'अप्रत्यक्ष सह्रदयार्थ' भी ज्ञेय होता है ।

यथार्थ में 'प्रत्यक्ष अर्थ' के रूप मे कलाकृति मे व्याप्त 'कलार्थ' ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण अर्थ होता है और वही 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' के रूप में कला और कलाकृति की आत्मा बनकर रहता है ।

निष्कर्ष यही है कि 'सौन्दर्य प्रेम मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति' है और उसी के अनुसार 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य ही कलाकृति की आत्मा है ।'

१४. साहित्यस्यात्मा कलार्थ-सौन्दर्यम्

(१) साहित्य भी कला ही है । फलतः साहित्य (साहित्यकृति) में भी 'प्रत्यक्ष अर्थ' के रूप में 'कलार्थ' ही व्याप्त रहता है ।

(२) साहित्य (साहित्यकृति) में व्याप्त 'कलार्थ' ही साहित्य (साहित्यकृति) का 'सौन्दर्य' बनकर रहता है ।

(३) साहित्य (साहित्यकृति) का 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' अपने स्वभाव से ही चित्ताकर्षक, रमणीय अर्थात् आनन्दप्रद बना रहता है ।

(४) जिस प्रकार 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' कला (कलाकृति) की आत्मा बनकर रहता है, ठीक उसी प्रकार वही 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' साहित्य (साहित्यकृति) की आत्मा बनकर रहता है ।

(५) स्वभावतः ही साहित्य (साहित्यकृति) का 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' ही 'साहित्य की आत्मा' बनकर रहता है ।

(६) साहित्य का 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' 'प्रत्यक्ष कलार्थ' होता है, जो उस वाक्य-संयोग में व्याप्त हुआ रहता है, जिस वाक्य-संयोग से साहित्यकृति की रचना हुई रहती है ।

(७) साहित्यकृति की रचना जिस वाक्य-संयोग से हुई रहती है, उस वाक्य-संयोग में 'कलार्थ' को यथोचित रीति से प्रत्यक्ष अभिव्यक्त कर सकने वाले अपेक्षित, अत्यावश्यक तथा अर्थपूर्ण वाक्यों का प्रभावोत्पादक संघटन एवं संयोजन हुआ रहता है ।

(८) साहित्यकृति में व्याप्त सम्पूर्ण 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' संभवनीय तथा अत्यावश्यक वाक्य-संयोग के रूप में ही 'प्रत्यक्ष' और 'ज्ञात' हुआ रहता है । संभवनीय तथा अत्यावश्यक वाक्य-संयोग के आधार पर ही 'कलार्थ रूपी सौन्दर्य' साहित्यकृति में 'प्रत्यक्ष' और 'ज्ञात' बना रहता है ।

(९) संभवनीय तथा अत्यावश्यक वाक्य-संयोग के रूप में सम्पूर्ण साहित्यकृति में अर्थपूर्ण तथा अर्थबोधक भाषा का ही प्रयोग हुआ रहता है ।

(१०) इस प्रकार साहित्य पद्यात्मक हो, गद्यात्मक हो, कथात्मक हो या कथारहित हो, अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य तो यही है कि साहित्य की आत्मा कलार्थ-सौन्दर्य ही है- साहित्यस्यात्मा कलार्थ-सौन्दर्यम् ।

सत्य तो यही है कि मनुष्य ही कर्ता के रूप में 'साहित्य का स्रष्टा बन जाता है । परन्तु साधारण यानी सामान्य मनुष्य साहित्य का स्रष्टा नहीं बन सकता । वही मनुष्य साहित्य का स्रष्टा बन सकता है, जो विशेष यानी असाधारण यानी असामान्य होता है ।

साहित्य का स्रष्टा बनने वाले विशेष, असाधारण यानी असामान्य मनुष्य की अत्यधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि वह अपने हृदय से भावुक बना रहता है, बुद्धि (प्रज्ञा, मेधा) से विचारक बना रहता है और अपनी प्रकृतिप्रदत्त कल्पना से कल्पक बना रहता है फलतः उस विशेष मनुष्य के विशेष व्यक्तित्व में भावात्मकता, विचारात्मकता और

का रमणीय एकत्रीकरण हुआ रहता है । अपने इस प्रकार के विशेष व्यक्तित्व के बल पर वह विशेष मनुष्य ही 'कलाकार' यानी 'साहित्यकार' बन जाता है ।

कलाकार यानी साहित्यकार अपनी बढ़ती हुई उम्र के साथ और जीवन की विविध तथा समृद्ध अनुभूति के साथ अधिक संवेदनशील, अधिक विचारशील (चिन्तनशील) और अधिक कल्पनाशील बन जाता है । जीवन की गति के साथ कलाकार यानी साहित्यकार का विशेष व्यक्तित्व अधिकाधिक प्रौढ़ बन जाता है ।

विशेष तथा प्रौढ़ व्यक्तित्व के आधार पर कलाकार यानी साहित्यकार के मानस मे विशिष्ट जीवनानुभूति के फलस्वरूप समन्वित रूप में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ उभर जाते हैं । उस स्थिति में भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वित रूप कलाकार यानी साहित्यकार के मानस में 'त्रिविध कलाकारार्थ' बन जाता है । 'त्रिविध अर्थ' इसलिए कि उसमें भावात्मक अर्थ, विचारात्मक अर्थ और कल्पनात्मक अर्थ का समन्वय बना रहता है । 'कलाकारार्थ' इसलिए कि वह अर्थ कलाकार यानी साहित्यकार का अपना अर्थ होता है, जो उसके मानस में उभरा हुआ होता है ।

कलाकार यानी साहित्यकार अपेक्षित, अर्थपूर्ण तथा संभवनीय वाक्यों के संयोग के रूप में कला की रचना यानी साहित्य का सृजन कर देता है, जिसमें 'त्रिविध कलाकारार्थ' अपने आप व्याप्त होकर 'त्रिविध कलार्थ' बनकर रहता है । कला यानी साहित्य में व्याप्त त्रिविध कलार्थ' ही अपनी अनेक विशेषताओं के आधार पर आनन्दप्रद 'सौन्दर्य' बना रहता है । अतः साहित्य 'कलार्थ-सौन्दर्य' के कारण ही 'साहित्य' बनकर रहता है ।

सारांश, साहित्यकला मे व्याप्त रहने वाला 'कलार्थ-सौन्दर्य' ही साहित्य की आत्मा बना रहता है ।
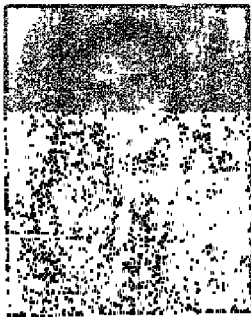
डॉ. ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड 'राजवंश'

एम् ए., पी-एच् डी.

ाटक एव अध्यक्ष, स्नातक तथा स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

ी शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

देहाती परिवार में दि. २५ सितम्बर १९३८ को जन्म.

१ आधुनिक हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्त्व, २. साहित्य रूप शास्त्रीय विश्लेषण, ३. उपयोगी हिन्दी व्याकरण (महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा 'प महावीर प्रसाद द्विवेदी नामक पुरस्कार से सम्मानित) ४ पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्त और विविधवाद, ५. हिन्दी भाषा विज्ञान परिचय, ६ भारतीय काव्य-सिद्धान्त, ७ साहित्य का कलार्थ-सौन्दर्य-सिद्धान्त, ८. स्वत्त्व (हिन्दी कविता-संग्रह), ९ गीत-गुंजन (मराठी कविता-संग्रह), सह सम्पादित दो मराठी कहानी संग्रह- १० रंगधारा, ११ नवरंग।

पत्र-पत्रिकाओं में विविध लेखों का प्रकाशन, आकाशवाणी से रेडियो नाटक तथा साहित्यिक कार्यक्रमों का प्रसारण।

न उपयोगी हिन्दी व्याकरण' विशेष पुरस्कार से पुरस्कृत।

'साहित्य रूप शास्त्रीय विश्लेषण' का संशोधित द्वितीय संस्करण प्रकाशित, उपर्युक्त सभी आलोचनात्मक ग्रंथ विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी पाठ्यक्रम में सन्दर्भ ग्रंथ के रूप में स्वीकृत।

गत ३१ वर्षों से छात्रप्रिय, अध्ययनप्रिय, वक्तृतानिपुण प्राध्यापक, पी-एच डी उपाधि के सफल शोधनिदेशक, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की विधि सभा, विद्वत सभा, कला शाखा तथा हिन्दी अध्ययन मण्डल के सम्माननीय सदस्य, भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की ओर से गुवाहाटी (आसाम) में अहिन्दी भाषाभाषी हिन्दी लेखक-शिविर में प्रतिभागी।